ओ३म्

चले देश में देशी भाषा

सम्पादक

यशपाल सिंह

निज भाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल।
भारतेन्दु

प्रकाशक

अंग्रेजी हटाओ समिति नकोदर

ओ३म्

चले देश में देशी भाषा

सम्पादक
यशपाल सिंह
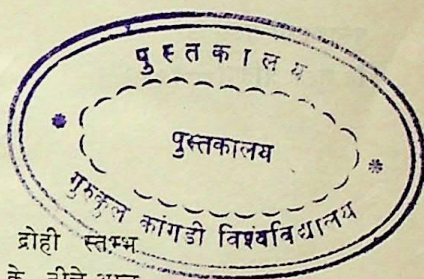
शतियों बाद हुए स्वाधीन देश के द्रोही स्तम्भ
क्यों टिक पाएँ नभ की नीली छत के नीचे आज
वर्गभेद के सूत्रधार साम्राज्यवाद के दन्त
क्यों रह पाएँ क्लब होटल के जबड़ों में स्थिर आज
सावधान,, अंग्रेजी के महापद्म ओ नन्द
तक्ष शिला की धरती पर चाणक्य रहा जग आज !

सुरेश
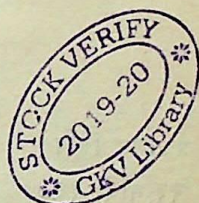
प्रकाशक

अंग्रेजी हटाओ समिति, नकोदर

प्रकाशक
अंग्रेजी हटाओ समिति, नकोदर (पंजाब)

पुस्तकालय संस्करण
निःशुल्क प्रतियां—१०००

प्रकाशन तिथि
२३ मार्च, १९७७

मुद्रक
स्वैन प्रिंटिंग प्रैस,
अड्डा टांडा, जालन्धर–१

समर्पण

भारतमाता की कटी हुई जीभ को वापस दिलाने
के लिए अपने जीवन को जोखिम में
डालने वाले उत्साहियों की अर्चना
में सादर समर्पित

अंग्रेजी हटाओ समिति, नकोदर

वर्तमान कार्यकारिणी

प्रधान— १. श्री हरि राम चोपड़ा

उपप्रधान— २. श्री बलदेव मिश्र

३. श्री बाबू राम अमर

४. श्री हरिवंश लाल प्रभाकर

५. प्रो० यज्ञदत्त जिज्ञासु, एम० एस० सी० (रसायन)

महामन्त्री— ६. प्रो० बलदेव कृष्ण एम० ए० (अर्थ शास्त्र)

संयुक्तमंत्री— ७. प्रो० ज्ञान सिंह मस्ताना एम० ए० (इतिहास, राजनीति)

८. प्रो० यशपाल वर्मा एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी)

संगठन मन्त्री— ९. प्रो० अशोक भाटिया एम० ए० (अंग्रेजी)

प्रचार मन्त्री— १०. श्री हंसराज आर्य

कोषाध्यक्ष— ११. प्रो० रवीन्द्र नागर एम० ए० (इतिहास)

निरीक्षक— १२. श्री प्रेम सागर शर्मा बी० ए०, बी० टी०

अंतरंग सदस्य— १३. प्रो० ठाकुरदत्त जोशी एम० ए० (पंजाबी, अंग्रेजी)

१४. प्रो० तृप्ता ज्ञान सिंह एम० ए० (इतिहास, राजनीति)

१५. प्रो० हरिश्चन्द्र भल्ला एम० ए० (गणित)

१६. प्रो० मोहन सपरा एम० ए० (हिन्दी)

१७. प्रो० रंजन बाला (अंग्रेजी, हिन्दी)

१८. प्रो० प्रीतपाल कौर एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी)

१९. श्री नरेन्द्र पाल भटारा

२०. कामरेड विश्वामित्र

२१. श्रीमती सावित्री देवी

सम्पादक की ओर से

परम पिता परमात्मा की असीम कृपा तथा साथियों के प्रेम और विश्वास वश प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन का सौभाग्य मिला। "अंग्रेजी हटाओ" का काम वास्तव में महान् पुण्य का काम है। इसे करने का अवसर पाना छोटे-मोटे सौभाग्य का फल नहीं है। जिस निष्काम भाव की गीता में स्तुति की गई है, "अंग्रेजी हटाओ" के काम में उसकी पूरी चरितार्थता है। इसका फल पुरस्कार रूप में कर्त्ता को सर्वथा अलभ्य है, हाँ दण्ड मिल सकता है। उद्देश्य की सफलता में सारा समाज लाभान्वित होगा कोई व्यक्ति विशेष नहीं। व्यक्ति विशेष को तो अपने संघर्ष के क्रियाकाल में प्रायः केवल अपमान, प्रताड़ना और गालियों की ही प्राप्ति होती है।

"अंग्रेजी हटाओ" अपने आप में एक पूर्ण दर्शन है। इसके स्वरूप को दो चार मिनटों में नहीं समझा जा सकता। इसे समझाने के लिए एक-एक व्यक्ति के साथ कई कई दिन लगाने पड़ते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ इस दर्शन के प्रसारकों को समय की बचत तथा प्रभाव की व्यापकता प्रदान करेगा।

एक हज़ार प्रतियों का यह संस्करण पंजाब के पुस्तकालयों के लिए है तथा पूर्णतः निःशुल्क है। पहले इसे पाँच खण्डों वाला तथा सजिल्द प्रकाशित करने की योजना थी किन्तु दो खण्ड घट जाने से आकार इतना छोटा रह गया है कि जिल्द के बिना भी इसकी सम्भाल हो सकती है। वे दो खण्ड हमें विवशता वश कम करने पड़े हैं। हमारी योजना के अनुसार चौथा खण्ड दस्तावेज़ का तथा पाँचवाँ कविताओं का होता। लगभग छह सात वर्ष पूर्व भारत में, विशेषकर उत्तरी भारत में "अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन" का ज्वार आया था। उसका विवरण तथा न्याय के दरबार में अंग्रेज़ी (श्री राजनारायण के मुकदमें में लोकभाषा में अपने पक्ष की प्रस्तुति के लिए माँग वाला पहलू) हम इस दस्तावेज खण्ड में देना चाहते थे। आन्दोलन का विवरण उन दिनों दिनमान में घुमन्तु संवाददाता द्वारा धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। हमने दिनमान के उन अंकों को किसी भी मूल्य पर पाने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। इस विवरण के बिना 'न्याय के दरबार में अंग्रेजी' वाला विवरण भी नहीं छापा गया क्योंकि यह खण्ड दूसरे खण्डों के अनुपात में बड़ा छोटा रह जाता। अच्छी कविताओं के संकलन में भी हम असफल रहे। महाकवियों ने हमारी प्रार्थना को उपहास माना। जो थोड़ी बहुत कविताएँ प्राप्त हुई उनमें अधिकांश बड़ी हल्की थीं। प्राप्त हुई कविताओं में डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी की कविताएँ समिति की गोष्ठी में विशेष सराही गई थीं, अतः उनके रस से अपने पाठकों को वंचित रखना हमने उचित न समझा। इन्हें दूसरे ढंग से ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। कविताओं के खण्ड का अभाव हमें अब भी खल रहा है यदि हमारे पास कुछ अच्छी कविताएँ और आ गईं तो उनका संकलन अलग से प्रकाशित करेंगे कवियों के पते तथा प्रतिरूप समेत। कागज भी अच्छा रखेंगे। उसके परिशिष्ट में दस्तावेज खण्ड भी दिया जा सकता है।

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में हमने वे बातें रखी हैं जिनका सम्बन्ध अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन से साक्षात् न होकर परम्परया है। ग्रन्थ के वर्तमान तीन खण्ड ये हैं :—

१. अंग्रेजी हटाओ। २. तर्क और निश्चय। ३. आशीर्वाद और समर्थन।

पहले खण्ड में डा० वेद प्रताप वैदिक की चर्चित पुस्तक "अंग्रेज़ी हटाओ : क्यों और कैसे ?" है। दूसरे खण्ड के अधिकांश वस्तुविषय का आधार "भाषा" ग्रन्थ (प्रकाशक-नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार हैदराबाद, आन्ध्र) है। तीसरे खण्ड की सामग्री विविध पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों से संकलित की गई है। "अंग्रेजी हटाओ पत्रिका" के अंकों से हमने सर्वत्र कुछ न कुछ लिया है। ग्रन्थ के अन्त में सहयोगियों की सूचि भी संलग्न कर दी गई है।

पुस्तक छपते समय समिति की कार्यकारिणी के सामने यह प्रश्न भी आया कि पंजाब से बाहर के पुस्तकालय या पाठक-विशेष यदि इस ग्रन्थ को अपने पास रखना चाहें तो क्या करें ? इस समस्या के समाधान के लिए समिति ने 'राज पब्लिशर्ज, अड्डा होशियारपुर, जालन्धर (पंजाब) को दो सौ पचास पुस्तकें छाप कर बेच लेने की अनुमति दे दी हैं। उन्होंने मूल्य चार रुपये रखा है।

पंजाब में 'अंग्रेजी हटाओ' आन्दोलन पर निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—१. हिन्दी क्या है ? (हिन्दी, उर्दू, पंजाबी में), ४. लोकराज बनाम सामन्ती भाषा (उर्दू में). ५. असीं की चाहुँदे हाँ ? (पंजाबी में), ६. हिन्दी बनाम अंग्रेजी, ७. अंग्रेजी हटे, क्यों और कैसे ? ८. अंग्रेजी का शव परीक्षण, ९. अंग्रेजी हटाने की आवश्यकता, १०. भाषा समस्या : एक ज्वलन्त प्रश्न, ११. हिन्दी व्याकरण कुछ अपेक्षित संशोधन, १२. राष्ट्रभाषा कैसे उन्नत हो ? १३. प्रस्ताविका (सभी हिन्दी में), १४. बूहे ते बारियाँ (पंजाबी में)। इनमें से पहली ग्यारह अंग्रेजी उन्मूलन समिति तथा अंग्रेजी हटाओ समिति लुधियाना ने प्रकाशित की हैं तथा अन्तिम तीन अंग्रेजी हटाओ समिति नकोदर ने। "बूहे ते बारियाँ" यह पुस्तक वास्तव में "चले देश में देशी भाषा" इस ग्रन्थ का ही बहुत कुछ पंजाबी रूपान्तर है। इसकी प्रतियाँ भी पुस्तकालयों को निःशुल्क दी जा रही हैं अतः हिन्दी न जानने वाले साथियों को इसे पढ़ने की प्रेरणा दीजिए।

हिन्दी क्षेत्रों में 'अंग्रेजी हटाओ' के लिए भूमि अधिक उर्वर है। वहाँ थोड़े ही श्रम से काम चल सकता है। बी० एड० की ट्रेनिंग के दौरान कुछ मास मुझे बिजनौर रहने का अवसर मिला। वहाँ मेरी प्रेरणा से जब कुछ साथियों ने अंग्रेजी उन्मूलन समिति बनाई तो कुछ ही महीनों में बड़ा काम हो गया। "हिन्दी बनाम अंग्रेजी" तथा "अंग्रेजी हटाओ" नाम से दो प्रकाशन भी उन दिनों वहाँ से हुए। परिशिष्ट में उनके एक इश्तहार की प्रतिलिपि छापी गई है जो वहाँ की समिति ने जिला-नुमाइश के अवसर पर भारी संख्या में छपवा कर बँटवाया था। ऐसे इश्तहारों द्वारा आप भी अपने यहाँ अंग्रेजी हटाओ सम्बन्धी चिन्तन को उभार सकते हैं।

इस प्रकाशन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया, सुझाव, संशोधन या सम्मति श्री हरि राम चोपड़ा, नूरमहल रोड, नकोदर के पते पर भेजिये।

यदि इस ग्रन्थ द्वारा लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा सम्बन्धी चिन्तन को थोड़ा बहुत बल मिला तो समिति अपने परिश्रम को सार्थक मानेगी। अन्त में मैं समिति के सदस्यों का तथा प्रकाशन में सहयोग देने वालों का अतीव आभारी हूँ जिनकी लगन एवं श्रम के फल को मैं पाठकों तक पहुँचाने का माध्यम बन सका। हूँ —यशपाल सिंह

अथ मंगलाचरणम्

जसोदा हरि अंग्रेजी पढ़ावे
'मम्मी' 'डैडी' कहहु दुलारे. सुनि मोहि आनन्द आवे
मेरो लाल कान्वेन्ट जात है, इंग्लिश पोइम गावे
'टा टा' कहि जब विदा होत है, रोम रोम हरषावे
'आँटी' सुनि चाची बलि जावे 'अंकिल' मूंछ फरकावे
डांस करत कजिन 'सिस्टर' संग नन्द बबा मुस्कावे
बरसाने या छवि को निरखत अंगरेजहु सरमावे

—डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी

समिति के जयघोष

* अंग्रेजी हटाओ देश बचाओ ।
* लाजमी अंग्रेजी बन्द करो, अंग्रेजी फेल, पास करो ।
* अंग्रेज यहां से चले गये, अंग्रेजी हमें हटानी है ।
* अंग्रेजी के पिट्ठू कौन ? अंग्रेजों के मानस पुत्र ।
* जन जन के मन की अभिलाषा, चले देश में देशी भाषा ।

*

यदि मैं 'तानाशाह होता' तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बन्द कर देता । सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने को मजबूर कर देता । जो आनाकानी करते उन्हें बरखास्त कर देता । मैं पाठ्य पुस्तकों को तैयार किए जाने का इन्तजार न करता ।

— महात्मा गांधी

अभ्यर्थना

* कृपया अपने हस्ताक्षर अंग्रेजी में न करें ।
* पते अंग्रेजी में न लिखें ।
* तार, निमन्त्रणपत्र, बधाईपत्र और कुशलपत्र अंग्रेजी में न भेजें ।
* नामपट तथा दूसरे बोर्ड अंग्रेजी में न लगाएँ ।
* प्रत्येक कार्य में भारतीय भाषाओं का ही प्रयोग करें ।

चले देश में देशी भाषा

प्रथम खण्ड

अंग्रेजी हटाओ

डा० वेद प्रताप वैदिक
सह सम्पादक—नवभारत टाइम्स नई दिल्ली

जब एक बार शराब पीने की आदत बढ़ जाती है तो उसे रोकने के लिए कानून का सहारा लेना पड़ता है। आज अंग्रेज़ी शराब से ज्यादा नुकसान कर रही है और अंग्रेजी बन्दी शराब-बन्दी से भी ज्यादा ज़रूरी है।

डा० लोहिया

विवरण

'अंग्रेजी हटाओ' का मतलब

अंग्रेजी हटाओ का मतलब यह कतई नहीं है कि हमें अंग्रेजी से नफरत है। किसी भी भाषा या साहित्य से कोई मूर्ख ही नफरत कर सकता है! यदि कोई स्वेच्छा से अंग्रेजी या दुनिया की अन्य भाषाएँ पढ़ना चाहे, उनके माध्यम से ज्ञान का दोहन करना चाहे तो हमें प्रसन्नता ही होगी। लेकिन आपत्ति तब उपस्थित होती है जब ज्ञान के एक साधन को रुतबे का, विशेषाधिकार का, शोषण का हथियार बना लिया जाए।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन अंग्रेजी का नहीं, बल्कि उसके रुतबे का, विशेषाधिकार का, उसकी शोषणकारी प्रवृत्ति का विरोधी है। इसलिए हमने कहा 'अंग्रेजी हटाओ।" हमने यह कभी नहीं कहा कि 'अंग्रेजी मिटाओ'। अब सवाल यह है कि अंग्रेजी कहां से हटे? न्यायालय से हटे, राज-काज से हटे, कारखानों से हटे, फौज से हटे, अस्पताल से हटे, पाठशाला-प्रयोगशाला से हटे, घर-द्वार-बाजार से हटे। हट कर कहां जाए? पुस्तकालयों में जाए, विदेशी भाषा-शिक्षण संस्थानों में जाए। वहां भी सारी जगह घेरकर पसरे नहीं। दुनिया की अन्य भाषाओं के लिए भी थोड़ी-थोड़ी जगह खाली करे। हटना उसे सभी जगह से पड़ेगा। कहीं से थोड़ा, कहीं से ज्यादा।

लुधियाना के कुछ प्राध्यापक बन्धुओं ने मुझसे कहा कि 'अंग्रेजी हटाओ' में से निषेधात्मकता की गंध आती है। यह 'निगेटिव' नारा है। मैंने पूछा, अहिंसा क्या है, अस्तेय क्या है, अपरिग्रह क्या है, अद्वैत क्या है? क्या ये सब निषेध के सिद्धान्त नहीं हैं? महात्मा गांधी का 'असहयोग' क्या था? इन्दिरा गांधी का 'गरीबी हटाओ' क्या है? यह नारा निषेधात्मक ही नहीं है, बल्कि अंग्रेजी हटाओ' की भौंडी-सी नकल भी है (क्योंकि गरीबी तो मिटाई जानी चाहिए)। निषेध से डरिए मत। सृष्टि के नियम को समझिए। बिना ध्वंस के निर्माण नहीं हो सकता। छोटा-सा मकान भी बनाना हो तो नींव खोदनी पड़ती है। जो खुदाई के डर से नींव नहीं डालता, उसके मकान का अंजाम क्या होगा? वही होगा जो पिछले पच्चीस वर्षों में हिन्दी का हुआ। हिन्दी वाले लोग अंग्रेजी को हटाये बिना हिन्दी को लाना चाहते थे। नतीजा क्या हुआ? अंग्रेजी अपने स्थान पर जमी रही और हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में एक नकली लड़ाई चल पड़ी। अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन इस नकली लड़ाई का

विरोध करता है। वह समस्त भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी के वर्चस्व के विरुद्ध एक सशक्त चट्टान की तरह खड़ा करना चाहता है। जब तक अंग्रेजी नहीं हटती, भारतीय भाषाएं एक नहीं होंगी।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन और हिन्दी चलाओ आन्दोलन में भी बुनियादी फर्क है। हिन्दी आन्दोलन वाले लोग चाहते हैं कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले! उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं है कि अंग्रेजी की तरह हिन्दी भी शोषण का, विशेषाधिकार का और रुतबे का हथियार बन सकती है। अगर हिन्दी के आने का नतीजा यह हो कि अन्य भाषावालों के लिए नौकरियों का, अवसरों का, आगे बढ़ने का मार्ग दुर्गम हो जाए तो फिर हिन्दी को लाने से फायदा क्या हुआ? वह भी अंग्रेजी की तरह देश में गैर-बराबरी को बढ़ाएगी। फर्क इतना होगा कि आज अंग्रेजी के कारण जहां दो प्रतिशत लोग सारे देश को रौंद रहे हैं, वहां ३० प्रतिशत लोग बाकी ७० प्रतिशत लोगों के साथ अन्याय करेंगे। हम हर अन्याय के विरुद्ध लड़ना चाहते हैं, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। मैं नहीं चाहता कि मेरी मातृभाषा वही घिनौना कार्य करे जो कि अंग्रेजी कर रही है। इसीलिए हम सारे देश में हिन्दी को थोपने के विरोधी हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि हमने सारे देश को जोड़नेवाली भाषा के सवाल पर विचार नहीं किया है। सारे देश को जोड़ने वाली भाषा कोई भी भारतीय भाषा हो सकती है। लेकिन इस काम के लिए हिन्दी सबसे अधिक अनुकूल भाषा होगी क्योंकि किसी भी एक भाषा की तुलना में इसके बोलने वाले सबसे ज्यादा हैं। इसकी लिपि—देवनागरी—सरल और वैज्ञानिक है तथा यह भाषा भारत के सबसे बड़े इलाके में बोली जाती है। जहां तक हिन्दी देश की सारी भाषाओं को जोड़ती है। वहां तक हिन्दी को लाने में हमें कोई एतराज नहीं है। लेकिन हिन्दी अन्य भाषाओं का हक मारे, यह उचित नहीं है। हर प्रदेश में, उस प्रदेश की भाषा को पूरी तरह से चलना चाहिए। केन्द्र में भी प्रदेशों से आने वाले लोगों को अपनी-अपनी भाषा के जरिए नौकरी पाने, संसद में बोलने, न्याय पाने और शिक्षा पाने का पूरा अधिकार होना चाहिए। उन्नति के अवसरों में हिन्दी को आड़े नहीं आना चाहिए। हिन्दी का काम केवल विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्क स्थापित करना है। केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय संस्थानों का अपने तईं सारा काम-काज केवल हिन्दी में चल सकता है, चलना चाहिए। लेकिन प्रदेशों से उनकी भाषा में आने वाले पत्रों को केन्द्र के द्वारा न केवल स्वीकार किया जाना चाहिए वल्कि उन्हीं की भाषा में उन पत्रों का जवाव दिया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति, संस्था या प्रादेशिक सरकार को इसलिए घाटे में नहीं रखा जाना चाहिए कि वह हिन्दी में प्रवीण नहीं है।

इस कार्य को कम खर्चीला और सुगम बनाने के लिए यह आवश्यक है

कि हर सरकारी विभाग के साथ कुछ अनुवादक संलग्न कर दिए जाएं। ऐसे अनुवादक भी हो सकते हैं, जो कि तीन-तीन, चार-चार, पांच-पांच भाषाएं एक साथ जानते हों। इन अनुवादकों पर होने वाला खर्च अनिवार्य अंग्रेजी को चलाए रखने के लिए होने वाले खर्च से निश्चित रूप से कम होगा।

सोवियत संघ और यूरोप के उन देशों में जहां अनेक भाषाएं बोली जाती हैं, वहां ऐसा ही किया जाता है। कोई भी देश अनुवाद के खर्चे के डर से किसी विदेषी भाषा को अपने आप पर नहीं लादता। देशी भाषाओं की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक होने के कारण उनमें परस्पर अनुवाद करना इतना सरल होता है कि कुछ ही वर्षों में बहुत-से लोग अपने आप कई भाषाएं सीख जाते हैं और फिर अनुवादकों की जरूरत नहीं रहती, जैसा कि स्विटजरलैंड और यूगोस्लाविया में हुआ है।

इस बात पर यह आपत्ति की जा सकती है कि सरकार अपना समय राज-काज में लगाए या वह इन भाषाओं के चक्कर में पड़ जाए। मैं पूछता हूं कि अगर जनता से सीधे उसकी जुबान में उसके दुःख दर्द नहीं सुनोगे और सीधे उसकी जुबान में उसकी समस्याओं का समाधान नहीं दोगे तो अच्छा और सच्चा राज-काज कैसे चलाओगे? नकली समस्याओं और उनके नकली समाधानों का राज-काज तो इस देश में पिछले पच्चीस साल से चल ही रहा है। अगर आप देश के एक औसत आदमी को यह विश्वास दिलाएंगे कि बड़े से बड़े स्तर पर भी उसकी भाषा को नीचा नहीं देखना पड़ेगा तो काम-चलाऊ हिन्दी सीखने में उसे जरा भी एतराज नहीं होगा। आज दक्षिण का आदमी हिन्दी का विरोध क्यों करता है? सिर्फ इसलिए कि उसे डर है कि उसकी नौकरियां चली जाएंगी। वह अवसरों की दौड़ में पिछड़ जाएगा। हिन्दी आन्दोलन ने 'हिन्दी' 'हिन्दी' चिल्लाकर इस डर को बढ़ाया है। इस डर को पुख्ता तौर पर खत्म किया जाना चाहिए। यह डर तभी खत्म होगा जबकि अंग्रेजी हटेगी। अंग्रेजी हटेगी तो उत्तर भारत के लोग दक्षिण की भाषाएं सीखेंगे। अंग्रेजी रहती है तो उत्तर भारत के लोग सोचते हैं कि तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम सीखकर क्या करेंगे? अंग्रजी में ही बात कर लेंगे। इसी प्रकार दक्षिणवाले भी सोचते हैं। जब अंग्रेजी में काम चल जाता है तो हिन्दी क्यों सीखें? इस प्रकार अंग्रेजी की कृपा से उत्तर दक्षिण के बीच सच्चा मेल-मिलाप ही नहीं होता। अंग्रेजी के जरिये जो नकली मेल-मिलाप होता है, वह भी कितने लोगों का? २ प्रतिशत लोगों का भी नहीं। इन्हीं २ प्रतिशत लोगों का काम चल रहा है। बाकी ९८ प्रतिशत लोगों का काम ठप्प है। उनके जीवन में अंधेरा ही अंधेरा है। अंधेरेवाले लोगों में दक्षिण और उत्तर की सभी साधारण जनता शामिल है। अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन देश के करोड़ों लोगों को अंधेरे से उजाले की ओर ले जाना चाहता है। वह उत्तर और दक्षिण में, पूरब और पश्चिम में कोई भेद नहीं करता। उसके लिए सारे देश की गरीब, ग्रामीण, दमित, पीड़ित, विपन्न जनता एक है। वह इस सामान्य जनता की भाषाओं

को आगे लाना चाहता है और एक छोटे-से-छोटे आदमी के दिल में भी यह अहसास पैदा करना चाहता है कि वह अपनी भाषा के जरिये बड़े-से-बड़े पद पर पहुँच सकता है।

इसी आधार पर मैं कहता हूं कि अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन मनुष्य मात्र की मुक्ति का आन्दोलन है। पृथ्वी के किसी भी हिस्से पर यदि किसी भी मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति का गला घोंटा गया तो अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन चुप नहीं बैठेगा। इसीलिए इस आन्दोलन ने तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में बांगला का, श्रीलंका में सिंहली और तमिल का, अफगानिस्तान में पश्तो और फारसी का; तन्जानिया में स्वाहिली का और उरुग्वे में गोरानी भाषा का सदा समर्थन किया है। हमने यह कभी नहीं कहा कि हम इंगलैंड से अंग्रेजी हटाना चाहते हैं लेकिन हम यह जरूर चाहते हैं कि वहां वेल्श और आयरिश लोगों को अपनी भाषाओं का प्रयोग करने दिया जाए। हम यह भी नहीं चाहते कि अमरीका से अंग्रेजी हटे लेकिन हम यह अवश्य चाहते हैं कि प्यूरटोरिकी और इतालवी लोगों पर अंग्रेजी थोपी नहीं जाए। यह संयोग की बात है कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजी एक दमनकारी भूमिका अदा कर रही है। उसके स्थान पर फ्रांसीसी, फारसी, हिस्पानी, डच आदि कोई भी भाषा हो सकती थी। जो भी होती, हम उसका उतना ही डटकर विरोध करते, जितना कि अंग्रेजी का कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन का लक्ष्य किसी भाषा-विशेष के विरुद्ध हाथ धोकर पीछे पड़ जाना नहीं है बल्कि उस दमनकारी प्रवृत्ति का विरोध करना है जिसके कारण एक छोटा-सा तबका अपने स्वार्थों के लिए करोड़ों लोगों के हितों को हानि पहुंचाता है और इस निकृष्ट कर्म को करने के लिए भाषा को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन किसी राजनैतिक दल-विशेष का आन्दोलन नहीं है। इसमें सभी दलों, सभी तबकों, सभी विचारों, सभी उपासना पद्धतियों, सभी प्रान्तों और सभी भाषाओं के लोगों का स्वागत है। इसके द्वार सभी के लिए खुले हैं। जो चाहे सो आवे।

(३० जून १९७३ को तिलक नगर सांस्कृतिक मंच, इन्दौर के कार्यक्रम में दिये गये भाषण के आधार पर)

———

लंदन के चिड़ियाघर में चिम्पांजी की तस्वीरें मैंने एक बार एक पत्रिका में देखी थीं। वह सूट पहनता हैं, टाई बांधता है, सिगार पीता है, कांटे छुरी से खाना खाता है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज ने कई लाख खानदानी गुलामो को उस चिम्पांजी की तरह सिखाया था। और गांधी जी का ख्याल था कि इन्हीं को लेकर राष्ट्रीय क्रान्ति की जा सकती है। नतीजा जो निकला वह हमारे सामने है। राष्ट्रीय क्रान्ति के नाम पर चिम्पांजी नुमा खानदानी गुलामों का राज मिला।

ओम प्रकाश दीपक

———

अंग्रेजी क्यों हटायें ?

भारत से अंग्रेज़ी को हटाने का औचित्य सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि उन तर्कों की चीर-फाड़ की जाए जो अंग्रेज़ी को बनाये रखने के पक्ष में दिये जाते हैं।

विश्व-भाषा होने का भ्रम

यह कहा जाता है कि यदि हिन्दुस्तान से अंग्रेज़ी चली गई तो सारी दुनिया से भारत का सम्पर्क टूट जाएगा। अंग्रेज़ी ऐसी खिड़की है जिससे झांककर भारत दुनिया की तरफ देखता है। अंग्रेज़ी विश्व-भाषा है। अंग्रेजी को हटाने वाले लोग भारत को एक संकुचित देश बना देंगे, एक बन्द देश बना देंगे।

इस प्रकार का तर्क वही लोग देते हैं, जिन्होंने इंग्लैंड और अमरीका के अलावा कोई दूसरा देश देखा तक नहीं है या अपने जीवन में अंग्रेजी के अलावा कोई भी अन्य विदेशी भाषा पढ़ी तक नहीं है। बेचारे कुएं के मेंढ़क की दुनिया आखिर कितनी बड़ी होगी ? कुएं के बाहर निकले तो दुनिया का कुछ पता भी चले। हिन्दुस्तान का एक औसत पढ़ा-लिखा आदमी अंग्रेज़ी तालीम की देन है। पिछले दो सौ सालों से वह अंग्रेज़ी के कुएं में पड़ा-पड़ा टर्रा रहा है। उसे पता नहीं कि इस कुएं के बाहर फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी, चीनी, हिस्पानी, जापानी और फारसी आदि भाषाओं की एक समृद्ध और रंग-बिरंगी दुनिया भी बसी हुई है।

अंग्रेज़ी के प्रति एकांगी प्रेम का परिणाम यह हुआ कि भारत अपने पुराने मालिक इंग्लैंड से और उसके नये उत्तराधिकारी अमरीका से (एक पिछलग्गू की हैसियत में) काफी अच्छी तरह से जुड़ गया लेकिन बाकी दुनिया से उसके सीधे रिश्ते कायम नहीं हो पाये। अंग्रेज़ों के कुछ पुराने गुलाम देशों जैसे पाकिस्तान, बर्मा, लंका, घाना आदि तथा जहां अंग्रेज़ जाकर बस गये ऐसे देशों जैसे अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि को छोड़कर दुनिया के किसी भी देश में अंग्रेज़ी का इस्तेमाल नहीं होता। और पुराने गुलाम देशों में भी अंग्रेज़ी का इस्तेमाल सिर्फ नौकरशाह और अंग्रेज़ी तालीम-याफता लोग करते हैं। उनकी संख्या प्राय २ प्रतिशत से भी कम होती है। ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ी को विश्व-भाषा कहना तथ्यों को झुठलाना है। (अंग्रेजी की तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीयता पर अगले लेख में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है)।

अंग्रेज़ी को विश्व-भाषा मान लेने का सीधा दुष्परिणाम यह हुआ कि दुनिया के हर देश के साथ हम अंग्रेज़ी में व्यवहार करते हैं, चाहे उसकी भाषा जर्मन हो, रूसी

हो, चीनी हो या फारसी ! हर रोग का हमारे पास एक ही इलाज है, जमाल घोटा ! इसी का नतीजा है कि श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित जब राजदूत का पद ग्रहण करने रूस गईं तो उनके अंग्रेज़ी में लिखे परिचय-पत्र को स्तालिन ने उठाकर फेंक दिया और पूछा कि क्या आपकी अपनी कोई भाषा नहीं है ? इसी का परिणाम है कि जिन देशों में हमारे राजदूतों को नियुक्त किया जाता है, वे उन देशों की भाषा नहीं सीखते और अंग्रेज़ी में काम चलाने की असफल कोशिश करते रहते हैं। उस देश के राजनीतिज्ञ क्या सोचते हैं, उस देश की जनता का विचार-प्रवाह किधर जा रहा है, उस देश के अखबार क्या लिख रहे हैं, यह हमारे राजदूतों को तभी पता चल सकता है और जल्दी और ठीक-ठीक पता चल सकता है जबकि वे स्थानीय भाषाएं जानते हों। प्रायः होता यह है कि या तो वे दुभाषिये के जरिये सूचनाएँ और गुप्त जानकारियाँ इकट्ठी करते हैं या तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं जब तक कि लन्दन और न्यूयार्क के अंग्रेज़ी अखबार उन्हें पढ़ने को न मिलें । घटनाएं हंगरी और चेकोस्लावाकिया में घटें, उनकी आंख के सामने घटें और बुडापेस्ट और प्राहा में बैठे हमारे राजदूत उन घटनाओं पर तब तक अपनी रपट नई दिल्ली नहीं भेजें जब तक कि उन्हें 'लन्दनिया' विवरण प्राप्त नहीं हो तो इससे बढ़कर विडम्बना क्या होगी ? ऐसा इसलिए होता है कि वे भाषायी तौर पर अपाहिज है। वे अंग्रेज़ी की बैसाखी के सहारे चलते हैं। नकली बैसाखियां असली पैरों से भी अधिक प्यारी हो गई हैं। जो कौम बैसाखियों पर चलती है, वह हजार साल की यात्रा के बावजूद भी स्वयं को उसी स्थान पर खड़ा हुआ पाती है, जहां से कि उसने पहला कदम उठाया था।

अंग्रेज़ी को विश्व-भाषा मानने के भ्रम के कारण हमारे देश के बौद्धिकों को दुनिया में क्या चल रहा है, इसका पता बहुत देर से चलता है। और कभी-कभी गलत ढंग से पता चलता है। उसका कारण हमारा अंग्रेज़ी पर निर्भर रहना है। लातीनी अमरीका में यदि कोई क्रांति होती है तो उसे हम बोलिविया या क्यूबा से निकलने वाले हिस्पानी अखबारों के द्वारा नहीं जानते बल्कि अंग्रेज़ी भाषा के समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के द्वारा जानते हैं। जब तक अंग्रेज़ी अखबार उन घटनाओं की रपट नहीं छापें, हम अज्ञान में रहने के लिए विवश हैं, क्योंकि अंग्रेज़ी के चक्कर में हिन्दुस्तान का आदमी हिस्पानी या गोरानी भाषा तो सीखता नहीं है। इसके अलावा अंग्रेज़ी अखबार जब लातीनी अमरीका या किसी अन्य देश की खबर छापता है तो उसे अपने देश के हित के मुताबिक तोड़ता-मोड़ता है। चीन के बारे में हमारे देश में बहुत-सी गलतफहमियां क्यों फैलीं ? इसी कारण कि हम चीनी अखबार और पत्रिकाएं तो पढ़ते नहीं, हां, चीन के बारे में लन्दन और न्यूयार्क के अखबार जो कुछ छापते हैं, उसे हम ज्यों का त्यों निगल जाते हैं। अंग्रेज़ी के अधिकार के कारण सारी दुनिया को हमें अमरीकी या ब्रिटिश चश्मा चढ़ा कर देखना पड़ता है। हमारी अपनी स्वतन्त्र और निष्पक्ष राय किसी भी मामले पर बन नहीं पाती। जब दुनिया के देशों के बारे में मिलनेवाली

हमारी मूलभूत सूचनाएँ ही रंगी-पुती होती हैं तो हम एक साफ-सुथरी विदेश नीति कैसे बना सकते हैं ?

अंग्रेज़ी को विश्व-भाषा मानने का एक नतीजा यह भी होता है कि हम यह समझने लगते हैं कि दुनिया का सारा ज्ञान अंग्रेज़ी में है जबकि कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें दुनिया की अन्य भाषाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं, अनुसंधान हुए हैं। हम उन सबसे या तो वंचित रह जाते हैं या उन्हें अंग्रेज़ी अनुवाद के जरिये ही पढ़ते हैं। आज विज्ञान की जितनी पुस्तकें रूसी भाषा में हैं, दुनिया की किसी भाषा में भी नहीं हैं। जर्मन भाषा में जितने ऊँचे स्तर के दार्शनिक हुए हैं—कान्ट, हीगल, मार्क्स जैसे—अंग्रेज़ी भाषा में नहीं हुए। दुनिया के बड़े-बड़े अखबार जापानी और रूसी भाषा में निकलते हैं—असाई शिम्बून और प्रावदा, न कि अंग्रेज़ी में। कला, संगीत, चित्रकारी, पुरातत्व आदि विषयों पर आज भी फ्रांसीसी भाषा में जितना गहन और प्रचुर साहित्य उपलब्ध है, उसकी तुलना में अंग्रेज़ी साहित्य पासंग के बराबर भी नहीं है। दुनिया के इतिहास को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली पुस्तकें—बाइबिल, वेद, कुरान, धम्मपद, जिन्दावेस्ता, दास कापीटल आदि—भी अंग्रेज़ी में नहीं लिखी गई। लेकिन जिन लोगों के दिमाग पर अंग्रेज़ी का भूत सवार है, उनके लिए ये सारे तथ्य निरर्थक हैं। उनको खेत और खलिहान में कोई फर्क दिखाई नहीं पड़ता। उनके लिए चर्चिल अगर अंग्रेज़ था तो नेपोलियन भी अंग्रेज़ ही होगा। ग्लेडस्टोन अगर अंग्रेज़ी बोलता था तो लेनिन भी अंग्रेज़ी ही बोलता होगा। दुनिया का सारा ज्ञान, साहस, शौर्य, प्रतिभा सब कुछ अंग्रेज़ी में है, ऐसा सोचनेवाला दिमाग एक छोटा और संकुचित दिमाग है। वह विश्व-स्तर पर सोचनेवाला दिमाग बन ही नहीं सकता।

जो विश्व के साथ खुला सम्पर्क रखना चाहता है, उस दिमाग की सिर्फ एक खिड़की ही खुली नहीं होगी, सिर्फ अंग्रेज़ीवाली खिड़की। अंग्रेज़ीवाली खिड़की खुली रहे, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन क्या एक अच्छे मकान में सिर्फ एक ही खिड़की होती है ? मकान वह अच्छा होता है, जिसमें कई खिड़कियां हों। चारों तरफ से खुली हवाएँ आयें। अगर एक खिड़की से बदबू आ रही हो तो दूसरी खिड़की भी खोली जा सके। लेकिन हिन्दुस्तान की भाषा के भवन में हमारे समझदार शासकों ने सिर्फ एक ही खिड़की बनाई है। उस खिड़की से अच्छा दृश्य दिखता हो या बुरा, सुगंध आती हो या दुर्गंध, उसे हमें खोले रखनी पड़ेगी। मजबूरी इतनी ही नहीं है, इससे भी ज्यादा है। इस भवन में न केवल एक ही खिड़की है बल्कि कोई दरवाजा भी नहीं है। बिना दरवाज़े के मकान में कोई सभ्य आदमी कैसे रह सकता है ? वह मकान भी क्या मकान है, जिसमें आने-जाने के लिए बन्दरों की तरह खिड़की से कूदना-फांदना पड़े। लेकिन हमारे शासकों ने सारे हिन्दुस्तान को पिछले पच्चीस साल में बंदरी सभ्यता में ढालने का प्रयत्न किया है। केवल अंग्रेज़ी के जरिये ही हम दुनिया को जान सकते हैं, केवल अंग्रेज़ी के जरिये ही भारत में कोई ऊँचा पद प्राप्त कर सकते हैं। अपनी भाषा

के दरवाजे से हम न तो दुनिया तक जा सकते हैं और न ही अपने देश की ऊँची मंजिलों पर पहुँच सकते हैं। ऊँची मंजिलों पर पहुँचना तो दूर रहा, इस देश में हिन्दी का टाइपिस्ट बनने के लिए भी अंग्रेज़ी जानना ज़रूरी है।

एक खिड़की वाले मकान, मकान क्या कोठरी; इस एक खिड़की वाली कोठरी में पनपी हुई बंदरी सभ्यता के कारण देश का प्रमुख बौद्धिक वर्ग नकलची बन गया है। उसकी धारणाएं, उसके अभिमत, उसकी विश्व-दृष्टि पश्चिमी साहित्य निर्धारित करता है। उसका अपना मौलिक चिन्तन कुंठित हो गया है, उसकी सृजन शक्ति को लकवा मार गया है। यदि पश्चिमी विशेषज्ञ भारत को 'पिछड़ा' राष्ट्र कहते हैं तो हमारे विशेषज्ञ भी तोते की तरह उसी बात को दोहराते हैं। आजकल अमरीकी विशेषज्ञों ने भारत को 'नया राज्य' कहना शुरू किया है उनकी देखा-देखी भारतीय नकलची विद्वान भी भारत को 'नया राज्य' कहने लगे हैं। उन्हें क्या यह पता नहीं है कि जब पृथ्वी पर अमरीका नाम की कोई चीज नहीं थी और लन्दन में जंगली कबीले जानवरों की तरह मार-धाड़ करते घूमते थे, उस समय भी याने आज से लगभग २ हजार साल पहले भी भारत में विक्रमादित्य की शानदार राज्य-व्यवस्था चल रही थी और चाणक्य जैसे महान् राजनीतिज्ञ ने राज्य-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए 'अर्थशास्त्र' नामक अद्वितीय ग्रन्थ की रचना की थी? यह सब जानते हुए भी हमारे विद्वानों को दर्शन में, इतिहास में, अर्थशास्त्र में, राजनीतिशास्त्र में पश्चिमी शब्द-रचना को स्वीकार करना ही पड़ता है, क्योंकि उनका सारा चिन्तन और चिन्तन को निर्मित करने वाली अधिकांश सूचनाएँ पश्चिम से आती हैं, सिर्फ अंग्रेज़ीवाले देशों से आती हैं। यह नहीं हो सकता कि वे अंग्रेज़ी चिन्तन-पद्धति को स्वीकार करें और उससे निकले हुए कुछ खतरनाक शब्दों या खतरनाक धारणाओं को मानने से इन्कार कर दें। जो गुड़ खाता है, उसे गुलगुले खाने ही पड़ेंगे।

हिन्दुस्तानी बुद्धिजीवी अगर अंग्रेज़ी चिन्तन को गुड़ की तरह खाये तो शायद उसे वह पचा भी ले, लेकिन उसे वह अफीम की तरह खाता है। अफीम उसके लिए ब्रह्म है। सार्वभौम सत्य है। एकोऽहं द्वितीयो नास्ति! दूसरा सब कुछ मिथ्या है। इसका नतीजा यह होता है कि वह आलसी और कामचोर बन जाता है। वह हमेशा दूसरों के बनाए गुरों और सूत्रों पर अपना जीवन चलाना चाहता है। अपना मार्ग स्वयं नहीं खोजना चाहता! अपना दीपक स्वयं नहीं बनना चाहता। उसकी सृजनशील, आलोचनात्मक बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। वह दुनिया की विभिन्न भाषाओं और साहित्यों से सामग्री का आकलन करके, उसमें से दाने और भूसे को अलग-अलग करने की क्षमता नहीं रखता। उसका क्षीर-नीर विवेक समाप्त हो जाता है। इसीलिए पिछले दो सौ सालों से हमारे विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का घोटा लगाया जाने के बावजूद भी आज तक कोई शेक्सपियर, कोई मिल्टन या कोई वर्ड्सवर्थ पैदा नहीं हुआ! शेक्सपियर को तो जाने ही दीजिए, वह तो ५००० साल भी घोटा लगाते रहें तो पैदा

नहीं हो सकता। शेक्सपियर या तुलसीदास या सूर या कालिदास जैसे गुलाब अपनी जमीन, अपनी आबो-हवा, अपनी भाषा में ही खिलते हैं। हाँ, जिसे आप 'विश्व-भाषा' समझते हैं, उसमें क्लर्क खूब पैदा किये जा सकते हैं जो बहुत दम मारने पर 'कॉन्वेन्ट' का गुदना गुदवाकर जी हुजूर अफसर बन जाते हैं। अगर भारत के बुद्धिजीवी अंग्रेजी को एक दबदबेदार विश्व-भाषा मानकर उसके बोझ के नीचे नहीं दबते और उसे अन्य विदेशी भाषाओं के समान एक उपयोगी विदेशी भाषा मानकर सीखते तो शायद भारत का अधिक भला होता।

राष्ट्रीय एकता और अंग्रेजी

कुछ लोग यह कहते हुए भी पाये गये हैं कि अंग्रेजी के कारण सारा भारत एक हुआ। यदि आप अंग्रेजी को हटा देंगे तो भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

ऐसी बेहूदा बात वे ही कह सकते हैं जिन्हें या तो भारत के इतिहास का ज्ञान नहीं है या जो तथ्यों को जानते हुए भी गफलत में पड़े हुए हैं। क्या अंग्रेजों के आने के पहले यह देश एक नहीं था? क्या हजारों साल पहले काश्मीर के लोग रामेश्वरम् नहीं जाते थे और केरल व मद्रास के लोग बद्रीनाथ और पुरी नहीं आते थे? क्या उत्तर और दक्षिण के इन लोगों को अंग्रेजी ने जोड़ रखा था? केरल में पैदा होने वाले आद्य शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में जो धर्म-प्रचार किया, क्या उसकी भाषा अंग्रेजी थी? भारत के दिग्-दिगन्तों में गूंजनेवाली शिव-पार्वती की प्रेम कथाएँ क्या अंग्रेजी में लिखी गई थीं? अंग्रेजीपरस्त लोगों के पास इन सवालों का कोई जवाब नहीं है।

हाँ, वे यह कह सकते हैं कि अंग्रेज ने सारे भारत में रेलें बिछाईं, सड़कें बनाईं, डाक-तार व्यवस्था फैलाई और इस सारे तंत्र को जोड़ा अंग्रेजी भाषा ने। लेकिन हमें कोई यह बताये कि अंग्रेज ने रेल की पटरी क्यों डाली? सड़क क्यों बनाई? डाक-तार क्यों चलाये? अगर इन सवालों का ठीक जवाब मिल जाए तो 'एकता की कड़ी' अंग्रेजी का रहस्य अपने आप खुल जाएगी।

जब मैं ८-१० वर्ष का था तो अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए अपनी दादी के साथ आगर जाया करता था। आगर उज्जैन के पास एक छोटा-सा गाँव है। खिलौना-नुमा छोटी रेल में बैठने में मुझे बड़ा मजा आता था लेकिन मैं हमेशा सोचता था कि आगर जैसे छोटे-से स्थान के लिए अंग्रेजों ने रेल क्यों बनाई? उसका राज़ काफी दिनों बाद खुला। मालूम पड़ा कि आगर में अंग्रेजों की छावनी रहती थी। जहाँ-जहाँ अंग्रेजों ने अपनी फौजें टिका रखी थीं, चाहे वह आगर हो, महू हो, अम्बाला हो या नीमच, सभी स्थानों पर रेलों और सड़कों का जाल बिछाया गया। उन स्थानों पर भी रेल और सड़कें ले जाई गईं, जहाँ खदानें थीं, जहाँ से ब्रिटेन के कारखानों को कच्चा माल मिलता था। रेलें और सड़कें इसलिए नहीं बिछाई गई थीं कि अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को एक-दूसरे के नजदीक लाना चाहता था बल्कि इसलिए बिछाई गई थीं

कि फौजों के शीघ्र आवागमन के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उठने वाली आवाजों का गला तुरन्त घोटा जा सके तथा मेनचेस्टर, लंकाशायर और बरमिंघम के कारखानों की मशीनें हिन्दुस्तान के कच्चे सामान को पचाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की श्रीसमृद्धि को कायम रख सकें। अपने साम्राज्य की हिफाजत और खुशहाली के लिए अंग्रेज ने जो तंत्र खड़ा किया था, उसे चलाने के लिए एक प्रशासन की जरूरत थी। प्रशासन के लिए एक जोड़ने वाली भाषा चाहिए। वह काम किया अंग्रेज़ी ने।

अंग्रेज़ी ने हुक्मरानों को जोड़ा, शासकों को जोड़ा, साम्राज्य के नुमाइन्दों को जोड़ा। अंग्रेज़ी ने जनता को कभी नहीं जोड़ा, देश को कभी नहीं जोड़ा। देश की जनता के लिए, साधारण जनता के लिए तो आज भी अंग्रेज़ी एक अजनबी भाषा है। पहलगांव की गलियों में घूमनेवाला कुली और कन्याकुमारी की धर्मशाला का चपरासी एक ही भाषा बोलता है लेकिन वह अंग्रेज़ी नहीं है, निश्चित रूप से नहीं है। जब लॉर्ड मेकाले ने भारत में अंग्रेज़ी की अनिवार्य शिक्षा की वकालत की तो उनका लक्ष्य हिन्दुस्तान में एकता फैलाना नहीं था बल्कि नौकरों और क्लर्कों की ऐसी फौज खड़ी करना था जिसके कंधे ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ बन सकें। इन नौकरों, अफसरों, क्लर्कों और फौजी हुक्मरानों की एकता की अगर देश की एकता कहा जा सके तो निश्चय ही अंग्रेज़ी ने देश की बड़ी 'सेवा' की है।

इसी अफसरी एकता की मेहरबानी के कारण १८५७ का स्वाधीनता संग्राम विफल हुआ। इसी ५०-६० हजार आदमियों की एकता ने देश के करोड़ों लोगों को पराधीनता के पाश में बांधे रखा। इसी एकता में ब्रिटिश साम्राज्य की घिनौनी हरकतों पर एक मोटा पर्दा डाले रखा। यह वही एकता है, जिसने एक तरफ बनारस के जन-आन्दोलन को लाठियों से दबा दिया तो दूसरी तरफ जलियांवाले बाग की जन-सभा को गोलियों से उड़ा दिया! बनारस की लाठियों और अमृतसर की गोलियों को एकता के सूत्र में बांधनेवाली भाषा अंग्रेज़ी ही थी।

हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए लड़नेवाले लोग जब तक अंग्रेज़ी के सहारे रहे, वे आज़ादी के खुले गीत गाने के बजाय साम्राज्य की बंधी-बंधाई विरुदावलियाँ ही गाते रहे। आजादी का संघर्ष कुछ कुलीन शिक्षितों का बुद्धि-विलास बनकर रह गया। गाँधी ने इस कुचक्र को तोड़ा। दयानन्द पहले ही हुंकार लगा चुके थे। गांधी ने काँग्रेस को गोष्ठी-कक्षों से खींचकर देश की कोटि-कोटि गरीब, ग्रामीण, दलित जनता के द्वार पर ला खड़ा किया। देसी भाषाओं में भाषण होने लगे, काँग्रेस के प्रस्ताव दूर से दूर की झोंपड़ियों में पहुंचने लगे। जिन अधिवेशनों में पहले हवाइयाँ उड़ती थीं, उन्हीं में हज़ारों-लाखों की भीड़ उमड़ने लगी। भारतीय भाषाओं ने देश में स्वाधीनता की शक्तियों को एक किया जबकि अंग्रेज़ी ने पराधीनता की शक्तियों को बल प्रदान किया!

अंग्रेज़ी ने न केवल पराधीनता की शक्तियों को एक किया बल्कि भारतीयों को

भारतीयों से भी अलग किया। दो रूपों में अलग किया। एक तो विभिन्न भाषाओं के बीच जो एक स्वाभाविक सेतु बनना था, उसके स्थान पर अंग्रेज़ी एक नकली सम्पर्क-भाषा बन गई। अंग्रेज़ी की उपस्थिति और उसे प्राप्त राज्याश्रय के कारण भारतीय भाषाओं और प्रादेशिक संस्कृतियों के मध्य जो मुक्त आदान-प्रदान होता था, वह रुक गया और उसके स्थान पर एक अत्यन्त अस्वाभाविक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत बनारस और बैंगलोर के मध्य जितनी निकटता थी, उससे कहीं अधिक निकटता बनारस और लन्दन तथा बैंगलोर और लन्दन के बीच स्थापित हो गई। बनारस से बैंगलोर जाने का रास्ता लन्दन से होकर गुजरने लगा। हिन्दी और कन्नड़ के बीच, बंगला और तमिल के बीच, मराठी और मलयालम के बीच अंग्रेज़ी का दलाल आ खड़ा हुआ। भारतीय भाषाओं और प्रादेशिक संस्कृतियों का परिचय परस्पर सीधे न होकर अंग्रेज़ी के जरिये होने लगा। भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता को अंग्रेज़ी ने सम्पर्क के स्तर पर विश्रृंखलित कर दिया। यदि अंग्रेज़ी हट जाए तो भारतीय भाषाओं को अलगाव की जिन क्यारियों में अंग्रेज ने बांधा था, वे सब अपने आप ढह जाएंगी। भारतीय ज्ञानपीठ इस दिशा में काफी उपयोगी काम कर रहा है।

अंग्रेज़ी ने जो दूसरा अलगाव पैदा किया, वह और भी अधिक खतरनाक साबित हुआ। वह अलगाव था—जनता और नेता के बीच, राजा और प्रजा के बीच, भद्र-लोक और साधारण जनता के बीच। अंग्रेज़ी के द्वारा खोदी गई यह खाई जब तक कायम है, समाजवाद और प्रजातंत्र के सुकुमार सपने इसमें दफन होते रहेंगे।

समाजवाद में बाधक

अंग्रेजी ने हमारे देश से गैर-बराबरी को बढ़ाया है। मैं यह नहीं कहता कि हमारे देश में जो आर्थिक असमानता दिखाई पड़ती है उसका एकमात्र कारण अंग्रेज़ी है लेकिन यह एक निर्विवाद सत्य है कि गैर-बराबरी को कायम रखने और बढ़ाने में अंग्रेज़ी का पूरा-पूरा हाथ है।

अंग्रेजी तालीम के जरिये गैर-बराबरी का बीज बचपन में ही बो दिया जाता है। थोड़े-से बच्चे 'कॉन्वेन्ट' में पढ़ते हैं और बहुत-से बच्चे टाटपट्टी पाठशालाओं में। इसका कारण योग्यता नहीं है बल्कि बच्चे के माता-पिता की खर्च की हैसियत है। यदि वे ज्यादा खर्च कर सकें, १०० या २०० या ३०० रुपये महीना, तो उनके बच्चे 'उत्कृष्ट' स्कूलों में पढ़ेंगे, अन्यथा देश के शेष बच्चों के लिए 'निकृष्ट' स्कूलों की शिक्षा तो है ही। 'कॉन्वेन्ट' की क्या विशेषता है? कौनसी 'उत्कृष्टता' या ऊँचापन है, इनमें? 'कॉन्वेन्ट' में चमक-दमक वाली वेश-भूषा, आरामदेह मेज़-कुर्सी, खेल और मनोरंजन के प्रचुर साधन तथा घर से आने-जाने के लिए वाहन की व्यवस्था तो होती ही है लेकिन उसकी आत्मा है—अंग्रेज़ी माध्यम की पढ़ाई! यह अंग्रेज़ी माध्यम की पढ़ाई बच्चे को बहुत अधिक प्रवीण बनाती हो, कुशाग्र-बुद्धि बनाती हो या उसकी समझ का विस्तार करती हो, ऐसी बात नहीं है। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि विदेशी

माध्यम की पढ़ाई बच्चे को रट्ट तोता, नकलची और आलसी बनाती है। फिर भी माता-पिता अपने बच्चों कों अंग्रेज़ी स्कूलों में भेजने के लिए क्यों लालायित रहते हैं ?

सिर्फ इसलिए कि अंग्रेज़ी एक पुल है, जो शिक्षा को नौकरी से जोड़ता है। हर माता-पिता चाहते हैं कि हमारा बच्चा इस पुल पर चढ़ जाए। भारत की हर बड़ी नौकरी के लिए, पद के लिए, लाभ के लिए, एक सभ्य और सुसंस्कृत जीवन बिताने के लिए, अंग्रेज़ी को अनिवार्य बना दिया गया है। इस अनिवार्यता को सहने के लिए, इस मज़बूरी से पार पाने के लिए माता-पिता बच्चों को 'कॉन्वेन्ट' में भेजते हैं। 'कॉन्वेन्ट' में अपने बच्चों को कौन भेज सकते हैं ? कितने लोग भेज सकते हैं ? सिर्फ मुट्ठीभर लोग ! यही छोटा-सा वर्ग पहले से ही सुविधासम्पन्न होता है और इसी के उत्तराधिकारी नयी सुविधाओं पर कब्जा कर लेते हैं। टाटपट्टी स्कूलों में पढ़े हुए करोड़ों बच्चों के लिए कोई उम्मीद नहीं है, उभरने का कोई भरोसा नहीं है, आशा की कोई किरण नहीं है। सुविधाओं पर, अवसरों पर कब्जा करने की धारावाहिकता पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। क्या यह समाजवाद का पूर्ण निषेध नहीं है ?

सुविधाओं और अवसरों की यह लूटपाट भी चलती रहे और जनता के सामने एक मासूम मुखड़ा भी बना रहे, इस चमत्कार को टिकाए रखने में अंग्रेज़ी स्कूल बड़ी मदद करते हैं। अंग्रेज़ी स्कूल में जानेवाले बच्चों की नसों में प्रारम्भ से ही गैर-बराबरी का जहर घोला जाता है। ये बच्चे अपने आपको कुंवर, राजकुंवर समझने लगते हैं और देश के अन्य करोड़ों बच्चों को हिकारत की नज़र से देखते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि वे अधिक बुद्धिमान हैं। जो रटता है, घोटा लगाता है, वह बुद्धिमान कैसे हो सकता है ? अंग्रेज़ी स्कूल के लड़के अपनी बुद्धि की इस कमी को पूरा करते हैं, खर्चीले ताम-झाम से जैसे कि बदसूरत औरतें सुन्दर दिखने के लिए सोना लाद लेती हैं। और दुर्भाग्य यह है कि अपने समाजवाद में सोने की कीमत सुन्दरता से अधिक है। नौकरियों में, भविष्य के अवसरों में बुद्धि की परीक्षा नहीं होती, योग्यता की परीक्षा नहीं होती बल्कि अंग्रेजी-ज्ञान की परीक्षा होती है।

हमारी फौज की परीक्षा में क्या होता है ? अंग्रेज़ी भाषा की अनिवार्य परीक्षा होती है और दूसरे विषयों की भी परीक्षा अंग्रेज़ी माध्यम से होती है। अंग्रेज़ी का फौज से क्या लेना-देना ? दुनिया के बड़े-बड़े फौजी जनरल अंग्रेज़ी नहीं जानते ! चंगेजखान, बाबर, नेपोलियन, शैबानी खान, रोमेल, मार्शल ग्रेचकों और जनरल गियाप जैसे लोगों की फौजी शिक्षा क्या अंग्रेज़ी में हुई है ? फौज में तो बहादुरी की, नेतृत्व की देश-भक्ति की, निशानेबाजी की, शारीरिक क्षमता की और दुश्मन के विरुद्ध उचित रणनीति बनाने की क्षमता की परीक्षा होनी चाहिए। कोई नौजवान इन सब गुणों में निष्णात हो लेकिन यदि अंग्रेज़ी नहीं जाने तो फौज का अफसर नहीं बन सकता। वह एक साधारण जवान बनने के लिए अभिशप्त है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि एक साधारण जवान और फौज के अफसरों के बीच असमानता की पाताल-जितनी गहरी खाई होती है। यह

असमानता उपरोक्त अन्याय की खाज में कोढ़ का काम करती है। क्योंकि अफसरों के पद, जिन पर जवानों की तुलना में १०० से लेकर १००० गुना तक ज्यादा खर्च किया जाता है, केवल उसी वर्ग के लिए आरक्षित हो जाते हैं, जो 'कॉन्वेन्ट' में पढ़ा हो, जो अंग्रेज़ी फर्राटे से बोलता हो या अपने पुराने मालिकों की हूबहू नकल करने में निष्णात हो। जो गरीबों के लड़के हैं, वे 'डिफेन्स एकेडेमी' की परीक्षा में बैठने का साहस भी नहीं कर सकते। योग्यता एक छोटे-से वर्ग की बपौती बनकर रह जाती है। यही वर्ग है जो सारे देश पर छाया हुआ है। यह समाजवाद कैसे ला सकता है ?

एक समतामूलक समाज के निर्माण करनेवाले लोगों का जनता से कुछ तो सीधा रिश्ता होना चाहिए। लेकिन जो शासकगण हैं, शासकगण से मेरा मतलब उन सब लोगों से है, जो सम्पन्न हैं, उच्च वर्ग के हैं, शहरों में रहते हैं, नीति बनाते हैं, वे जनता से बिलकुल दूर जा पड़ते हैं। जब वे बच्चे होते हैं, तो अलग-थलग स्कूलों में पढ़ते हैं और जब उनके बच्चे हो जाते हैं तो वे भी इन्हीं स्कूलों में पढ़ते हैं। इस वर्ग को क्या मालूम कि टाटपट्टी स्कूलों की टपकती हुई छत के नीचे बैठने का मतलब क्या होता है ? ये क्या जाने कि पेशाब की बदबू और कक्षा की पढ़ाई में क्या रिश्ता है ? इस वर्ग का बच्चा घर आकर अपने पिताजी से यह शिकायत क्योंकर करेगा कि सौ रुपल्ली पानेवाला मास्टर अपनी झुंझलाहट हम पर निकालता है। हमारे देश के नीति-निर्माता वर्ग को इन सब परिस्थितियों को भोगना ही नहीं पड़ता, इसीलिए चुनिन्दा स्कूलों पर करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं और करोड़ों बच्चे जिन पाठशालाओं में पढ़ते हैं, वे अनवरत उपेक्षा की शिकार बनी रहती हैं। जिस दिन देश में 'कॉन्वेन्ट' नहीं होगा और शासक वर्ग का बच्चा भी टाटपट्टी स्कूल में पढ़ेगा और घर आकर स्कूल की बदबू की, अंधेरे की, पिटाई की चर्चा करेगा, उसी दिन देश की शिक्षा का नक्शा बदल जाएगा। जिस दिन रेल की तृतीय श्रेणी में मंत्री धक्के खाएगा, अफसर को पाखाने के पास खड़े होकर रात काटनी पड़ेगी और नेता को दरवाजे से लटकते हुए सफर करना पड़ेगा, उसी दिन हिन्दुस्तान की रेलों को सुधारने के लिए सही चिन्तन प्रारम्भ होगा। उसी दिन समाजवाद नारा नहीं रहकर, एक सच्चाई बन जाएगा।

लेकिन जब तक देश में अनिवार्य अंग्रेज़ी चलेगी—शिक्षा में, न्याय में, नौकरी में, चिकित्सा में, फौज में—समाजवाद आ नहीं सकता। अंग्रेज़ी शिक्षा बचपन से ही बच्चों में गैर-बराबरी और पाखंड की भावना को जन्म देती है। आप उत्पादन और वितरण की प्रणाली में तब तक सुधार नहीं कर सकते, जब तक कि देश के बच्चों में बचपन से ही समतामूलक मनोभूमि तैयार नहीं हो। ये अंग्रेज़ी स्कूल समाजवाद की इस प्रथम आवश्यकता की जड़ों में निरन्तर मट्ठा डालने का प्रयत्न करते रहते हैं।

आधुनिकता और अंग्रेज़ी पर्यायवाची नहीं

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि यदि अंग्रेज़ी हट गई तो देश के आधुनिकीकरण

में बाधा पहुँचेगी। आज देश में जो भी आधुनिकता दिखाई पड़ती है, वह अंग्रेज़ी के कारण ही है।

ऐसी धारणा इसलिए बन गई है कि बहुत से लोगों ने आधुनिकता का ठीक-ठीक मतलब आज तक नहीं समझा है। वे अंग्रेज़ीकरण को, पश्चिमीकरण को ही आधुनिकीकरण मानते हैं। आखिर आधुनिकीकरण है क्या ? अगर इस शब्द पर नज़र डाली जाए तो काफी हद तक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जो अधुनातन है, बिल्कुल नया है, वह आधुनिक है। अंग्रेज़ी के 'मॉडर्नाइजेशन' शब्द की जो लेटिन धातु है, उसका अर्थ है—'बिल्कुल अभी'। याने जो अभी-अभी सामने आया है, पुराना नहीं है, वही आधुनिक है।

ये तो हुआ शाब्दिक अर्थ। लेकिन वास्तव में आधुनिकता का मतलब होना चाहिए —प्रकृति पर मनुष्य की विजय, सत्ता के विरुद्ध स्वतन्त्रता का अभ्युदय, अंध-विश्वास के विरुद्ध तर्क का प्रतिष्ठापन और सामान्य दक्षता की अभिवृद्धि। क्योंकि ये सब बातें मनुष्य के सुदीर्घ इतिहास में प्राचीन काल के बजाय दो-तीन सौ वर्षों में विशेष रूप से उभरी हैं, अत: इन्हें ही आधुनिक मूल्य या आदर्श कह सकते हैं। ये मूल्य किसी भी जाति या भाषा या देश की बपौती नहीं हैं। यह संयोग की बात है कि इनमें से अधिकांश मूल्य पहले यूरोप में प्रतिष्ठापित हुए। शायद इसीलिए लोगों को भ्रम हो जाता है और वे यूरोप की नकल को आधुनिकीकरण मानने लगते हैं। यूरोप की हर चीज आधुनिक नहीं है। यदि हर चीज को आधुनिक मानेंगे तो फासीवाद, नाजीवाद, साम्यवाद अधिनायकवाद—जैसी निहायत जंगली और आदिम चीजों को भी आधुनिक और ग्राह्य मानना पड़ेगा।

खैर, हम बात कर रहे थे, भाषा और आधुनिकता के बारे में। यूरोप में जब पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ, जब आधुनिकता ने यूरोप के द्वार खटखटाये तो सबसे पहला धक्का लगा, लेटिन के एकछत्र साम्राज्य को। एक साम्राज्यवादी भाषा के एकाधिकार को चुनौती दी, स्थानीय भाषाओं ने। जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी, डच, चेक, स्लोवाक आदि भाषाओं के जरिये राष्ट्रों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व की अभिव्यक्ति की। खुद लन्दन की स्थिति क्या थी ? अदालत का काम, राज-काज का काम और बड़े-बड़े बौद्धिकों का लेखन लेटिन में चलता था। अगर कोई वकील अदालत में अंग्रेजी में बहस करता तो उस पर जुर्माना हो जाता था। अगर कोई लेखक लेटिन में नहीं लिखता था तो दूसरे दर्जे का बौद्धिक समझा जाता था। अंग्रेज़ी को गँवारों की भाषा माना जाता था। लेकिन ज्यों-ज्यों आधुनिकता की चेतना बढ़ी, जनता ने अपनी-अपनी भाषाओं के लिए जमकर संघर्ष छेड़ा। उनको परवान चढ़ाया। अपनी भाषा का, स्वभाषा का समुत्कर्ष आधुनिकता का एक अनिवार्य अंग है। शायद अधकचरे अंग्रेजीदाँ लोगों को इन तथ्यों का पता नहीं है, वरना वे भारत जैसे देश में अंग्रेज़ी को थोपने की बात नहीं करते। वे स्वयं अंग्रेजी के इतिहास से कुछ सबक लेने को तैयार क्यों नहीं हैं ?

किसी भी राष्ट्र पर एक विदेशी भाषा का थोपना आधुनिकता के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है। आपको एक ठोस उदाहरण देता हूँ। आप एक आधुनिक राज्य किसे कहेंगे ? एक आधुनिक राज्य तो वही होगा जिसमें जनता राज-काज में पूरी तरह भाग ले। इसके विपरीत एक सामंतवादी, दकियानूसी. पोंगापंथी राज्य कैसा होगा ? ऐसा होगा कि जिसमें 'कोऊ नृप होय हमें का हानि।' जनता को नीति-निर्माण से कुछ लेना-देना नहीं। राजा की इच्छा ही कानून है या जैसा कि फ़्रांस का लुई चौदहवां कहा करता था, "मैं ही राज्य हूँ।" यह है—१७ वीं शताब्दी की बात, १८वीं शताब्दी की बात, १९ वीं शताब्दी की बात। बिल्कुल भी आधुनिक नहीं। यही बात भारत की संसद में आज भी देखी जा सकती है। ५०० संसत्सदस्यों में से ४०० से भी ज्यादा गूंगे-बहरों की तरह सदन में बैठे रहते हैं। बहस में भाग नहीं लेते। सिर्फ हाथ उठा देते हैं। ऐसा क्यों होता है ? क्या वे बोलना नहीं जानते ? क्या वे राजनीति नहीं समझते ? क्या वे अपनी जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करना चाहते। नहीं नहीं, चाहते हुए भी वे बोल नहीं पाते, क्योंकि वे अंग्रेजी नहीं जानते। अंग्रेजी में बोलना प्रतिष्ठा की बात है। जो अंग्रेजी में बोलता है, उसकी सुनी जाती है। प्रकाशवीर शास्त्री राममनोहर लोहिया, अटलबिहारी वाजपेयी और मधु लिमये तो अपवाद हैं। ये नयी लीक खींचनेवाले लोग रहे हैं। लेकिन जो अंग्रेजी भी नहीं जानते और हिन्दी भी नहीं जानते, वे क्या करें ? जिन करोड़ों लोगों का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका नीति-निर्माण में कोई हाथ नहीं है, जैसे पुराने ज़माने में राजा का दरबार कुछ 'रत्नों' की सलाह पर चलता था चाहे वे नौ रतन हों, चौदह रतन हों या चौबीस रतन, वैसे ही आज जो अंग्रेजी बोलने वाला रतन है, उसकी बहस से हिन्दुस्तान की संसद चलती है। क्या इसे आप एक आधुनिक संसद कहेंगे ? क्या यह एक आधुनिक राज्य है ? क्या यह प्रजातंत्र है ? यदि नहीं तो यह अंग्रेजी की मेहरबानी है।

दूसरा उदाहरण लीजिए। हमारे देश की नीतियां अंग्रेजी में बनती हैं। नेतृत्व के शिखर से लुढ़कती हुई नीतियां जनता के पाताल तक पहुँचते-पहुँचते या तो नदारद हो जाती हैं या वे अपना रूप खो देती है। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं को या विदेश नीति के वक्तव्यों को हिन्दुस्तान की औसत जनता का कितना बड़ा भाग समझ पाता है ? इसके विपरीत अंग्रेजी में बनी इन नीतियों को अमरीका और इंग्लैंड का हर गड्ढे खोदने वाला मजदूर भी समझ सकता है। क्या यह हिन्दुस्तान के आम आदमी के साथ छल नहीं हैं कि ताश के सारे पत्ते आप विदेशियों के सामने तो पसार देते हैं और हमारे देश की जनता से, जिसके खून-पसीने की कमाई से योजनाएँ चलती हैं, छिपाने की कोशिश करते हैं। जब तक नीतियों को जनता अच्छी तरह समझेगी नहीं, वह सहयोग किस आधार पर करेगी ? और इसके विपरीत जनता क्या चाहती है, यह भी तो शासकों को ठीक-ठीक पता चलना चाहिए। शासक लोक-भाषाओं की पुस्तकें नहीं पढ़ते, पत्रिका नहीं पढ़ते, अखबार नहीं पढ़ते। यदि आप यह जानना चाहें कि भारतीय जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कौन से अखबार करते हैं तो लोकभाषा के और अंग्रेजी के

अखबारों के 'सम्पादक के नाम पत्र' स्तम्भों को उठाकर देखिए। अंग्रेजी अखबार जबकि बुद्धि-विलास की नकली बहसें चलाते हैं, हिन्दी और लोकभाषाओं के अखबार एक औसत आदमी के दुःख-दर्द की करुण-गाथा पेश करते हैं। कुर्सी पर बैठे नेता का इस करुण-गाथा से कोई मतलब नहीं हैं, क्योंकि उसके लिए तो सच्चा जनमत अंग्रेजी अखबारों में प्रगट होता है। इसका नतीजा क्या होता है ? जनता और नेता के बीच संप्रेषण नहीं होता और संप्रेषण. दोतरफा संप्रेषण आधुनिकता की पहली शर्त है।

दक्षता, आधुनिक समाज-व्यवस्था का एक अनिवार्य लक्षण है। याने कम समय में अधिक से अधिक काम करना और व्यवस्थित तरीके से करना। लेकिन अंग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा ने करोड़ों बच्चों को दिमागी तौर पर अपाहिज बना दिया है। अंग्रेजी को रटने के चक्कर में बच्चे दूसरे विषयों की पढ़ाई पर भी ध्यान नहीं दे पाते। न वे अंग्रेज़ी अच्छी सीख पाते हैं और न ही दूसरे विषय ! न खुदा ही मिला, न विसाले-सनम ! जब फेल होते हैं तो सबसे ज्यादा अंग्रेज़ी में फेल होते हैं। अगर एक बच्चा एक हफ्ते में ५ घंटे अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये लगाता है तो हिसाब लगाइए कि वह १० साल में कुल कितने घंटे खर्च करेगा और देश के लाखों बच्चे क्या अपने जीवन के करोड़ों बहुमूल्य घंटे अनिवार्य अंग्रेज़ी को सीखने में बर्बाद नहीं कर देते ? १० साल तक अनिवार्य अंग्रेज़ी का घोटा लगवाकर देश के करोड़ों घंटे बर्बाद करने के बजाये बड़े होने पर इन्हीं बच्चों को एक या दो माह में गहन प्रशिक्षण के द्वारा कोई भी विदेशी भाषा सिखायी जा सकती है। पूना के मैक्समूलर संस्थान में आजकल डेढ़ माह में कफी अच्छी जर्मन सिखायी जाती है। यह है, आधुनिकता ! कम समय में अधिक काम ! मैंने स्वयं तीन मास की साधारण पढ़ाई में रूसी और पन्द्रह दिन के प्रशिक्षण में फारसी सीख ली। इसके अलावा, लाखों बच्चों को एक विदेशी भाषा सीखने की क्या ज़रूरत है ? मुश्किल से हज़ार में से एक छात्र विदेश जाता है या शोध करता है और जो विदेश जाते हैं, वे सब इंग्लैंड और अमरीका ही नहीं जाते; दूसरे देशों में भी जाते हैं, जहां अंग्रेज़ी नहीं चलती। कुछेक हज़ार लोगों की विदेशी भाषा की जरूरतों को पूरा करने के लिए करोड़ों लोगों पर अंग्रेज़ी थोप देना वैसा ही है जैसे कि दो आदमियों की रोटी बनाने के लिए दस मन आटा गूंध लेना ! मैं चाहता हूँ कि दो आदमियों की रोटी के लिए कम आटा गुंधे और बढ़िया गुंधे। घास नहीं काटी जाए। अर्थात् विदेशी भाषाओं को थोक में पढ़ाने के बजाये, उत्कृष्ट कोटि के संस्थानों में नवीनतम विधियों के द्वारा उन्हीं को पढ़ायी जाएँ, जिन्हें उनकी जरूरत है। यह हुई आधुनिक दृष्टि ! दुनिया के आधुनिक राष्ट्रों में यही हो रहा है। लेकिन आधुनिकता के नाम पर हमारे देश में उल्टी गंगा बह रही है।

जापान का उदाहरण हमारे सामने है। आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण पहले शुरू हुआ भारत में। जापान में बाद में हुआ। लेकिन आज जापान भारत से मीलों आगे है। जापान ने पश्चिम के अनुभव का लाभ अवश्य उठाया लेकिन उसने अपनी भाषा को नहीं छोड़ा। अपने हजारों वैज्ञानिकों, किसानों, मज़दूरों को उसने अपनी

ही भाषा में सारा ज्ञान उपलब्ध कराया। कुछ चतुर अनुवादकों को तैयार करके उनसे हर विदेशी भाषा के ज्ञान का जापानी में अनुवाद करवा लिया। अगर भारत की तरह जापान भी अपने नागरिकों पर अनिवार्य जर्मन या अंग्रेज़ी थोप देता तो आज जापान इतना आगे नहीं बढ़ पाता। वैज्ञानिकों की जो शक्ति प्रयोगों में लगी, वह एक विदेशी भाषा को रटने में खर्च हो जाती, जैसा कि भारत में हुआ। दूसरे शब्दों में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता ने भारत में आधुनिकता की गति को धीमा किया।

विज्ञान की पढ़ाई और अंग्रेजी

अंग्रेज़ी के कुछ अंधभक्त लोगों ने देश में यह विचार भी फैलाया कि अंग्रेज़ी के बिना विज्ञान की पढ़ाई नहीं हो सकती। विज्ञान की सब ऊँची पुस्तकें अंग्रेज़ी में हैं। अगर अंग्रेज़ी हट गई तो विज्ञान भी हट जाएगा।

सच पूछा जाए तो बात उल्टी ही है। अंग्रेज़ी शिक्षा और विज्ञान में तो छत्तीस (३६) का आंकड़ा रहा है। एक मुँह इधर तो दूसरे का मुँह उधर! ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुराने बही-खाते निकालकर देखें तो मेरी बात समझ में आ जाएगी। अंग्रेज़ी शिक्षा के इन गढ़ों में विज्ञान और गणित की पढ़ाई की बड़ी उपेक्षा होती थी, क्योंकि विज्ञान तर्क करना सिखाता है और तर्क मजहब का दुश्मन है और मजहबी लोग ही इन शिक्षा-केन्द्रों को अपने अनुदान से जीवित रखते थे। ऐसी स्थिति में विज्ञान और गणित की पढ़ाई घरों में ही चलती थी। जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे प्रसिद्ध दार्शनिक और गणितज्ञ ने विश्वविद्यालय जाने के बजाय घर में बैठकर पढ़ना-लिखना ज्यादा अच्छा समझा। आपने माइकेल फेराडे का नाम सुना होगा, जिसने बिजली का आविष्कार किया। इस आदमी ने कभी ऑक्सफोर्ड या केम्ब्रिज का मुँह तक नहीं देखा। ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज का यह विज्ञान की उपेक्षा वाला रुख भारत में भी आया, क्योंकि बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में अंग्रेज़ ने जो विश्वविद्यालय कायम किए, वे उन्हीं की नकल पर थे। इन भारतीय शिक्षा-केन्द्रों में भी ज्यादा जोर "अंग्रेज़ी भाषा, साहित्य और धर्म-विद्या" को पढ़ाने पर था। यहां भी विज्ञान, गणित आदि विषयों उपेक्षा की गई। इस विषय पर डॉ० बीना मजूमदार ने अच्छी खोज की है। अंग्रेज़ को इससे कोई मतलब नहीं था, खासकर हुकूमत करने वाले अंग्रेज़ को, कि भारतीय प्रतिभा का विकास हो। वह तो अंग्रेज़ भक्त नकलचियों की फौज खड़ी करना चाहता था। इसके बावजूद भी भारत में जैसे-तैसे विज्ञान की कुछ न कुछ प्रगति हुई ही। प्रयोग करते रहने की मनुष्य की अदम्य इच्छा को आखिर कहाँ तक दबाया जा सकता है?

अगर भारत की प्रयोगशीलता को दबाया नहीं गया होता, अंग्रेज़ों के द्वारा, मुगलों के द्वारा तथा अन्य आगन्तुकों के द्वारा, तो मेरा विश्वास है कि चाँद पर आदमी को भेजने का काम सबसे पहले भारत ही करता। भारत में तो आदिकाल से इस बात का ज्ञान और यह मान्यता रही है कि इस पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों में भी जीवन है।

'विमानशास्त्र' नामक प्राचीज ग्रन्थ को देखकर मैं दंग रह गया । उसमें ध्वनि की गति से उड़नेवाले विमानों का; उनकी बनावट का, उनके सिद्धान्तों का विशद् वर्णन किया गया है । मैं कहानी-क़िस्सों की बात नहीं कर रहा हूं । पोगापन्थ और गप्पों में मेरा जरा भी विश्वास नहीं है । मैं आपसे आर्यभट्ट के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त और लीलावती के गणित की बात कर रहा हूं, जिन्हें सारी दुनिया ने मान्यता दी है । चरक और सुश्रुत की बात कर रहा हूं, वागभट्ट की बात कर रहा हूं । पिछले दिनों डॉ. रघुवीर के पुत्र डॉ. लोकेशचन्द्र ने जावा, बाली, सुमात्रा, साइबेरिया आदि स्थानों से लाए हुए अनेकों ग्रन्थ, चित्र और पदार्थ दिखाए। मैं यह देखकर चकित हो गया कि भारतीय शल्य-चिकित्सा का प्रचार इन सारे इलाकों में था । आज से कई हजार वर्ष पूर्व भारतीय शल्य-चिकित्सा काफी विकसित थी। इसी तरह से रसायन शास्त्र और भौतिक विद्या में भी भारतीयों ने उल्लेखनीय प्रगति की थी । इसे उल्लेखनीय इसलिए कहता हूं कि उसी काल में अन्य देशों को तुलना में, खासकर ब्रिटेन की तुलना में भारत हजारों मील आगे था । लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि इस प्रगति को लकवा क्यों मार गया ? यह प्रगति अपने तर्कसंगत मार्ग पर क्यों नहीं चल सकी ?

इसके कई कारण हो सकते हैं, लेकिन एक प्रमुख कारण है—बाहरी शासकों द्वारा हमारे देश में चलने वाली शिक्षा और शोध की परम्परा को नष्ट-भ्रष्ट करना । दूसरे आततायियों की बात यहां छोड़ दें । अंग्रेजों के प्रयत्नों के बारे में मैं पहले ही कह चुका हूं । अंग्रेजों ने अंग्रेजी को ज्यादा महत्त्व दिया और विज्ञान को कम । अगर अंग्रेजों के मन में अंग्रेजी के प्रति विशेष आग्रह नहीं होता तो विज्ञान की पढ़ाई और प्रयोगों पर अधिक जोर दिया जाता । अंग्रेजी के जरिये विज्ञान पढ़ाने के कारण बच्चों ने विज्ञान कम पढ़ा और अंग्रेजी ज्यादा ।

जब एक विदेशी भाषा के जरिये बच्चों को विज्ञान पढ़ाया जाता है तो वह बोझिल, नीरस और अरुचिकर हो जाता है । विज्ञान क्या है ? प्रयोग का दूसरा नाम ही विज्ञान है । जब बच्चा प्रयोग करता है तो उसके और उपकरणों के बीच भाषा की कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । भाषा को दासी की तरह सेवा करनी चाहिए । भाषा को साधने की जरूरत नहीं होनी चाहिए । लेकिन जब अंग्रेजी में विज्ञान पढ़ाया जाता है तो एक विद्यार्थी प्रयोग प्रारम्भ करे, उसके पहले उसे अंग्रेजी से कुश्ती लड़नी पड़ती है । पहले भाषा समझे फिर प्रयोग करे ! एक आठवीं कक्षा के बच्चे को अगर अंग्रेजी में यह कहा जाए कि "होल्ड द टेस्ट-ट्यूब अपराइट" तो इस आदेश का पालन करने से पहले उसे समझना पड़ेगा कि 'होल्ड' का मतलब क्या है, 'टेस्ट-ट्यूब' का मतलब क्या है और 'अपराईट' का मतलब क्या है तया इन सब शब्दों को एक साथ रखने पर क्या मतलब निकलता है ? यह सब ठीक-ठीक समझे बिना वह प्रयोग नहीं कर सकता जबकि दूसरी कक्षा के एक बच्चे से आप हिन्दी में कहें कि 'परख-नली को सीधा पकड़ो' तो वह तत्काल, विना किसी कठिनाई के, उस आदेश का पालन करेगा और प्रयोग कर लेगा । ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिए होता

है कि जब वह एक-डेढ़ साल का था, तभी से उसने अपनी मां के मुख से इसी भाषा में इसी तरह के कई वाक्यों को सुना है और उसका पालन किया है। उसे भाषा को साधने की जरूरत नहीं है। वह तो उसे जन्म-घुट्टी में पिलाई गई है। अब आप ही बताइये, प्रयोग या शोध किस भाषा में आसानी से हो सकता है? मातृ-भाषा में या विदेशी भाषा में? विडम्बना यह है कि विज्ञान के बगीचे के मीठे फल तो प्रत्येक मनुष्य खाना चाहता है लेकिन भारत में उस बगीचे तक पहुंचने के लिए एक छात्र को अंग्रेजी का जलता हुआ मरुस्थल पार करना पड़ता है। कुछ सी. वी. रमन और कुछ हरगोविन्द खुराना और कुछ नार्लीकर जैसे अदम्य साहसी लोग तो उस मरुस्थल को भी हंसते-हंसते पार कर जाते हैं और अपना जौहर दुनिया को दिखा देते हैं लेकिन एक औसत विद्यार्थी या तो फल पाने की इच्छा ही नहीं करता है या रास्ते में ही दम तोड़ देता है या अपनी पूरी जिन्दगी मरुस्थल पार करने में ही लगा देता है। स्वयं रमन जैसे वैज्ञानिकों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि भारत में विज्ञान मातृ भाषा के जरिये पढ़ाया गया होता तो आज भारत दुनिया के अग्रगण्य देशों में होता।

जो दुनिया के देश आज विज्ञान में आगे बढ़े हुए हैं, क्या वहां विदेशी भाषाओं के जरिये विज्ञान की पढ़ाई होती है? कतई नहीं। इंगलैंड और अमेरिका में अंग्रेजी में, जर्मनी में जर्मन में, फ्रांस में फ्रांसीसी में, रूस में रूसी में और जापान में जापानी भाषा में विज्ञान पढ़ाया जाता है। रूस के बड़-बड़े वैज्ञानिक अंग्रेजी का एक काला अक्षर भी नहीं जानते। फिर दूसरे देशों में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति के बारे में उन्हें जानकारी कैसे मिलती होगी? उस जानकारी को प्राप्त करने के लिए ये वैज्ञानिक अंग्रेजी सीखने में अपना समय बर्बाद नहीं करते। हर देश में अनुवादकों का एक समूह होता है जो न केवल एक भाषा से बल्कि अनेकों भाषाओं से विज्ञान की सामग्री देशी भाषा में ले आता है। यदि वैज्ञानिक स्वयं विदेशी भाषाएं सीखना भी चाहें तो कितनी विदेशी भाषाएं सीख सकते हैं जबकि अनुवादक तो कई भाषाओं के हो सकते हैं। इसलिए यह तर्क तो बिल्कुल थोथा है कि अंग्रेजी के बिना विज्ञान की पढ़ाई को धक्का लगेगा। बल्कि मैं तो उल्टी बात कहता हूं। वह यह कि अंग्रेजी के कारण विज्ञान की पढ़ाई को धक्का लग रहा है।

संस्कृति और भाषा

जब किसी राष्ट्र पर एक विदेशी भाषा हावी होने लगती है तो उस राष्ट्र की संस्कृति के लिये सबसे बड़ा खतरा उपस्थित हो जाता है। संस्कृति क्या है? हमारे पूर्वजों ने विचार और कर्म के क्षेत्र में जो कुछ भी श्रेष्ठ किया है, उसी धरोहर का नाम संस्कृति है। यह संस्कृति अपनी भाषा के जरिये जीवित रहती है। यदि भाषा नष्ट हो जाए तो संस्कृति का कोई नामलेवा-पानीदेवा नहीं रहता। संस्कृति ने जिन आदर्शों और मूल्यों को हजारों सालों के अनुभवों के बाद निर्मित किया है, वे

विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाते हैं। भाषा संस्कृति का अधिष्ठान है। संस्कृति भाषा पर टिकी हुई है।

मैं तो इससे भी एक कदम आगे जाना चाहता हूं। मैं चाहता हुँ कि हमारे पूर्वजों ने जो कुछ बुरा सोचा या किया है, वह भी हमारे सामने होना चाहिए। इसे आप चाहे विकृति कह लीजिए। इससे भी हम अपना भविष्य सुधार सकते हैं। यह भी भाषा की मोहताज है। अपनी संस्कृति और विकृति दोनों से परिचित होने के लिए अपनी भाषा की धारा निरन्तर बहती रहनी चाहिए। अगर अपनी भाषा नहीं होगी तो हमें न तो अपनी अच्छाइयों का पता चलेगा और न ही बुराइयों का।

आज जो बच्चे अनिवार्य अंग्रेजी पढ़ रहे हैं और यह समझकर पढ़ रहे हैं कि वह उत्कृष्ट भाषा है, उनका ध्यान भारत की विरासत से हट रहा है। वे शेक्सपियर पढ़ेंगे, मिल्टन पढ़ेंगे, शैली पढ़ेंगे लेकिन कालीदास, तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी उनके लिए अजनबी बन जाएंगे। हो सकता है कि 'कॉन्वेन्ट' की अंग्रेजी पुस्तकों में शकुन्तला के बारे में या भारत के बारे में या कन्हैया की रासलीला के बारे में थोड़ा-बहुत पढ़ा दिया जाए। लेकिन जब ये बच्चे बड़े होंगे तो ये अपनी प्यास बुझाने के लिए ग्रन्थों को मूल रूप में पढ़ना चाहेंगे, घटनाओं के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे। मगर जानेंगे कैसे? ये सारे ग्रन्थ अंग्रेजी में तो नहीं लिखे गए हैं। तब क्या होगा? ये बच्चे बड़े होकर या तो अपने ही ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ेंगे और राम को 'रामा' कृष्ण को 'कृष्णा' तथा कुन्ती को 'कुन्टी' कहेंगे या फिर इनका ध्यान पूरी तरह से अंग्रेजों की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाले अंग्रेजी ग्रन्थों की ओर चला जाएगा। शेक्सपियर के हेमलेट के हर वर्ष नये संस्करण निकलेंगे और तुलसी के 'रामचरित मानस' को दीमक खाया करेंगी। हॉब्स का 'लेवियाथन' गर्म पकोड़ों की तरह बिकेगा और कौटिल्य का अर्थशास्त्र बासी डबलरोटी की तरह सड़ता रहेगा।

मैं हेमलेट या मेकबेथ पढ़ने का विरोधी नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि आधुनिक भारत के नौजवान-भंवरे—दांते, अरस्तू शेक्सपियर, हीगल, कामू, सार्त्र, टॉलसटॉय, येवतुशेन्को सभी का रस पीने लायक बनें लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा रेल की पटरी की तरह होती है। जिधर पटरी जाती है, रेल भी उधर ही जाती है। अगर पटरी खंडवा स्टेशन की तरफ जा रही है तो लाख कोशिश करने के बाद भी रेल इस सभा में शरीक होने के लिए माणिक्य वाचनालय में नहीं आ सकती! आज हिन्दुस्तान की शिक्षा की रेल को अंग्रेजी की पटरी पर दौड़ाया जा रहा है। यह रेल कहां जाएगी? यह रेल गंगा के घाट पर या कालिंदी के कूल पर या अयोध्या की गलियों में हजार साल की यात्रा के बाद भी कभी नहीं आएगी। यह जाएगी और सीधी जाएगी टेम्स के किनारे या ट्राफलगर स्क्वेयर या बकिंघम के राजमहल के पास! क्यों? क्योंकि वह अंग्रेजी की पटरी पर दौड़ रही है। याद रखिये, भाषा जितनी अच्छी सेविका है, वह उतनी ही कठोर स्वामिनी भी है।

जब आप विदेशी भाषा के साथ इश्क फरमाते हैं तो वह उसकी पूरी कीमत वसूलती है। वह अपने आदर्श, अपने मूल्य आप पर थोपने लगती है। यह काम धीरे-धीरे होता है। सौन्दर्य के उपमान बदलने लगते हैं, दुनिया को देखने की दृष्टि बदल जाती है। आदर्श और मूल्य बदल जाते हैं। आदर्श और मूल्य बदलें और तर्किक ढंग से बदलें तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। विदेशी भाषा कुछ बेहतर मूल्य भी हमें दे सकती है लेकिन आपत्ति तो तब होती है जबकि एक खंडित चिन्तन का, एक दो मुँहे व्यक्तित्व का निर्माण होने लगता है। आप रहते तो हैं भारतीय परिवेश में और और बौद्धिक रूप से समर्पित होते हैं, अंग्रेजी परिवेश के प्रति! ऐसा व्यक्तित्व सृजनशील नहीं बन पाता। उदाहरण के लिए यूरोप का आदमी बादलों को देखकर प्रायः प्रसन्न नही होता। पहले से ही वे ठंडे देश हैं। फिर बादल आ जायें, आसमान कुछ कुछ गहराने लगे तो मातम-सा छा जाता है। इसके विपरीत भारत में ज्यों ही बादल मंडराए कि मन-मयूर नाचने लगता है। मेघदूत की रचना होती है। हमारा देश सूरज का देश है, धूप का देश है। यूरोप धूप के लिए तरसता है और हम बादलों के लिए! अब बताइए अंग्रेजी में कविता लिखनेवाला हिन्दुस्तानी क्या करेगा? अगर वह बादलों की तारीफ करेगा तो उसकी कविता उसके पश्चिमी स्वामियों के गले नहीं उतरेगी और अगर वह कड़ाके की धूप पर गीत लिखेगा तो घटाओं पर झूमनेवाला उसका दिल उसका साथ कहाँ तक देगा?

भाषा के बदलने से मूल्य भी बदल जाते हैं। हिन्दी में बड़ों को आप, बराबरीवालों को तुम और छोटों को तू कहने की सुविधा है लेकिन अंग्रेजी में सपाट सम्बोधन है–'यू'। पिताजी के लिए, पत्नी के लिए, बच्चे के लिए—सबके लिए एक ही चाबुक है। उसी से हांकिये! हमारे यहां देवर, भाभी, जेठ, देवरानी, जेठानी, मासा, मौसी, चाचा, फूफा, भानजा, भतीजा, साला, जीजा—सब सम्बन्धों के लिए निश्चित शब्द हैं। शब्दों से सम्बन्ध निश्चित होते हैं। जब मुझे कहा जाए कि ये आपके साले हैं तो मैं तत्काल समझ जाऊँगा कि ये मेरी पत्नी के भाई हैं और जब यह कहा जाए कि ये आप के जीजा हैं तो मैं समझ जाऊंगा कि ये मेरी बहिन के पति हैं लेकिन अंग्रेजी में तो सब घोटाला है। साला और जीजा दोनों के लिए एक ही शब्द है—ब्रदर इन लॉ। इसका कारण स्पष्ट है। मानवीय सम्बन्धों की जिन बारीकियों का महत्त्व हमारी संस्कृति में है, वह पश्चिम में नहीं है। जॉर्जिया विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक डॉ. ललितकुमार सेठी ने बताया कि एस्किमो लोगों की भाषा में बर्फ के लिए लगभग १०० शब्द हैं जबकि हमारी भाषा में पांच-सात! बर्फ से हमारा उतना सावका नहीं पड़ता जितना एस्किमो का! ब्रह्म के लिए, जीव के लिए, जगत के लिए, मोक्ष के लिए—एक-एक अर्थ के लिए हमारे यहां जितने भिन्न-भिन्न शब्द हैं, उतने शब्द सारी यूरोपीय भाषाओं में कुल मिलाकर नहीं है! और सिर्फ शब्द ही नहीं है, शब्दों के पीछे गहरी अनुभूतियां हैं। इस प्रकार संस्कृति से भाषा प्रभावित होती है और जैसा कि ऊपर कह आये हैं, भाषा से संस्कृति प्रभावित होती है। अपनी भाषा को छोड़कर विदेशी भाषा

के पिछलग्गू बनने के पहले विद्वानों को इन तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

पहले तैरो, फिर पानी में उतरो

कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेजी को हटाने के सम्बन्ध में हम आपके तर्कों से सहमत हैं लेकिन जब तक हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ अंग्रेजी के बराबर शक्तिशाली नहीं बन जाएँ, अंग्रेजी का हटाना एक जल्दबाजीभरा कदम होगा। जब अपनी भाषाएँ सशक्त हो जाएंगी तो अंग्रेजी अपने-आप हट जाएगी।

जब आजादी का आन्दोलन चल रहा था तो बिल्कुल इसी तरह का तर्क अंग्रेजी के बारे में दिया जाता था। कुछ लोग कहते थे कि आज़ादी तो मिलनी ही चाहिए लेकिन हम इस लायक नहीं है कि अपनी सरकार खुद चला सकें। जब हम अपना राज खुद चलाने लायक हो जाएंगे तो अंग्रेज अपने आप हट जाएगा। अंग्रेज यहां जमा रहे, इसलिए, स्वयं को निरन्तर नालायक सिद्ध करते रहना एक फैशन बन गया था।

आज भाषा के प्रश्न को लेकर भी यही हो रहा है। अपनी भाषाओं की तरफ, उनके सौन्दर्य और सामर्थ्य की तरफ हमारे बुद्धिजीवी झांककर भी नहीं देखते और अंग्रेजी की जूठन चाटने को सदा तैयार रहते हैं। जूठन इतनी चटपटी है कि हमारा बुद्धिजीवी भोजन की बुराइयों पर व्याख्यान देता है, ग्रन्थ लिखता है; यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि भारतीय भाषाएँ समर्थ नहीं हैं।

मैं पूछता हूँ कि समर्थता से उनका मतलब क्या है ? क्या व्याकरण की समर्थता ? क्या लिपि की समर्थता ? क्या शब्दों की समर्थता ? यदि हाँ, तो मैं कहना चाहता हूँ कि इस समय हिन्दी, जिसके बारे में मुझे थोड़ी-सी जानकारी है, अंग्रेजी से मीलों आगे है। जहाँ तक अंग्रेजी के व्याकरण और लिपि का प्रश्न है, उस पर जितना बोला जाए, कम है। स्वयं बर्नार्ड शॉ ने अपने नाटक 'पिगमेलियन' में अंग्रेजी के उच्चारण का मजाक करते हुए कहा है कि अंग्रेजी का ठीक उच्चारण हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पास एक पुरानी घिसी-पिटी लिपि के अलावा कुछ नहीं है और उनमें भी बहुत कम व्यंजन ऐसे हैं जिनका उच्चारण सर्वमान्य है। इसी प्रकार एक भाषाशास्त्री ने सिद्ध किया है कि व्याकरण और उच्चारण की दृष्टि से अंग्रेजी दुनिया की सबसे कमजोर और भ्रष्ट भाषाओं में से एक है। यहाँ मैं अंग्रेजी भाषा के छिद्रान्वेषण के काम में नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि दूसरे की माँ के अवगुणों को गिनाने से अपनी माँ गुणवती नहीं बन जाती। हर भाषा की अपनी-अपनी कमियां और खूबियाँ होती हैं। उनके विश्लेषण का काम भाषाशास्त्रियों का है और उन्होंने इसे काफी अच्छी तरह किया भी है।

जहाँ तक भारतीय भाषाओं के शब्द-सामर्थ्य का प्रश्न है, अंग्रेजी में जितने शब्द हैं, उससे कई गुणा शब्द अकेली हिन्दी में हैं। फिर, अन्य कई हिन्दुस्तानी भाषाएँ तो हिन्दी से भी अधिक प्राचीन और प्रांजल हैं। इन सब भाषाओं और सैकड़ों भार-

तीय बोलियों के शब्दों को यदि एक स्थान पर एकत्रित कर लें तो मेरा अनुमान है कि कम से कम ६० लाख शब्द बन जाएंगे। जालंधर में डॉ० कृष्ण भावुक ने मुझे बताया कि वे हिन्दी के ऐसे शब्दों का संकलन कर रहे हैं, जो पहले से ही लोक-जीवन में प्रचलित हैं। उनका कहना है कि उनके संग्रह में लगभग १५ लाख शब्द हैं। और नये शब्द बनने की क्षमता जैसी भारतीय भाषाओं में है, वैसी दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है। संस्कृत की एक-एक धातु से सैंकड़ों नये शब्द बन सकते हैं। मानव मन की गहनतम और सूक्ष्मतम अनुभूतियों को भारतीय भाषाएँ सहस्त्रों वर्षों से सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करती आ रही हैं।

और अगर यह मान भी लिया जाये कि भारतीय भाषाओं में कुछ विषयों के शब्द नहीं हैं तो इसका उल्टा भी सत्य है। जैसे मोटर के लिए कोई हिन्दी शब्द नहीं है तो धर्म या जनेऊ या यज्ञ या ब्रह्म के लिए कौनसा उपयुक्त अंग्रेजी शब्द है ? वास्तव में जो जीवित भाषाएँ हैं, वे शब्दों की छुआछूत नहीं मानतीं। शब्द जिधर से भी आयें, ग्रहण लिये जाने चाहिएं। मैं चाहता हूँ कि विदेशी भाषाओं के शब्द हिन्दी पचा ले, जैसे कि कमीज, अलमारी, अचार आदि शब्दों को पचाया है। अब इन शब्दों का घरानाठिकाना खोजना भी मुश्किल ही है। स्वयं अंग्रेजी के आधे से अधिक शब्द यूनानी, लातीनी और फ्राँसीसी भाषाओं से आये हैं। अंग्रेजी ने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के सैंकड़ों शब्दों को जस का तस हजम कर लिया है जैसे पंडित, गुरु, नवाब, राजा, महावत, चौकीदार, चपाती, चारपाई आदि। भारतीय भाषाओं में भी जरूरत के मुताबिक शब्द आते जाएंगे। इस प्रकार, अंग्रेजी को चलाए रखने के लिए शब्दों की कमी का तर्क तो बिल्कुल सतही है।

कमी शब्दों की नहीं, संकल्प की है। यदि अपनी भाषाओं में संकल्प के साथ सारे काम शुरु कर दिए जाएं तो शब्द अपने-आप पीछे-पीछे चले आएंगे। जब तक पानी में कूदेंगे नहीं, तैरना कैसे आएगा ? यह भी कोई तर्क है कि पहले तैरना सीखो, फिर पानी में कूदो ? क्या तैरना हवा में सीखा जाता है ? जो भीगने से, छपछपाने से, डूबने से डरता है, वह तैरना कैसे सीखेगा ? अभी लगभग १०० साल पहले तक फिनलैंड के लोग स्वीडी भाषा का इस्तेमाल करते थे। उन्होंने एक दिन तय किया कि वे अपनी भाषा चलाएंगे। बस, दूसरे दिन से, ही काम शुरु हो गया और आज फिनी भाषा के जरिये सारा काम-काज अच्छी तरह चल रहा है। ज़ार के जमाने में रूस में फ्रांसीसी भाषा का दबदबा था। लेनिन ने सत्तारूढ़ होते ही एक झटके में फ्रांसीसी को खत्म कर दिया। आज रूस में बड़े से बड़ा काम रूसी भाषा में होता है। तन्जानिया और लिब्या में भी यही हो रहा है। लेकिन हमारे शासकों ने अंग्रेजी के मामले में ऐसी नीति अपनाई, जो कि केवल गुलाम लोग ही अपना सकते हैं। गुलाम लोग अपने पर थोपी गई भाषा को तब तक नहीं हटा सकते जब तक उनके सिर पर एक बाहरी मालिक बैठा रहता है। अब मालिक को गये, पच्चीस साल से भी ज्यादा हो गए लेकिन

हमारा दिमागी वहम हमें अंग्रेजी को हटाने से रोकता है। सिर्फ रोकता ही नहीं है बल्कि अंग्रेजी को टिकाये रखने के लिए नए-नए बहाने खोजता है। बहानों का तो इलाज है, लेकिन वहम का कोई इलाज नहीं है।

अंग्रेजी के कुछ प्राध्यापकों ने, जो कि इस आन्दोलन के साथ हैं, दबे-छिपे मुझ से यह सवाल किया है कि अगर अंग्रेजी हट गई तो हमारा क्या होगा? मैंने उनसे कहा है कि आपकी कीमत बढ़ जाएगी। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि आज अनिवार्य अंग्रेजी पढ़ते समय बच्चे अपने अध्यापकों को मन ही मन कोसते रहते हैं और अंग्रेजी पढ़ने को गधाहम्माली का काम समझते हैं। जब अंग्रेजी हटेगी तो देश में विदेशी भाषाओं की ससम्मान पढ़ाई प्रारंभ होगी और अंग्रेजी को जो लोग भी पढेंगे, वे उसी सम्मान और स्नेह के साथ पढ़ेंगे, जिसके साथ कि वे आज जर्मन या फ्रांसीसी पढ़ते हैं। दूसरा अंग्रेजी के हटने बाद देश में हजारों कुशल अनुवादकों की जरूरत होगी। जो अध्यापक घानी के बैल की तरह ३०–३० साल तक एक ही तरह की पुस्तकों को रटाते रहते हैं, उन्हें नित नई पुस्तकों और साहित्य के अनुवाद का अवसर मिलेगा। बौद्धिक क्षितिज का विस्तार होगा और आमदनी भी बढ़ेगी। अंग्रेजी तो वे जानते ही हैं? यदि दूसरी विदेशी भाषाएं भी सीख लेंगे तो वे अधिक उपयोगी आदमी बन सकेंगे। इन्हीं लोगों को अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन में सबसे अधिक सक्रिय होना चाहिए।

(माणिक्य वाचनालय, खंडवा, अंग्रेजी हटाओ समिति, इन्दौर तथा लॉयन्स क्लब, महू में दिये गये भाषणों के आधार पर)

———

गांव शहर की भीड़ में आता है तो सोचता है असहाय हाथों को सहारा देकर बुद्धिमन्त अंग्रेजी-नवीस हिम्मत बंधायेंगे।

गांव क्या आज भी नहीं समझ पाता कि तन-मन-प्राणों को कुचल कर अंग्रेजी घोड़ा भाग गया है, अपने पीछे हजारों सईस छोड़ कर।

विष्णु दे

(स्मृति सत्ता भविष्यत्, पृ. ४५)

————

विदेशों में अंग्रेजी

मेरे अन्तर्राष्ट्रीय पारपत्र पर लगभग एक दर्जन देशों के छापे लगे हैं लेकिन उन सब में केवल मेरा अपना देश भारत ही एक मात्र ऐसा देश है, जिसका छापा उसकी अपनी जुबान में नहीं है। मैंने करीब आधा दर्जन हवाई कंपनियों से विभिन्न देशों की यात्रा की लेकिन उन सब में केवल अपने देश की हवाई कंपनी, 'एयर इंडिया' की विमान परिचारिकाएं ही एक मात्र ऐसी विमान परिचारिकाएं थीं जो अपने देशवासियों के साथ परदेसी भाषा में बात करती थीं। यदि इस प्रकार की घटनाओं से किसी देश के नागरिकों का सिर ऊंचा होता हो तो सचमुच भारतीय लोग अपना सिर आसमान तक ऊंचा उठा सकते हैं।

हमारे देश में यह आम धारणा है कि विदेशों में अंग्रेजी ही चलती है, अंग्रेजी के बिना हम विदेशों से संपर्क नहीं रख सकते, अंग्रेजी के जरिये ही विदेशी मुल्कों ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में इतनी उन्नति की है। इस तरह की दकियानूसी और पिछड़ेपन की बातों पर एक लम्बी बहस चलायी जा सकती है लेकिन यहां मैं केवल उन छोटे-मोटे अनुभवों का वर्णन करूंगा जो पूरब और पश्चिम के देशों में भाषा को लेकर मुझे हुए।

मैं एशियाई देशों में अफगानिस्तान, ईरान और तुर्की गया, यूरोपीय देशों में रूस, चेकोस्लोवाकिया, इटली, स्विटजरलैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी तथा ब्रिटेन गया तथा यात्रा का अधिकांश भाग अमेरिका और कनाडा में विताया। इन देशो में से एक भी ऐसा देश नहीं था जिसकी सरकार का काम-काज उस देश की जनता की जुबान में नहीं होता हो। अफगानिस्तान जैसा देश, जहां राजशाही है और जहां राज-परिवार के अधिकांश सदस्यों की शिक्षा पेरिस या लंदन में हुई है, वहां भी शासन का काम या तो फारसी (दरी) या पश्तो में होता है। मैंने अफगानिस्तान के लगभग सभी प्रांतों की यात्रा की और सभी दूर शासकीय दफ्तरों में जाने का अवसर मिला, कहीं भी किसी भी दफ्तर में अंग्रेजी का इस्तेमाल होते हुए नहीं देखा। आप चाहे विदेश मंत्रालय में चले जायें या गृह मंत्रालय या पुलिस चौकी या किसी राज्यपाल के दफ्तर में, आप पायेंगे कि बड़े से बड़ा अधिकारी अपनी देश-भाषा का प्रयोग करता है। अफगानिस्तान में मैं विदेशी था लेकिन अफगान विदेश मंत्रालय ने राज्यपालों के नाम मेरे लिये जो पत्र दिये वे 'दरी' में थे, अंग्रेजी में नहीं। इसी प्रकार सोवियत रूस में 'इंस्तीतूते

नरोदोफ आजी' के निदेशक ने मस्क्वा के विभिन्न पुस्तकालयों के नाम मुझे जो पत्र दिये, वे रूसी भाषा में थे। इस संस्था के निदेशक प्राचार्य गफूरोव जो रूस के श्रेष्ठतम विद्वानों में से एक हैं, अंग्रेजी नहीं जानते। उनके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के ऐसे अनेकों रूसी विद्वानों से भेंट हुई जो अंग्रेजी नहीं जानते। जो अंग्रेजी जानते हैं, वे भी अपनी रचनाएं रूसी भाषा में ही लिखते हैं और फिर उनका अनुवाद होता है। अंग्रेजी या फ्रांसीसी उनके लिए आकलन की भाषा है, सूचना देनेवाला एक माध्यम है, उनकी अभिव्यक्ति को कुंठित करने वाला गलाघोटू उपकरण नहीं है। मस्क्वा में सैंकड़ों भारतीय विद्यार्थी विज्ञान और इंजीनियरी का उच्च अध्ययन कर रहे हैं। उन्हें सारी शिक्षा रूसी भाषा के माध्यम से ही दी जाती है। मस्क्वा में एक बार हम लोग विद्वान और तकनीक की प्रदर्शनी देखने गये। वहां मालूम पड़ा कि जिस वैज्ञानिक ने अंतरिक्ष यान आदि के आविष्कार किये हैं, उसने अपनी रचनाएं रूसी भाषा में ही लिखी हैं। इसी प्रकार जर्मनी और फ्रांस के विश्वविद्यालयों में ऊंची से ऊंची पढ़ाई उनकी अपनी भाषाओं में होती है। विश्वविद्यालयों क कई महत्त्व-पूर्ण प्राचार्य अंग्रेजी नहीं बोल सकते थे। आस्ट्रिया में मैं वियना के एक विश्व-विद्यालय में दर्शन के कुछ अध्यापकों से मिलना चाहता था। जब विश्वविद्यालय के प्रांगण में पहुंचा तो बड़ी कठिनाई हुई। मेरे साथ कोई दुभाषिया नहीं था। कोई आधा घंटा परेशान होने के बाद एक आदमी ऐसा मिला जो मेरी बात का जर्मन भाषा में तर्जुमा कर सकता था।

लंदन में 'लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स' की ओर से एक अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद हुआ। उसमें यूरोप के विभिन्न देशों अनेकों विद्वान् आए थे। या तो हिन्दुस्तानी विद्वान् अंग्रेजी बोलते थे या हमारे पुराने स्वामी अंग्रेजी बोलते थे। यूरोप के विद्वान् या तो ज्यादातर चुप बैठे रहते थे या टूटी-फूटी अंग्रेजी में बोलते थे। जब 'इटली के गांधी' श्री दानियेल दोल्ची ने अपना भाषण इतालवी जुबान में किया तो मेरी भी हिम्मत बढ़ी। मैंने अपनी बात हिन्दी में कही जिसका तर्जुमा श्री निर्मल वर्मा ने किया। तत्पश्चात् जो अन्य यूरोपीय लोग वहां चुप बैठे थे, वे भी अपनी-अपनी भाषाओं में बोलने लगे। और किसी न किसी ने उनके भाषणों का भी तर्जुमा कर दिया। वहां लगभग आधा दर्जन भारतीय थे और एकाध सज्जन को छोड़कर सभी लोग त्रुटिपूर्ण और भद्दी अंग्रेजी बोल रहे थे लेकिन अपनी जुबान का ठीक इस्तेमाल करने की हिम्मत किसी को भी नहीं हो रही थी।

चेकोस्लोवाकिया में वहां के प्रसिद्ध जन-नेता और संसद के अध्यक्ष डॉ. स्मर-कोवस्की से जब मैं मिलने गया तो उनके विदेश मंत्रालय ने एक ऐसा दुभाषिया भेजा जो अंग्रेजी से चेक में अनुवाद करता था। मैंने कहा मैं भारतीय हूं, मेरे लिए अंग्रेजी वाला दुभाषिया क्यों भेजा ? उन्होंने कहा आपके देश से आने वाले विद्वान, नेता और कूटनीतिज्ञ अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि

डॉ. स्मरकोवस्की जैसे राष्ट्रनेता यूरोपीय होने के बावजूद भी अंग्रेजी का प्रयोग नहीं करते। इसी प्रकार अफगानिस्तान के भूतपूर्व प्रधान मंत्री सरदार दाउद, जो कि अपने देश के इतिहास में सब से बड़े शासकों में से एक माने जाते हैं, अंग्रेजी में बात नहीं कर सकते। उन के साथ मेरी बातचीत 'दरी' में ही हुई।

ब्रिटेन को छोड़कर, यूरोप के बाजारों में आपको एक भी नामपट अंग्रेजी में नहीं मिल सकता। हर देश के लोग अपनी-अपनी भाषा में ही अपनी-अपनी दुकानों के नाम लिखते हैं। दुकानों में बिकने वाली चीजों पर लगी मोहरें भी अपनी ही भाषा में होती हैं। कई दुकानों में से तो मुझे वापस लौट आना पड़ता था, क्योंकि सामान बेचने वाली लड़कियां सिर्फ फ्रांसीसी भाषा में ही बोलती थीं। यदि आप उनसे अंग्रेजी में बोलें तो वे इसका बहुत बुरा मानती हैं। यदि आप अंग्रेजी के सहारे बैठे रहें तो यूरोप में तो भूखे मर जायें। चेकोस्लोवाकिया में मैंने एक होटल में वहां की भोजन परोसने वाली महिलाओं को बहुत समझाया कि मैं मांस नहीं खाता हूं, लेकिन वे बार-बार मांस की प्लेट ले आती थीं। तब एक वृद्ध महिला ने आकर पूछा कि 'क्या आप भारतीय हैं' तो मैंने कहा 'हां'। तब उन्होंने चेक भाषा में ही पूछा कि 'क्या आप योगी हैं'। मैंने उन्हें रूसी भाषा में बताया कि 'मैं योगी तो नहीं हूं लेकिन शाकाहारी हूं', तब जाकर कहीं भोजन मिला। वैसे यूरोप की राजधानियों में तथा बड़े शहरों में फिर भी कुछ लोग अंग्रेजी जानने वाले मिल जाते हैं लेकिन यदि आप किसी देश के आन्तरिक भागों में चले जायें तो या तो आपके साथ दुभाषिया हो या आप इशारों और सामान्य बुद्धि का प्रयोग करें तभी काम चल सकता है। अधिकांश देशों में मेरे मित्र ही दुभाषिये का काम कर देते थे और जहां मुझे अकेले जाना पड़ता था, भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। हर देश के दैनिक अखबार अपनी स्थानीय भाषा में निकलते हैं। वहां अंग्रेजी अखबार प्राप्त करना काफी कठिन होता है। स्विटजरलैंड में मैं लीस्ताल नामक एक गांव में रहता था। वहां एक से एक बढ़िया स्विस अखबार मिल सकते थे लेकिन यदि आपको अंग्रेजी भाषा में ब्रिटिश और अमेरिकी अखबार खरीदना हो तो ज्यूरिक या बर्न जाना होगा।

विदेशों में भारतीय दूतावासों में सभी कहीं दूर तक अंग्रेजी का बोलबाला है, चाहे वह काबुल हो या पेरिस। हमारे दूतावासों के सारे कर्मचारियों में से मुश्किल से एक दो कर्मचारी ऐसे होते हैं जो उस देश की भाषा जानते हैं, जिस देश में उन्हें कूटनीति चलाना है। उन्हें कूटनीति करनी है फ्रांसीसियों के साथ और भाषा बोलते हैं अंग्रेजों की। हमारे शिक्षक पढ़ाते हैं अफगान बच्चों को और उस भाषा का इस्तेमाल करते हैं जो अंग्रेज बच्चों को पढ़ाने के लिए की जानी चाहिए। शायद हम लोगों ने भाषा के महत्त्व को बिल्कुल भी नहीं समझा है। हम नहीं जानते कि जब हम सामने वाले की भाषा का सम्मान करते हैं और उसी में बोलते हैं तो उसे कितनी प्रसन्नता होती है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे रूस और अफगानिस्तान में हुआ।

किसी मेवा बेचने वाले पठान से मैं चार बातें काबुली भाषा में कर लेता हूं तो उसका दिल भर आता है। रूस में रूसी विद्वानों को यह देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई की मेरे हिन्दी में लिखे शोधग्रंथ की कुछ पाद टिप्पणियां रूसी भाषा में थी। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम दुनिया में कहीं जायें, अंग्रेजी का इस्तेमाल करते हैं। इस प्रवास में मुझे अनेकों कूटनीतिक रात्रिभोजों में शामिल होने का अवसर मिला। इन भोजों में हिन्दुस्तानी कूटनीतिज्ञ अपने साथियों और देशवासियों से अंग्रेजी में बात करते हैं जब कि दूसरे देशों के कूटनीतिज्ञ अपने साथियों से उनकी अपनी जुबान में बात करते हैं। कितना अच्छा हो कि हमारे दूतावास के कर्मचारी, जिस देश में दूतावास हैं, उस देश की भाषा सीखें और अपने देशवासियों से स्वदेशी भाषाओं में बात करें।

मैं जिस देश में भी जाता, अन्य सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों के अलावा भाषा के सवाल पर बहस जरूर होती क्योंकि मेरा शोधग्रंथ हिन्दी में था, इसलिए भाषा का सवाल घूम फिरकर आ ही जाता। अफगानिस्तान और सोवियत संघ के जिन जिम्मेदार लोगों को "इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज" के साथ हुए मेरे भाषायी विवाद का पता था, उनमें से कई ने इस कदम को उचित बताया और सोवियत विद्वानों ने तो यह भी कहा कि मैं चाहूं तो मेरा शोधग्रंथ वे हिन्दी और रूसी भाषा में भी छपवा सकते हैं। इसके विपरीत ब्रिटेन और अमरीका में वहां के विद्वानों को इस बात का भारी दुःख था कि मैंने उनकी महान भाषा को चुनौती दे दी थी। जैसे कि मैंने अंग्रेजी के एकाधिकार को चुनौती देकर भारी पाप किया है। कनाडा में 'इन्डो-कनाडियन इन्स्टीटचूट' के कार्यकारी निदेशक से भारत में बौद्धिक उपनिवेशवाद के विषय पर चर्चा हुई। उनको मैंने यह सुझाव दिया कि इस संस्था की स्थापना श्री लालबहादुर शास्त्री की स्मृति में हुई है। अतः आप कम से कम इतना करें कि इस संस्था के अन्तर्गत किये गये शोधकार्यों का भारतीय भाषाओं में तर्जुमा करवायें तथा भारतीय भाषाओं में कार्य करने वाले विद्वानों को विशेष रूप से छात्रवृत्तियां दें। उन्होंने कहा कि उन्हें तो ये सुझाव मंजूर हैं लेकिन पता नहीं भारतीय शिक्षा-मंत्रालय की क्या प्रतिक्रिया होगी। तब मैंने कहा "उसका तो मुझे भी पता नहीं है।" कई अमरीकी विश्व-विद्यालयों में भाषा के सवाल को लेकर अमरीकी प्रोफेसरों से सुतीक्ष्ण विवाद चले। मैंने उन विद्वानों को नम्रतापूर्वक यह बताने की कोशिश की कि कुछ भारतीयों द्वारा अंग्रेजी को एकांगी महत्त्व देने का परिणाम यह हुआ है कि भारत के अधिकांश बुद्धिजीवियों की मौलिक प्रतिभा कुंठित हो गई है, वे आपके बौद्धिक पिछलग्गू हो गए हैं और वे लफ्फाजी को बौद्धिकता समझने लगे हैं। फलस्वरूप पिछले दो-ढाई सौ साल में भारत में स्वतन्त्र चिन्तन की परम्परा को ठेस लगी। जो अंग्रेज और अमरीकी लोग लिखते-पढ़ते हैं, हिन्दुस्तान के अंग्रेजीपरस्त बुद्धिजीवी उसी की जुगाली करते रहते हैं। वे आपके और हिन्दुस्तान की जनता के बीच बौद्धिक दलाली करते हैं। अंग्रेजी के कारण आपके और उनके रिश्ते बढ़ गये हैं और उनके और हिन्दुस्तान की आम जनता के बीच खाई बढ़ती जा रही है। जब अमरीकी राजनीतिज्ञ और विद्वान् मुझसे कहते कि वे हिन्दुस्तान

की जनता से दोस्ती करना चाहते हैं तो मैं उनसे उपर्युक्त बात कह कर पूछता कि आप यदि हिन्दुस्तान की जनता से दोस्ती करना चाहते है तो फिर चन्द दकियानूसी बुद्धिजीवियों की जुबान को क्यों बढ़ावा देते हैं। क्यों भारतीय लोक-भाषाओं का तिरस्कार करते हैं ? यदि आपको अपनी भाषा प्यारी है तो आप दूसरों को उनकी भाषा में काम क्यों नहीं करने देते ? क्या आप यह पसन्द करेंगे कि यदि आप से ६० साल बाद भारत अमरीका जितना ताकतवर देश हो जाये तो वह अमरीका पर भी कोई भारतीय भाषा थोपने की साजिश करे ? मैंने उन्हें बताया कि भारत में अब वह दिन बहुत दूर नहीं है जब अंग्रेजी बोलने वाले लोगों और आम जनता का रिश्ता वैसा ही हो जायेगा जैसा च्यांग काई शेक और चीन की जनता के बीच था। मैंने उनको यह भी बताया कि मैं और मेरे जैसे लाखों नौजवान, जो देश को उसकी जुबान देने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, अंग्रेजी भाषा से नफरत नहीं करते। हम अंग्रेजों या अमरीकियों से घृणा नहीं करते हैं बल्कि हमारी मान्यता यह है कि हमारे देश में अंग्रेजी, उपनिवेशवाद का एक अवशेष है। एक ऐसा हथियार है, जिसका इस्तेमाल पढ़ा-लिखा शहरी वर्ग आम जनता के हितों के विरुद्ध अपने स्वार्थों के लिए कर रहा है। अभिजात् वर्ग की इस स्वार्थ-लिप्सा से हमारे देश की संस्कृति, हमारे बालकों की शिक्षा, आर्थिक समानता के प्रयत्न, बौद्धिक मौलिकता आदि सभी बातों पर बुरा असर पढ़ रहा है। मैंने अमरीकी मित्रों से पूछा कि क्या अपने दोस्तों का नुक्सान करके ही आप उनसे दोस्ती बढ़ाना चाहते हैं ? अधिकांश अमरीकियों को ये बातें बहुत अजीब लगती थीं, कुछ उबल भी पड़ते थे लेकिन जब मैं उनके संसदीय दस्तावेज दिखलाकर उनको बतलाता कि देखिये भारत में अंग्रेजी को प्रोत्साहित करने के पीछे अमरीकी सरकार के क्या स्वार्थ हैं, तो वे चुप हो जाते। केवल एक अमरीकी प्रोफेसर ने जो दक्षिण एशियाई राजनीति के बड़े विद्वान माने जाते हैं, मुझे अपने पत्र में लिखा कि "जब तक आप अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करें, हमारा सम्पर्क रह सकता है। आपसे मिलने के बाद मुझमें फिर से हिन्दी का गम्भीर अध्ययन करने की प्रेरणा जगी है, जो पिछले कुछ सालों से छूट गया था। मुझे विश्वास है कि आप अपने हिन्दी-जगत में लौटने के बाद भी बाहरी संसार को नहीं भूलेंगे। लेकिन यह निश्चित रूप से अच्छा है कि अपने (राष्ट्रीय) चरित्र को जाना जाये और उसपर जोर दिया जाये तथा बौद्धिक और राजनैतिक रूप से दूसरों के दबाव में नहीं रहा जाये।" इन्हीं प्रोफेसर महोदय ने कुछ दिनों बाद जो दूसरा पत्र लिखा है उसमें कहा—मैं आपसे कहना भूल गया कि हमारे घर के दरवाजे पर एक नामपट टंगा हुआ है, जिस पर लिखा हुआ है—श्री और श्रीमती पामर, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में।"— **(धर्मयुग, १२ अप्रैल १९७०)**

संविधान और अंग्रेजी

जहां तक भाषा का सवाल है, आजादी के ये पच्चीस साल गुलामी के पच्चीस सालों से भी बदतर सिद्ध हुए हैं। जब भारत गुलाम था तो स्वभाषा के अभिमान की ज्वाला महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों ने देश के कोने कोने में धधका रखी थी। ऐसा लगता था कि देश के आजाद होते ही अंग्रेजी के साथ उसकी भाषा-अंग्रेजी भी विदा हो जायेगी। गांधीजी कहा करते थे कि आजादी मिलने से ही देश का सारा काम-काज अपनी भाषा में शुरू हो जाना चाहिए। उन्होंने तो यहां तक कहा था कि आजादी के छह महीने बाद भी यदि कोई आदमी संसद या विधानसभा में अंग्रेजी में बोलता हुआ पाया गया तो मैं उसे गिरफ्तार करा दूंगा। अच्छा हुआ कि आजादी के बाद छह महीने पूरे होते, उसके पहले ही गांधीजी हमसे विदा हो गये। वरना चिर-निद्रा में विलीन होने के पहले वे अपनी छाती पर एक के वजाय दो पत्थर रखकर जाते! एक तो खंडित भारत का और दूसरा अंग्रेजी के राज्याभिषेक का। ये दोनों गोड़से की गोलियां से भी ज्यादा नुकीले थे। गोड़से की गोलियां गांधीजी के पार्थिव शरीर को भेदकर ठंडी पड़ गयीं। लेकिन गांधीजी के परमप्रिय शिष्यों द्वारा चलाये गये ये दो पत्थर आज भी कोटि-कोटि असहाय, पीड़ित, दलित और बेजुबान भारतीय और पाकिस्तानियों के जीवनों को, अस्तित्व को तोड़ते जा रहे हैं।

ये जो दूसरा पत्थर है, अंग्रेजी वाला, जिसे आजादी के दीवाने ठोकरों पर ठोकरें लगाते रहे आजादी आने पर संविधान के मंदिर में उसे ही भगवान बनाकर बिठा दिया गया। संविधान की धारा ३४३ में हिन्दी को राजभाषा तो माना गया किन्तु उसके गले में अंग्रेजीवाला पत्थर बांध दिया गया। १९५० के संविधान ने कहा कि १५ साल तक याने १९६५ तक तो सरकार के सारे काम हिन्दी या अंग्रेजी किसी भी भाषा में चल सकते हैं और १९६५ के बाद कौन-कौन से कामों से अंग्रेजी को विदा किया जाये, यह तय करने के लिए १९५५ और १९६० में दो भाषा-आयोग बनाये जायेंगे। उनकी सिफारिशों पर संसदसदस्यों की एक समिति विचार करेगी और इस समिति की रपट के आधार पर यदि राष्ट्रपति उचित समझेंगे तो अंग्रेजी के प्रयोग पर रोक लगायेंगे। साथ में यह भी जोड़ दिया गया कि यदि संसद उचित समझेगी तो धारा ३४३ (३) के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में अंग्रेजी को १९६५ के बाद भी बनाये रखने के लिए कानून बना सकती है। इसके अलावा धारा ३४८ में बहुत ही साफ शब्दों में हिन्दी का पत्ता काट दिया गया। धारा ३४८ के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय तथा कानून की प्रामाणिक

भाषा केवल अंग्रेजी ही होगी। प्रान्तों के न्यायालयों में सुनवाई और बहस चाहे भारतीय भाषाओं में करने की छूट राष्ट्रपति दे सकता है लेकिन अदालतों के निर्णय, आदेश आदि केवल अंग्रेजी में होंगे। इसी प्रकार प्रान्तीय विधान सभाओं के कानून चाहे प्रान्तीय भाषाओं में हो लेकिन केवल उनकेअंग्रेजी अनुवाद ही प्रामाणिक माने जायेंगे। इतना ही नहीं, इस धारा में फेर-बदल करने के लिए संसद को कोई अधिकार नहीं दिया गया। संसद यदि इस प्रावधान में कोई परिवर्तन करना चाहे तो उसे राष्ट्रपति तब तक इस विषय में अपनी सहमती नहीं देगा जब तक कि वह भाषा-आयोगों और संसदीय समितियों की रपट पर विचार न कर ले।

दूसरे शब्दों से जनता को भरमाने के लिए राजभाषा के रूप में हिन्दी का मुखौटा सामने कर दिया गया और इस निर्जीव मुखौटे के नीचे एक सजीव और चालाक चेहरा अंग्रेजी वाला रख दिया गया। ज्यों ज्यों समय बीता, मिट्टी का मुखौटा गलने लगा और अंग्रेजीवाला असली चेहरा उभरने लगा। १९५५ में शासकीय भाषा-आयोग बना उसने राष्ट्रपति के सामने १९५६ में और संसद के सामने १९५७ में अपनी सिफारशें पेश कीं। संसद की राजभाषा समिति ने इन सिफारिशों पर विचार करते हुए १९५० के सवैंधानिक प्रावधानों को शीर्षासन करा दिया और टूक शब्दों में कहा कि १९६५ तक अंग्रेजी को संघ की मुख्य राजभाषा और हिन्दी को उसकी सह-राजभाषा के रूप में रखा जाये। १९६५ तक मलिका दासी के पांव धोये और जब १९६५ में हिन्दी मुख्य राजभाषा बने तो अंग्रेजी को जब तक जरूरत हो तब तक कुछ विशेष कार्यों के लिए सह-राजभाषा के रूप में बनाए रखा जाये। दूसरे शब्दों में, भाषा आयोग और भाषा-समिति दोनों ने अंग्रेजी के प्रयोग को सीमित करने के बजाय उसे किसी न किसी रूप में बढ़ाने और टिकाये रखने की सलाह दी। जब वागड़ ही खेत चरने लगे तो खेत का अल्ला ही बेली है।

१९५९ में संसद में पं. जवाहरलाल नेहरू ने अहिन्दी भाषी राज्यों को अंग्रेजी के प्रश्न पर निषेधाधिकार प्रदान कर दिया। उन्होंने आश्वासन दे दिया कि जब तक अहिन्दी भाषी राज्य चाहेंगे, संघ के कार्यों में अंग्रेजी का रुतबा कायम रहेगा। १९६० में इसी आशय का आदेश राष्ट्रपति ने जारी कर दिया। गृह मंत्रालय ने एक आदेश में साफ-साफ कहा कि संघ के कार्यों के लिए वर्तमान में अंग्रेजी के प्रयोग पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाये। १९६३ में भारत सरकार ने राजभाषा विधेयक प्रस्तुत कर दिया, जिसका उद्देश्य तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के शब्दों में एक "अनवरत द्विभाषावाद" को चलाये रखना था। इस विधेयक ने अंग्रेजी को अनंत काल तक हिन्दी की सह-राजभाषा का पद देकर उस मुखौटे को भी नोंचकर फेंक दिया जो १९५० में जनता के डर के मारे सरकार ने अंग्रेजी वाले मुख पर चढ़ा रखा था। १९६३ के भाषा विधेयक ने संघ लोक-सेवा आयोग में हिन्दी के प्रयोग की मृग-मरीचिका को भी जागृत किया लेकिन मद्रास और बंगाल के दबाव के कारण वह एक पवित्र इरादा मात्र बनकर रह गई।

१९६५ में हिन्दी स्वतः ही भारत की प्रमुख राजभाषा बन गई। दक्षिण का विरोध उग्र होता गया। परिणामस्वरूप १९६७ में भारत सरकार ने १९६३ के राजभाषा विधेयक में संशोधन पेश किया, जिसे १९६८ में संसद ने स्वीकार कर लिया। इस संशोधित राजभाषा विधेयक में ऐसा प्रावधान कर दिया गया कि जब तक एक भी अहिन्दी भाषा राज्य चाहेगा, संघ सरकार का कार्य अंग्रेजी में चलता रहेगा। हिन्दी भाषी राज्य यदि किसी अहिन्दी भाषी राज्य को पत्र लिखेगा तो उसका अंग्रेजी अनुवाद साथ में भेजना पड़ेगा। तथा जब तक कर्मचारी अच्छी हिन्दी न सीख लें तब तक संघ सरकार के विभिन्न विभागों में हिन्दी पत्रों के साथ अंग्रेजी अनुवाद संलग्न करना आवश्यक है। याने अंग्रेजी अनिवार्य रूप से बनी रहेगी। इसका उल्टा नहीं होगा अर्थात् यदि कोई विभाग अंग्रेजी में अपना पत्र भेजे या कोई हिन्दी-भाषी राज्य को अंग्रेजी में पत्र भेजे तो उसके साथ उसका हिन्दी अनुवाद भेजना जरूरी नहीं है।

१९६८ के इस संशोधित अधिनियम में जहां अंग्रेजी को अनंत काल तक बनाये रखने की साजिश की गई थी, वहां केवल यह बात आशा की एक किरण के रूप में थी कि संघ लोक-सेवा आयोग की भर्ती की नौकरियों में, आयोग से परामर्श करने के बाद सभी क्षेत्रीय भाषाओं को परीक्षा का वैकल्पिक माध्यम बना दिया जायेगा तथा "संघीय नौकरियों में भर्ती के लिए चयन के समय उम्मीदवारों को हिन्दी या अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिए।" अर्थात् हिन्दी या अंग्रेजी दोनों में से यदि उम्मीदवार को किसी भी एक भाषा का ज्ञान होगा तो उसका चयन हो सकता है। दूसरे शब्दों में. पहली बार अंग्रेजी को ऐच्छिक बनाया गया। अंग्रेजी के ज्ञान के बिना भी किसी व्यक्ति का चयन संघ लोक-सेवा आयोग के लिए हो सकता है।

संशोधित भाषा अधिनियम को पारित हुए चार साल से भी ज्यादा हो गये हैं। संघ लोक-सेवा आयोग अभी तक सोया हुआ है। संसद में मंत्रिगण थोथे आश्वासन देते रहते हैं। सरकारी परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता पूर्ववत कायम है। अंग्रेजी नहीं जाननेवाले या कम जाननेवाले उम्मीदवारों के लिए भर्ती और पदोन्नति के मार्ग अवरुद्ध हैं। हाल ही में अनुवाद ब्यूरो के एक कर्मचारी श्री कोमल किशोर सिंघल का मामला सामने आया है। सभी आवश्यक योग्यताओं के बावजूद सिंघल की पदोन्नति रोक देने के लिए यह शर्त लगा दी गई कि उन्हें अंग्रेजी के अनिवार्य पर्चे में पास होना पड़ेगा। पद है हिन्दी टाइपिस्ट का और अनिवार्य है अंग्रेजी का जानना। कितनी विडम्बना है? यह संशोधित भाषा-अधिनियम का सरासर उल्लंघन है। लेकिन मंत्रिगणों के माथे पर जूं भी नहीं रेंगती। इसी प्रकार दिल्ली प्रशासन के भर्ती के विज्ञापनों में उम्मीदवारों के लिए हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी की जानकारी को अनिवार्य शर्त माना गया है। इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या हो सकती है कि दिल्ली जैसे हिन्दी भाषी इलाके में किसी नौजवान के पेट पर सिर्फ इसलिये लात मार दी जाय कि वह अंग्रेजी में प्रवीण नहीं हैं? दिल्ली में बैठ कर लन्दन की भाषा के लिए दुराग्रह करना फूहड़पन ही है। लेकिन गांधीजी के इन शिष्यों को कौन बरज सकता है?

वास्तव में, भारत के संविधान में राजभाषा का अध्याय भारतीय भाषाओं को राजतिलक करने का अध्याय नहीं है बल्कि भारत की कोटि-कोटि जनता पर अनन्त काल तक अंग्रेजी को थोपने का अध्याय है। संविधान के लागू होने के बाद देश में अंग्रेजी का दबदबा बढ़ा है। अंग्रेज के जमाने में केन्द्रीय अफसरों के लिए क्षेत्रीय भारतीय भाषाएं सीखना आवश्यक था। जब आजादी आई तो सिर्फ अंग्रेजी जानना जरूरी रह गया। गुलामी में हम आधे गुलाम थे आजादी में हम पूरे गुलाम हो गये। अंग्रेज के जमाने में प्रशासन में ऊपर-ऊपर अंग्रेजी थी, नीचे-नीचे स्थानीय भाषाएं। आजादी आई तो ऊपर नीचे सभी तरफ अंग्रेजी हो गई। पहले वह केन्द्र और प्रान्त की राजधानी में थी. अब वह कस्बों और गांवों में भी पहुंच गई। सरकारी दफ्तरों का लगभग सारा काम-काज अंग्रेजी में होता है। क्या आप विश्वास करेंगे कि सरकार ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए जो संस्थाएं बनाई हैं, उनका दफ्तरी काम-काज भी अंग्रेजी में चलता है?

जब देश गुलाम था तो करीब छह सौ राजाओं के राज-क्षेत्र में ऊंचे से ऊंचे स्तर तक भारतीय भाषाएं चलती थीं। जहां तक भाषा का सवाल है, राजा और प्रजा के बीच, हुक्म और फरियाद के बीच कोई दीवाल नहीं था। आजादी आई। राज खतम हो गये। उनके जगह जो नये राजा आये उन्होंने अपने चारों तरफ अंग्रेजी की दीवाल खड़ी कर ली। सारी जनता पर संविधान ने अंग्रेजी थोप दी। जो क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में थे वहां तो अंग्रेजी चल रही थी। अब राज्यों के विलयन का नतीजा यह हुआ कि राज्य वाले इलाकों में भी अंग्रेजी चल पड़ी। ...हुई।

...ापस में

भारत को प्रशासन पिछले पच्चीस सालों में जादू-टोना बनकर रखी अपनी
स्वाधीन भारत के राष्ट्रपति गणतंत्र दिवस पर अपना संदेश अंग्रेजी में बात करते
स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री संसद में अंग्रेजी में बोलते हैं। स्वाधीन भारत आत्म-विश्वास
योजनाएं अंग्रेजी में हैं। स्वाधीन भारत का प्रामाणिक संविधान केवल आ बढ़ेगी। गल-
स्वाधीन भारत के मंत्रिमंडल और संसद की अधिकांश कार्यवाही अंग्रेजी में
जिन कामों का जनता से सीधा संबंध है, वे सब काम उस भाषा में होते ...ा कि एक छोटे-से
नहीं समझती। इसीलिए आजादी के पच्चीस साल बाद भी गांव का ...े वह किसी भी
संसद की दर्शक-दीर्घा में आकर बैठता है तो उसके लिए संसद का मतल यह जरूरी नहीं है
और कुछ बड़बड़ाते हुए संसतसदस्यों के अलावा कुछ भी नहीं होता के बीच जो खाई है,
"हैबियस कारपस रिट" का नाम नहीं सुना। पुलिस की हिरासत में ...ण के लिये अंग्रेजी के
आज भी वह उसी तरह गिड़गिड़ाता है, जिस तरह वह आज से पच्...से इतना तो जरूर होगा
भारत में गिड़गिड़ाता था। आजादी ने उसे क्या दिया? जुबा... एक बार रास्ता खुल जाये
संसद, पंचवर्षीय योजना, न्याय, शिक्षा—सब उसके लिए जा...
में कम से कम राजाओं की अदालतों में होने वाली उसकी (नई दुनिया, १५ अगस्त १९७२)
तो सकता था। उसकी अपनी जुबान में बहस और फैस...
समझ पर भी अंग्रेजी का पर्दा डाल दिया। उसके जीव...

में आज अंग्रेजी में बहस होती है और वह बहरे की तरह खड़े-खड़ बस देखता रहता है। वह गूंगा भी है, क्योंकि अंग्रेजी नहीं बोल सकता। वह उस जुबान में नहीं बोल सकता जिसे 'लोग' समझते हैं। हिन्दुस्तान के आम आदमी को इस व्यवस्था ने, इस संविधान ने गूंगा और बहरा बना दिया है। जिस देश में व्यवस्था आम आदमी को गूंगा और बहरा बनाती है, वहां प्रजातंत्र, सच्चा प्रजातंत्र कैसे आ सकता है ?

देश की व्यवस्था कुछ तथाकथित 'बड़े लोगों' के हाथों में सिकुड़ती गई है। व्यवस्था का दूध 'बड़े लोगों' का यह छोटा–सा वर्ग पी रहा है। व्यवस्था के लिए, आजादी के लिए खून देने वाले छोटे-छोटे लोगों का बड़ा वर्ग बाहर खड़ा है और इन दोनों वर्गों के बीच हमारे संविधान ने, शासन ने एक दीवाल खींच रखी है। उस दीवाल का नाम है अंग्रेजी। जब तक आप इस दीवाल को नहीं फाँदते, आप भी बाहर खड़े-खड़े हाथ मलते रहिये। यह सिर्फ संयोग की ही बात नहीं है कि दूध पीनेवाला वर्ग अंग्रेजी के साथ जुड़ा हुआ है और खून देनेवावा भारतीय भाषाओं के साथ। दूध पीनेवाले अंग्रेजी की हिफाजत करते हैं और अंग्रेजी दूध पीनेवालों को सलामत रखती है।

क्या आपने कभी सोचा कि इस देश में जिन्हें मोटी-मोटी तनख्वाहें मिलती हैं, वे कौन हैं ? क्या आप आपने कभी ध्यान दिया कि रेल की प्रथम श्रेणी में यात्राएं करने वाले लोग कौन हैं ? क्या आपने हवाई जहाज में यात्रा करने वाले लोगों के बारे में जानकारी निकाली ? क्या आप जानते हैं कि देश की शानदार कालोनियों में कौन लोग रहते हैं ? ये वे सब लोग हैं, जिन्हें आप अंग्रेजीदां कह सकते हैं। अंग्रेजी के साथ रुतबा, विशेषा-
...कार, आनन्द के साधन आदि जुड़े हुए हैं और भारतीय भाषाओं के साथ ? भारतीय
...ओं के साथ, आम आदमी की जुबान के साथ गरीबी, उत्पीड़न और एक
...त जीवन जुड़ा हुआ है। इस अभिशप्त जीवन के भागीदार भारत में
...ी संख्या में हैं। वे अपने अभिशापों से उबरना चाहते हैं। उनमें उबरने की
...है लेकिन वे यदि सचमुच उबरने लगें तो क्या होगा ? कोहराम मच जायेगा।
...र बंटेगा, धन और धरती बंटेगी, सुविधाएं बंटेंगी, रुतबा बंटेगा। ऐसा होने
...वाले वर्ग के पास क्या बच रहेगा ? उसमें और आम जनता में क्या फर्क रह
...पीने वाला वर्ग अपनी चीजों को बचाना चाहता है। अपनी चीजों को
...तरीका यह भी है कि उन चीजों को पाने का रास्ता जरा कठिन बना
...ाने में राजा अपने किले की रक्षा कैसे करता था ? फौज तो रखता ही
...ले को या तो ऊंची पहाड़ी पर बनवाता था या उसके चारों तरफ खाई
...कि दुश्मन से जब सामना होगा तब होगा ही लेकिन पहले तो ऐसी
...वह किले के नजदीक ही न फटक सके।

...ला वर्ग है, यह सुविधाओं के किले में पिछले दो सौ सालों से
...चारों तरफ उसने अंग्रेजी की खाई खोद दी है। देश के
...े को देखते हैं तो उनका पौरुष हुंकारता है लेकिन जब वे
...ाई को देखते हैं तो उनका दिल टूट जाता है। अंग्रेजी

मे
व्यवि
संघ लोक
रहते हैं। स
जाननेवाले
रुद्ध हैं। हाल
सामने आया है
लिए यह शर्त
पद है हिन्दी टा
यह संशोधित भा
पर जूं भी नहीं रेंग
के लिए हिन्दी के से
है। इससे बढ़कर लज्जा
में किसी नौजवान के पेट प
नहीं हैं ? दिल्ली में बैठ कर
लेकिन गांधीजी के इन शिष्यों क

के जरिये करोड़ों लोगों को आगे बढ़ने से रोका जाता है। बीच में ही दिल तोड़ दिये जाते हैं। हर बड़ी नौकरी के लिए, हर बड़ी तनख्वाह के लिए, हर रुतबे के लिए, हर योग्यता के लिए अंग्रेजी पहली शर्त है। इसका नतीजा क्या होता है? इसका नतीजा सीधा-सादा है। जो सुविधासम्पन्न वर्ग है, वह बेहद खर्चीले अंग्रेजी स्कूलों में अपने बच्चों को भेजकर अंग्रेजी का तोतारटन्त, नकलची और सुविधाखोर वर्ग तैयार करता है। यह नया वर्ग हर बीस-तीस साल में पुराने वर्ग के स्थान पर आ धमकता है। वर्ग-हितों की इस धारावाहिकता की रक्षा का बहुत बड़ा श्रेय अंग्रेजी को है।

आजादी के पिछले पच्चीस वर्षों में इस निहित स्वार्थों वाले वर्ग ने संविधान के उन प्रावधानों की भी जान-बूझकर अवहेलना की है जिनके पालन से शायद भारतीय भाषाओं का अधिक प्रचलन होता। वैसे स्वयं संविधान में अंग्रेजी के लिए काफी सम्मानीय स्थान प्रदान किया गया है। मेरी राय में तो स्वाधीनता की रजत जयंति पर भारत की जनता और उसके प्रतिनिधियों को चाहिए कि संविधान के भाषा सम्बन्धी भाग को फिर से पूरा लिखने की मांग करें और नये भाषा प्रावधान में अंग्रेजी का कहीं नाम तक भी नहीं आये बल्कि हो सके तो उसमें यह प्रावधान किया जाये कि एंग्लो-इण्डियन और विदेशियों के अलावा हिन्दुस्तान में जो भी अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग करेगा उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी। सारे देश के प्रशासन को हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के द्वारा जोड़ा जाये। आवश्यक हो तो केन्द्र बहुभाषी बने। संघ लोक-सेवा आयोग की परीक्षाएं हिन्दी एवम् अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से हों। एक बार अंग्रेजी की दीवाल पूरी तरह से ढही कि उत्तर और दक्षिण की भाषाएं एकमेक हुईं। हिन्दी का अकड़ू और तमिल का सिकड़ू अपने-आप पास-पास आयेंगे। उन्हें आपस में बात तो करना ही पड़ेगी। पहले को अपनी अकड़ छोड़ना पड़ेगी और दूसरी को अपनी सिकुड़न आज उत्तर और दक्षिण अंग्रेजी की नकली जमीन पर खड़े होकर बात करते हैं। कल वे अपनी-अपनी जमीन पर खड़े होकर बात करेंगे। अधिक आत्म-विश्वास होगा। एक दूसरे के असली रूप को देख सकेंगे। बात, बात से भी आगे बढ़ेगी। गल-मिलव्वल होगी। दिल से दिल मिलेंगे। एक नया भारत बनेगा।

संविधान से अंग्रेजी के खात्मे का सबसे बड़ा परिणाम यह होगा कि एक छोटे-से छोटे आदमी का सीना भी जरा चौड़ा होगा। अपनी जुबान के जरिये वह किसी भी बड़े से बड़े पद पर पहुंचने की बात कम से कम सोच तो सकेगा। यह जरूरी नहीं है कि अंग्रेजी के हट जाने से दूध पीने वाले और खून देने वाले लोगों के बीच जो खाई है, वह पूरी तरह से पट जायेगी। वर्ग भेद की इस खाई के निर्माण के लिये अंग्रेजी के साथ-साथ कुछ दूसरे तत्त्व भी जिम्मेदार हैं। अंग्रेजी के हटने से इतना तो जरूर होगा कि इस खाई को पाटने का रास्ता खुल जायेगा। और जब एक बार रास्ता खुल जाये तो मंजिल पर पहुंचना कठिन नहीं रह जाता।

(नई दुनिया, १५ अगस्त १९७२)

अंग्रेज़ी कैसे हटायें ?

२० से २२ सितम्बर तक वाराणसी में चतुर्थ अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में देश के विभिन्न कोनों से अनेक प्रतिनिधि आये। तमिलनाडु, आन्ध्र, बंगाल, केरल, उड़ीसा तथा अन्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों से भी कुछ लोगों ने सम्मेलन में भाग लिया। भाग लेने वालों से बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ, नौजवान, पत्रकार तथा कुछ व्यवसायी भी थे। सम्मेलन की सारी बैठकें और सभाएँ उत्साही नौजवानों से पटी हुई थीं। वहां उपस्थित नौजवानों के अग्निदर्षक भाषणों को सुनकर ऐसा लगता था कि यदि कोई इशारा मिल जाये तो वे जमीन और आसमान एक कर देंगे। उनमें वह उत्साह और संकल्प दिखाई पड़ रहा था, जो जनक की सभा में लक्ष्मण के मन में जगा था। उनके चुनौती भरे चेहरे रह-रहकर नेतृत्वरूपी राम से आग्रह कर रहे थे कि यदि तुम्हारा संकेत मिल जाये तो हम लोग अंग्रेजी के शिव-धनुष को कुकुरमुत्ते के डंठल की तरह एक झटके में तोड़कर फेंक दें।

कार्यक्रम

सम्मेलन का राम वैदेही के राम से अधिक कृतसंकल्प था। उसने इशारा कर ही दिया। सम्मेलन के नेतृत्व ने क्रांतिकारी निर्णय लिये और उन्हें बेझिझक सबके सामने प्रकट कर दिये। सारी बहस और निर्णयों का सार तत्त्व यह था कि अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग को असभ्यता का चिन्ह माना जाना चाहिये और जिस प्रकार किसी भी असभ्यतापूर्ण कृत्य का हम तीखा प्रतिकार करते हैं, उसी प्रकार जहां-जहां भी अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग हो, इस आन्दोलन के स्वयंसेवक कड़ी कार्रवाई करें। इन कार्रवाइयों के अन्तर्गत अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने वाले अध्यापकों की कक्षा का बहिष्कार, अंग्रेजी नामपटों को पोतना, अंग्रेजी के प्रतीक चिन्हों जैसे अंग्रेजी अखबारों, टाइपराइटरों, टेलीप्रिन्टरों तथा उन व्यापारिक संस्थानों के सामानों की होली जलाना, जो अपनी वस्तुओं पर अंग्रेजी में विक्रय-चिन्ह लगाते हैं। सार्वजनिक सभाओं में तथा संसद और विधान सभाओं में अंग्रेजी बोलने वाले नेताओं और मंत्रियों का घेराव करना तथा उन शासकीय संस्थानों, अंग्रेजी स्कूलों, लोकसेवा आयोगों और नौकरशाहों के घरों पर धरना देना, जो अंग्रेजी में काम चलाते हैं। यह तो आन्दोलनात्मक पक्ष हुआ। सम्मेलन का एक पक्ष और भी है। उसने अध्यापकों, न्यायाधीशों, व्यापारियों, पत्रकारों और आम जनता से यह अनुरोध किया है कि वे अपने सारे कार्यों में से अंग्रेजी को तत्काल निकाल बाहर करें। सम्मेलन ने सरकार से आग्रह किया है कि

शासकीय कार्यों से वह अंग्रेजी को एकदम बहिष्कृत कर दे। सच पूछा जाये तो यह निवेदन नहीं, एक चेतावनी है। चेतावनी यह है कि यदि आप अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल फौरन बन्द नहीं करेंगे तो हमें वे कदम उठाने पड़ेंगे, जो ऊपर गिनाये गये हैं।

उपरोक्त बातों से यह साफ है कि सम्मेलन ने बजाय इस बात के कि अंग्रेजी क्यों हटाई जाये, इस बात पर बहस चलाई कि अंग्रेजी कैसे हटाई जाये और तत्काल कैसे हटाई जाये? दूसरे शब्दों में सम्मेलन में आये प्रतिनिधियों का यह सुदृढ़ मत था कि अंग्रेजी से तत्काल छुटकारा पाया जाना चाहिये। और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उन्होंने बहस करके एक कार्यक्रम स्वीकार किया।

फिलहाल, मैं भी उन तर्कों का उल्लेख नहीं करूंगा, जो अंग्रेजी को हटाने के औचित्य के समर्थन में दिये जाते हैं। उनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। प्रस्तुत लेख का प्रयोजन तो कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालना है।

सीधी कार्यवाही

जो कार्यक्रम ऊपर बताया गया उसे पढ़कर और देखकर कुछ लोग यह कहते हैं कि आप तोड़-फोड़ और हिंसा में विश्वास करते हैं। आपका रास्ता विध्वंसकारी है, रचनात्मक नहीं है। इस सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि मूल रूप से हम तोड़-फोड़ और हिंसा को एक उपयोगी और उचित तरीका नहीं मानते, लेकिन यह देखा जाता है कि कभी-कभी जगाने और सावधान करने के कामों को भ्रमवश तोड़-फोड़ की कार्यवाही समझा जाता है। जैसे पहरेदार के द्वारा रात को लाठी फटकारने की आवाज को लट्ठबाजी समझकर कुछ लोग कभी-कभी नींद से चौंक जाया करते हैं। इसी प्रकार नामपट आदि पोतना तो लोगों की मदद करना है। लोग जानते भी हैं और मानते भी हैं कि नामपट अंग्रेजी में नहीं होना चाहिये, लेकिन आलस और थोड़े-से खर्च के डर के मारे वे उन्हें बदलते नहीं। ऐसी हालत में यदि स्वयं सेवक कुछ नामपटों को पोत देते हैं, तो उसमें बुरा क्या है? और फिर कुछ नामपटों के पुतने से एक लाभ यह भी होता है कि सारे शहर के नामपट, रातोंरात बदल जाते हैं। दूसरे दूकानदारों को भी प्रेरणा मिलती है। इस अभियान में थोड़ी-बहुत टूट-फूट भी हो सकती है, नासमझी के कारण खेंचातानी भी हो सकती है। अच्छा हो कि स्वयं सेवक सावधानी से काम करें, क्योंकि हमारा उद्देश्य लोगों को कष्ट पहुंचाना नहीं, बल्कि उनकी मदद करना है। उचित तो यह है कि ऐसे अभियानों के पूर्व आन्दोलनकारी लोगों को अखबारों, पर्चों तथा भोंगा-प्रचार के द्वारा सूचना दे दें।

अपनी पूर्व-सूचना में आन्दोलनकारी एक काम और भी कर सकते हैं। वह यह कि अंग्रेजी के प्रचलित नाम-वाक्यों के दस-बीस हिन्दी नमूने बता दें। जैसे 'रामलाल

एण्ड ब्रदर्स' का 'राम बन्धु', 'रामा स्टोर्स' का 'राम भंडार' आदि। एक तरह के कई नाम होते हैं। अतः बीस-तीस नमूनों से हजारों नामपटों को बदला जा सकेगा। वरना आजकल जल्दबाजी में लोग अंग्रेजी का नाम ज्यों का त्यों देवनागरी लिपि में लिख देते हैं। अंग्रेजी को पूरी तरह हटाने के लिए कुछ दिमागी मेहनत करनी पड़ेगी। कभी-कभी आन्दोलनकारी हर उस चीज को खत्म करने की कोशिश करते हैं जिस पर अंग्रेजी में कुछ लिखा हो। यह ठीक नहीं। यदि ऐसा करेंगे तो सारी घड़ियों, रेडियो, कलमों तथा दूकानों की दूकानों को नष्ट करना पड़ेगा। यहां इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना है कि हमारा उद्देश्य लोगों को बताना है कि स्वयं जो भी कार्य करें वह अंग्रेजी में न हो। घड़ियों, रेडियो, मोटरों तथा कलमों पर लोगों की मर्जी से तो अंग्रेजी में नाम वगैरह नहीं खुदते। ये तो कारखानेदारों की गलती से होता है। अतः कारखानेदारों को ही इस काम के लिये जिम्मेदार ठहराना चाहिये। हाँ, लोग नामपट, रसीद, पावती वगैरह पर स्वयं अंग्रेजी में लिखवाते हैं। अतः इन चीजों पर सीधी कार्यवाही होना चाहिये। कारखानों पर भी सीधी कार्यवाही करना चाहिये।

वस्तु की हिंसा, हिंसा नहीं

जहां तक अंग्रेजी की मुद्रक और दूरमुद्रक मशीनों को तोड़ते तथा अंग्रेजी विक्रय-चिन्हों वाली चीजों की होली जलाने का प्रश्न है, अच्छा हो कि स्वयं सेवक स्वेच्छा से उपरोक्त प्रकार का सामान इकट्ठा करें और चौराहों पर सांकेतिक होली जलायें। सम्मेलन ने तो यह प्रस्ताव पारित किया है कि उपरोक्त प्रकार का सामान जहां भी दिखे, उसे तोड़ें और जतायें लेकिन मैंने 'सांकेतिक' शब्द के लिए विशेष अनुरोध किया है। इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि वह गम्भीर कदम उठाने से पहले हम लोगों को अपना ही सामान फूंककर आगाह तो कर दें ताकि बाद में उनको शिकायत न रहे। इसमें हमें कोई शक नहीं है कि भारत में अंग्रेजी का इस्तेमाल शोषण के हथियार के रूप में किया जा रहा है, और शोषण के विरुद्ध हर तरह से लड़ना हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। अतः अंग्रेजी को बनाये रखने और चलाये रखने के जितने साधन, जहां भी होंगे, उन्हें बेरहमी से खतम करना, हटाना बेहद जरूरी है। अंग्रेजी अखबार, अंग्रेजी मुद्रक और दूरमुद्रक मशीनें इसी प्रकार के साधन हैं। इन्हें खतम करने की हिंसा नहीं समझना चाहिये। अच्छा हो कि हम प्राणी की हिंसा और वस्तुओं की हिंसा में अन्तर करें। प्राणियों को कम से कम कष्ट पहुंचाते हुए गुलाम बनाये रखने वाली वस्तुओं का अधिक से अधिक सफाया करना हमारे आन्दोलन का केन्द्रीय कार्यक्रम है।

अपनी लगाम खुद सम्भालो

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन आन्दोलन का संगठन आम संगठनों जैसा नहीं है। यह कोई राजनैतिक दल नहीं है, आन्दोलन है। यह सत्ताभिमुख नहीं है, जनाभिमुख है। इसका काम सत्ता प्राप्त करना नहीं, जनता को जगाना है (सरकार तो जागेगी ही) इसीलिये आन्दोलन के संचालकों की इच्छा है कि स्थानीय समितियों को केन्द्रीय आदेशों

पर बहुत अधिक अवलम्बित नहीं रहना चाहिये। वे स्वतः स्फूर्ति के द्वारा आन्दोलन चलायें और एक चिन्गारी उड़कर दूसरी जगह गिरे तथा इस तरह भाषायिक स्वतंत्रता की ज्वाला सारे देश में फैल जाये।

सम्मेलन की स्थानीय समितियों को सम्पूर्ण आंदोलन के छिड़ जाने तक चुप नहीं बैठना है। उनको चाहिये कि केन्द्रीय दफ्तर से प्राप्त अंग्रेजी हटाओ साहित्य को लोगों में बांटें और उस पर सगुण और ठोस बहस चलायें। विचार की ताकत सबसे बड़ी होती है। समिति की ओर से विभिन्न कारखानेदारों, नौकरशाहों, शिक्षकों तथा अन्य लोगों को पत्र लिखे जाना चाहिये, जिनमें समझाइश और चेतावनी दोनों होना चाहिये। आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिये सभी व्यवसायों से लोगों को उसमें शामिल करना चाहिये। जनता के समक्ष यह बात स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यह आन्दोलन किसी राजनैतिक दल की स्वार्थसिद्धि का साधन नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय आत्मा के पुनर्जागरण और स्वयं को पहचानने के लिये किया गया सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रयास है। इसका मतलब यह नहीं कि यह आन्दोलन राजनैतिक दलों के सहयोग की अपेक्षा नहीं करता। यह आन्दोलन देश के सभी संगठित और असंगठित वर्गों का आह्वान करता है कि वे आयें और गुलामी के गढ़ो को ढहाने में सहयोग प्रदान करें।

बहिष्कार कीजिए

जनता को जगाने के लिये सम्मेलन की समितियां आन्दोलनात्मक काम तो करेंगी ही, लेकिन जो लोग जागे हुए हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपने काम काज में अंग्रेजी का बहिष्कार जरा पूरे मन के साथ करें। अपने पत्र-व्यवहार, दस्तखत, निमंत्रण पत्र आदि तक के मामलों में उन्हें अपनी मातृभाषाओं का प्रयोग सख्ती से करना चाहिये। जो भाई-बहन शिक्षा में क्षेत्र में हैं, उन्हें अपना अध्यापन कार्य एकदम भारतीय भाषा में शुरू कर देना चाहिये तथा अपनी भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकें लिखने और विदेशी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद करने की जिम्मेदारी भी लेना चाहिये। वकील लोग उच्च न्यायालयों में पक्षकार की भाषा में बहस शुरू करें, इससे अंग्रेजी का जादू टोना खत्म होगा और जनता को न्याय-व्यवस्था की सच्ची प्रतीति होगी। विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में भी कुछ लोगों को संकल्प करके आगे बढ़ना होगा अन्यथा आन्दोलन का पूरा लाभ नहीं मिलेगा। विश्वविद्यालय में अंग्रेजी यदि भाषा के रूप में पढ़ाई जाये और कुछ लोग उसे स्वेच्छा से ग्रहण करें तो हमें कोई आपत्ति नहीं हैं, लेकिन वह नौकरी और रुतबे के हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं की जानी चाहिये। जब विदेशी भाषाओं में से केवल अंग्रेजी को पढ़ाया जाता है तो उसके पीछे नौकरी और रुतबे हड़पने की गुपचुप साजिश रहती है. बाहरी ज्ञान से स्पर्श करने की इच्छा नहीं के बराबर होती है। अच्छा हो कि विश्वविद्यालयों में एशिया और अफ्रीका की भाषाएं भी अच्छे ढंग से पढ़ाई जाएं। इस बात के लिये स्वयं विश्वविद्यालय के अधिकारियों को सोचना चाहिये, अन्यथा छात्र लोग आन्दोलन चलाने के लिये तो स्वतंत्र हैं ही। सम्मेलन ने प्रादेशिक सरकारों से जोर देकर अनुरोध किया है कि वे

अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशन में राष्ट्रीय धन को ज़र्बाद न करके प्रान्तीय भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य का निर्माण करवायें। व्यापारी यदि अपने देश में अपने माल की खपत बढ़ाना चाहते हैं तो उन्हें अपनी वस्तुओं पर विक्रय-चिन्हों में प्रादेशिक भाषाओं का इस्तेमाल करना चाहिये तथा विदेशों में खपत बढ़ाने के लिये उन्हीं देशों की भाषाओं में विक्रय-चिन्ह बनाना चाहिये न कि अंग्रेजी में। खरीददार अंग्रेजी चिन्ह वाले मालों का बहिष्कार कर सकते हैं तथा उन चीजों को खरीदें जो दूसरे संस्थानों द्वारा भारतीय भाषा में अंकित करके बेचे जाते हैं तथा बाजार में सुलभ हैं। यह बात सबको ध्यान में रखना चाहिये कि हमारे देश में अंग्रेजी सर्वग्रासिनी पूतना के रूप में आई है। इसने शिक्षा, व्यापार, राजनीति, पलटन, अर्थनीति, विदेशनीति सभी को कुंठित किया है और देश की जनसंख्या को दो भागों में विभाजित करके २ प्रतिशत जनों के अभिजात् वर्ग के हितों का पोषण किया है। अब इससे मुक्ति पाना है और इसके लिये हमें आज और अभी कमर कसना है।

(नई दुनिया, ८ अक्तूबर १९६७)

———

*भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा प्रणाली चला कर ब्रिटेन ने भारत का सब से बड़ा नुक्सान किया है। उसने भव्य लोगों की आत्माओं में हीनता की भावना भर उन्हें नकलची बना दिया है।

डब्ल्यू० बी० यीट्स

*जब तक भारतीय संसद के वाद-विवाद अंग्रेजी में चलते रहेंगे, देश की राजनीति का जनता से कोई सरोकार नहीं होगा और वह एक छोटे से वर्ग की बपौती बन कर रह जायेगी।

गून्नार मीर्डल

*जहाँ तक जरियाये तालीम का ताल्लुक है अंग्रेजी को मुल्क से यकसर खत्म कर देना चाहिए और इब्तदाई तालीम से लेकर आला तालीम तक सब मुल्की जुबानों में दीं जानी चाहिए।

मौ० मुहम्मद रहमानी मुफ्ती पंजाब

*जब तक अंग्रेजी का हमारी जिन्दगी पर दबदबा बना हुआ है तब तक न तो हमारी राजनीतिक जिन्दगी ठीक से चल पायेगी, न ही लोकतन्त्र की असली ताकतों का अभ्युदय होगा।

जार्ज फर्नांडिस

———

अखिल भारतीय

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

(केन्द्रीय कार्यालय —बी २/६१ सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली —१६)

अंग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा ने करोड़ों बच्चों को दिमागी तौर पर अपाहिज बना दिया है। दो प्रतिशत अंग्रेजीदाँ लोगों ने देश की सारी सुविधाओं पर कब्जा जमा रखा है। करोड़ों गरीब, ग्रामीण, दबे-पिसे लोगों की दुनिया में अंधेरा ही अंधेरा है। उन्नति के सारे अवसरों पर यह अंग्रेजीदाँ वर्ग साँप की तरह कुंडली मारे बैठा है। हिन्दुस्तान में चल रहा अंग्रेजी का दबदबा समाजवाद और लोकतंत्र की हत्या का औजार है। अंग्रेजी ने आदमी और आदमी के बीच एक खाई बना दी है। अंग्रेजी के जरिए इस देश में एक फूहड़, निकम्मा और नकलची वर्ग तैयार हो रहा है, जो आम जनता से नफरत करता है। अंग्रेजी के जरिए इस देश के एक बहुत बड़े वर्ग को कमजोर और गरीब बनाये रखने और एक छोटे-से वर्ग को ताकतवर और अमीर बनाये रखने का ब्रिटिश षड़यंत्र आज भी बड़ी बेशर्मी के साथ चल रहा है। अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग आम जनता के विरुद्ध एक आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक षड़यंत्र है। अंग्रेजी को हटाये बिना गरीबी हटायी नहीं जा सकती।

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन इस षड्यंत्र के विरुद्ध हिन्दुस्तान के संकल्पशील युवजनों का एक जीता-जागता आन्दोलन है। यह किसी परम्परागत विचारधारा या राजनैतिक दल-विशेष का आन्दोलन नहीं है, न ही यह अंग्रेजी भाषा और साहित्य के स्वेच्छया अध्ययन-अध्यापन का विरोधी है, बल्कि यह मनुष्य मात्र को उसकी आत्माभिव्यक्ति के अधिकार को दिलाने का आन्दोलन है। इसके द्वार सबके लिए खुले हैं। जो चाहे सो आवे।

उद्देश्य :

* भारत के सार्वजनिक जीवन से अंग्रेजी के रुतबे को खत्म करना।
* न्याय, प्रशासन और शिक्षा के क्षेत्र में अनिवार्य अंग्रेजी के विरुद्ध एक जोरदार संघर्ष करना।
* अंग्रेजी के स्थान पर सभी भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठित करना।
* एक ऐसे समाज का निर्माण करना, जिसमें छोटा आदमी भी बड़े से बड़े पद पर अपनी भाषा के माध्यम से पहुंच सके।

———

सब गुरु जन को बुरा बतावैं
अपनी खिचड़ीं अलग पकावैं
भीतर तत्त्व न, बाहर तेजी
क्या सखी साजन ? नहिं अंगरेजी ।

भारतेन्दु

द्वितीय खण्ड

तर्क और निश्चय
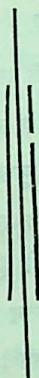
प्रतिज्ञा

मैं चाहता हूं कि अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल फौरन बन्द हो। शिक्षा के माध्यम, विधायिकाओं, सरकारी दफ्तरों, अदालतों, दैनिक समाचार पत्रों और नामपटों में अंग्रेजी का इस्तेमाल नहीं होना चाहिए और अंग्रेजी की लाजमी पढ़ाई बन्द होनी चाहिए। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अंग्रेजी हटाने के लिए बराबर प्रयत्न करूंगा।

समिति का प्रत्येक सदस्य

विवरण

राष्ट्रभाषा कैसे उन्नत हो ?

दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने "वाहगुरु का खालसा वाहगुरु की फतह" का नारा हिन्दी में लगाकर जिस हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाने का प्रयत्न किया था तथा महर्षि दयानन्द ने आर्य भाषा का नाम देकर जिस हिन्दी को सभी भारतीयों के लिए पढ़ना अनिवार्य बताया था आज उसे उठाने की, उन्नति की ओर ले जाने की योजना पर इस ढंग से विचार करना बड़ा बेतुका लगता है। यह न केवल हमारे लिए लज्जा की बात है अपितु इन महापुरुषों के समस्त अनुयायियों के लिए डूब मरने का विषय है। पर क्या करें, गंगा ही कुछ उल्टी बह निकली है। रक्षक भक्षक बन गए हैं। बाड़ खेत को खाने लग गई है। आज इन्हीं महापुरुषों के अनुयायी क्षेत्रीयता और अन्तर-राष्ट्रीयता के शिकार होकर हिन्दी के सबसे बड़े विरोधी बन गए हैं। एक वर्ग को पंजाबी की चिन्ता है और दूसरे को अंग्रेजी की। हिन्दी की उन्नति से किसी को कोई मतलब नहीं। यदि थोड़ा बहुत मतलब है भी तो वह केवल विरोध में सिमिट कर रह गया है। एक वर्ग हिन्दी को अपनाने का विरोध इसलिए करता है कि उसे हिन्दी की उन्नति से पंजाबी के पिछड़ जाने का भय है तथा दूसरा वर्ग हिन्दी को अविकसित बता कर उसे अभी से अपना लेने में देश के पिछड़ जाने की आशंका करता है। 'आधुनिक ज्ञान के लिए भाषा को आधुनिक होना चाहिए और हिन्दी अभी आधुनिक नहीं बन पाई' ऐसी मान्यता हमारे इन दूसरे साथियों की है।

निस्संदेह हम भी मानते हैं कि हिन्दी आधुनिक नहीं है। आधुनिक ज्ञान इस भाषा में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है। न भाषा का रथ ऐसे ज्ञान के लायक बन पाया है। हमारा मतलब सम्भावनाओं से नहीं, केवल सामयिक यथार्थ से है। वैसे हिन्दी में न जाने कितना पानी आकर मिला है। एक अर्थ में यह सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इसका शब्द भण्डार संसार की किसी भी भाषा से ज्यादा है लेकिन ये शब्द आधुनिक ज्ञान के लिए अभी मंजे नहीं। मांजने का कार्य निस्संदेह होना चाहिए। इस के शब्द कोश रचे जाएं, अनुवाद किए जाएं और किताबें लिखी जाएं। यह सब काम होता रहे लेकिन अपने आप में यह काम अधूरा है। इस काम को चाहे जितना करें इससे सफलता नहीं मिल सकती। शब्दों के मांजने का एक आवश्यक तथा अनिवार्य तरीका दूसरा है।

जिस तरह बच्चा पानी में डुबकी लगाए बिना, छपछपाए बिना, डूबें उठे बिना तैरना नहीं सीख सकता उसी तरह समृद्ध होते हुए भी इस्तेमाल बिना भाषा समृद्ध नहीं हो सकती। इस्तेमाल सब जगह हो और फौरन। विज्ञानशाला में, अदालत में, अध्ययन और अध्यापन में, सभी जगह। हो सकता है शुरू में यह बेढंगा लगे, अटपटा हो, और गलतियां हो जाएं, यद्यपि मौजूदा अंग्रेजी की गलतियों से हिन्दी की ये गलतियां फिर भी कम हानिकारक होंगी। खैर ये सवाल दूसरा है। जहां तक भाषा को संवारने और सुधारने का सवाल है यह काम जितना भाषा-शास्त्री या शब्द-कोष निर्माता करते हैं उस से ज्यादा वकील, जज, राजपुरुष, अध्यापक, वक्ता, वैज्ञानिक आदि किया करते हैं अपने इस्तेमाल द्वारा, इनके इस्तेमाल से भाषा सुधरती है न कि सुधर जाने के बाद ये लोग इसका इस्तेमाल करने बैठते हैं।

पर कुतर्क अब तक चल रहा है। पहले प्रचार हो लेने दो। पहले समृद्ध हो लेने दो। फिर कचहरी, कूटनीति, विज्ञानशाला इत्यादि में इस्तेमाल होगा। लेकिन मुसीबत यह है कि इन जगहों पर इस्तेमाल बिना भाषा न तो फैल सकती है न समृद्ध हो सकती है। खाली सवाल टल जाता है। कुछ की रोटी, कुछ का ऐश सुरक्षित हो जाते हैं। ऐसे लोगों को बिना हिचक हिन्दी का व्यापारी कहना चाहिए। इनका इरादा जो भी हो, इन के काम का परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी अनन्त काल तक के लिए बची रहती है, हिन्दी अनन्त काल तक न फैल पाती है न सुधर पाती है किन्तु विभिन्न महकमों और विभागों में लगे रहने के कारण ये महाशय अपना व्यापार चलाते रहते हैं।

हिन्दी को उठाने से मतलब हमारा यह है कि हिन्दी ऐसी हो कि उसमें सब तरह की बुद्धियां खिलें। भाषा सटीक हो, रंगीन हो। अलग-अलग मतलब को बता सके। यानी पारिभाषिक हो और ठेठ, ज़ोरदार तथा रोचक। सम्पन्न भाषा के और कोई मतलब नहीं होते। किस भाषा में कितने विषय की कितनी किताबें हैं यह एक गौण अथवा संदर्भ का सवाल है। अगर हिन्दी सब विषयों के लिए सटीक और रंगीन बन जाए तो लाख, पच्चास हज़ार किताबों के लिखने या उल्था करने में क्या देर लगती है। जब लोग अंग्रेजी हटाने के संदर्भ में हिन्दी किताबों की कमी की चर्चा करते हैं तब हँसी और गुस्सा दोनों आते हैं क्योंकि यह मूर्खता है या बदमाशी। अगर कालेज के अध्यापकों के लिए गर्मियों की छुट्टियों में एक-एक उल्था करना अनिवार्य कर दिया जाए तो मनचाही किताबें तीन महीने के अन्दर तैयार हो जाएं। रोना केवल सटीकता और रंगीनी और सुनिश्चित अर्थ का रहेगा। पर यह रोना कभी भी परिभाषिक शब्दों या शब्द कोषों के पढ़ने से दूर नहीं हो सकता। इसे दूर करने का एकमात्र उपाय है कि भाषा रूपी रथ को सब सामान ढोने के लिए फौरन इस्तेमाल करना शुरू कर दिया जाए और सब तरह की बुद्धियां सब क्षेत्रों में खिलें।

हिन्दी के कुछ तथाकथित, हित चिन्तकों ने हिन्दी के रूप पर असामयिक और

लम्बी बहस छेड़ रखी है। कोई चाहता है संस्कृत निष्ठ तो कोई अरबी निष्ठ, कोई चालू और कोई गड़बड़ झाले वाली तट देशी प्रयोगों से लदी। हिन्दी की प्रतिभा यही है कि उसके इतने रूप हैं कोई न कोई रूप अपने आप सर्वमान्य हो जाता है। राज्य की अनुकम्पा से सही रूप के प्रचलन में कभी मदद और कभी रुकावट हो जाती है इसीलिए रूप के प्रश्न पर इतनी शक्ति और समय लगाना कि संकल्प का प्रश्न गौण पड़ जाए मूर्खता है। इसलिए सब रूप आपस में होड़ करें और चाहे जो जीत जाए इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। आपत्ति तब होती है जब किसी एक रूप की विजय के बाद ही स्वयंवर रचने की बात कही जाती। स्वयंवर हो चुका है और रानी का चुनाव भी हो चुका है। अब रूप चाहे बदलता ही रहे हमें इससे क्या मतलब ? और सुबह शाम भी बदले तो क्या हर्ज है ?

कुछ लोगों ने 'अंग्रेजी हटाओ' को 'अंग्रेजियत हटाओ' के अर्थ में पकड़ लिया है। वे गलती पर हैं। भाषा रथ है। रथ का काम है सब को ढोए। बिना भेदभाव ढोए। बढ़िया रथ वही है जो सबकी समान रूप से सेवा करें, चाहे पवित्र जीवन चाहे छिनाली। भाषा सबके काम पूरी तरह आनी चाहिए। भाषा रूपी रथ को दोनों अथवा और भी वृत्तियों को समान रूप से वहन करना चाहिए। हिन्दी में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि यह पवित्रता और छिनाली दोनों के बराबर काम आ सके।

आज अंग्रेजी के प्रच्छन्न समर्थकों ने हिन्दी बनाम अंग्रेजी के सवाल को हिन्दी बनाम प्रादेशिक भाषा के रूप में उलट दिया है। हिन्दी का प्रादेशिक भाषाओं से कोई विरोध नहीं। वे सभी उस की बहनें हैं कुछ छोटी, कुछ बड़ी, कुछ सलोनी, कुछ नटखट, उसे सभी से प्यार है। उनकी सम्पन्नता को वह अपनी सम्पन्नता समझती है। हमें इस तथ्य को घर घर पहुंचाना चाहिए ताकि सवाल हिन्दी बनाम प्रादेशिक भाषा न रह कर अंग्रेजी बनाम लोक भाषा हो जाए और असली लड़ाई शुरू हो।

अन्त में यह बात पुनः दोहरानी उचित होगी कि शब्दों या शब्द कोषों के निर्माण से हिन्दी नहीं उठेगी। डुबडुबाने और छपछपाने पर ही तैरना आता है। प्रयोग के बाद ही भाषा समृद्ध होती है। विश्वविद्यालयों, न्यायालयों, विज्ञान, मशीन शालाओं, धन्धों, रण केन्द्रों में जब हिन्दी डुबडुबाएगी, छपछपाएगी तभी समृद्ध बनेगी, तभी उठेगी इसके पहले हरगिज नहीं।

अतः आप यदि सच्चे दिल से हिन्दी को ऊंचा उठाना चाहते हैं तो उसके व्यवहार में हीनता नहीं गर्व अनुभव कीजिए। अपने हस्ताक्षरों में, पत्रों के पतों में तार और निमन्त्रण पत्रों में, बधाई पत्रों तथा कुशल पत्रों आदि में लोक भाषा को अपनाइए। कार आदि के नम्बरों में, व्यापारिक ठप्पों में अंग्रेजी का प्रयोग न कीजिए तथा दूसरे बोर्ड अंग्रेजी में न लगाइए। हिन्दी तथा दूसरी भारतीय भाषाओं को व्यवहार में लाने वाले दुकानदारों को प्रोत्साहन दीजिए। अंग्रेजी बोर्डों वाली दुकानों का बहिष्कार कीजिए।

————

क्या भाषा आन्दोलन पेट की लड़ाई को कमज़ोर करता है ?

भाषा समस्या की विभीषिका ने सरकार को इतना संत्रस्त कर डाला है कि वह इसकी अहमियत ही नकारने लगी है। समाधान खोजने के स्थान पर इससे जनता का ध्यान हटा रही है। इसे रोटी की समस्या के सुलझाव में वाधक बता रही है। "इस समस्या से हमारा वह मोर्चा जहां से हम भरपेट रोटी पाने के लिए, गरीबी हटाने के लिए और बेरोज़गारी मिटाने के लिए लड़ाइयां लड़ रहे हैं कमज़ोर होता है।" ऐसा प्रचार सरकार की ओर से लगातार हो रहा है। "यद्यपि गरीबी, बेरोज़गारी के खात्मे और भरपेट रोटी दिलाने के लिए सरकार सही माने में जद्दोजहद कर भी रही है या नहीं" यह भी एक सवाल है, परन्तु इस समय इस पर कुछ न कह कर दिमाग और पेट का, भाषा और रोटी का रिश्ता दिखाना और इस समस्या के महत्त्व को बताना ही हमारा लक्ष्य है।

आज दिमाग की समस्या एक बड़ी सीमा तक पेट के सवाल से कटी दीख रही है और इसलिए शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए या भाषा की समस्या पर सरकार का ध्यान खींचने के लिए जनसमाज या छात्र वर्ग की ओर से जब भी कोई छोटा मोटा प्रयत्न किया जाता है तो न केवल सरकार अपितु कई विरोधी दल भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर चिल्लाने लगते हैं कि यह क्या झूठ-मूठ का सवाल खड़ा किया है ? पहले पेट का सवाल हल करो।

असल में पेट और दिमाग का यह विभाजन ही गलत है। आज राजनीतिक दलों के गलत रवैये के कारण पेट और दिमाग में दीवार बन गई है, परन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों सवाल एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

मज़दूर चाहे वे सरकारी या गैरसरकारी किसी भी कम्पनी या फैकटरी में काम करते हैं प्राय: अपनी यूनियनें बनाते हैं। इन यूनियनों का पत्र व्यवहार प्राय: अंग्रेज़ी में होता है। कितने मज़दूर जानते हैं उनमें से अंग्रेज़ी ? मज़दूरों की तरफ से उनके पेट के सवाल ऐसी भाषा में लिखे जाते हैं जिसे वे खुद नहीं समझते। फलस्वरूप मज़दूरों के अन्दर से नेता नहीं निकल पाते। जड़ ही कट गई है। ज़मींन ही नहीं, जिस पर खड़े हो कर खुद नेता बनें।

सरकार का सारा काम, सोचने का तरीका अगर कम लोगों की भाषा में चलता है तो उन थोड़े लोगों का हित ही उनके सामने रहता है। आज सरकार का मुख किधर है ? पचास करोड़ में पचास लाख की भाषा अंग्रेजी है। सरकार का मुख पचास लाख की ओर है। बाकी जनता की ओर पीठ है। सरकार पचास करोड़ के सवालों की बिल्कुल अवहेलना करती है। उसके लिए पचास लाख के सवाल ही सार्वजनिक सवाल बन गए हैं।

चावल या गेहूं के दामों का सवाल, किसानों को सस्ते बीज, खाद और पानी की व्यवस्था के सवाल तब तक हल नहीं हों सकते जब तक अंग्रेज़ी रहेगी। सरकार देख रही है पचास लाख की ओर। करोड़ों के सवाल उसके सामने आते ही नहीं। जिन नदियों में करोड़ों आदमी नहाते हैं और लाखों आदमी जिनका पानी पीते हैं उन का पानी शहरों की नालियां डालकर गन्दा किया जाता है। महिलाओं के लिए विशेष-कर गांव की महिलाओं के लिए शौचालयों की कोई व्यवस्था नहीं है। इन सवालों को कोई नहीं उठाता। सरकार के लिए भी ये छोटे और मामूली सवाल हैं। अंग्रेज़ी पढ़े लिखे पचास लाख लोगों के नुमांइदे भारत की गद्दी पर कब्जा जमाए बैठे हैं। उनके लिए अंग्रेज़ी भाषा डूबते हुए के लिए तिनके के सहारे के समान है। वे जानते हैं कि अंग्रेज़ी हटाने से सरकार को, कानून को, मज़दूर संगठनों और सार्वजनिक संस्थाओं को, नेताओं को, सभी को पचास करोड़ की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। वह महान् क्रान्ति होगी। सामन्त शाही का सारा ढांचा ढीला हो जाएगा।

फौज की मिसाल लीजिए। फौज में कर्नल के ऊपर के सभी अफसरों की नौकरी के लिए क्या कसौटी है ? कसौटी लड़ाई का हुनर नहीं. अंग्रेज़ी में नोट लिखना, मैस के अन्दर अंग्रेज़ी में बोलना, छुरी कांटे से खाना कसौटी है। अफसरों की कसौटी वीरता नहीं, युद्ध कला का ज्ञान भी नहीं, अंग्रेज़ी की छिछली जानकारी है। मामूली लोग हवालदार बनते हैं हवालदार के बाद दरवाज़ा बन्द है। इससे आगे नहीं जा सकते। अगर आज की परिपाटी खतम हो जाए तो ऐसे लोग कर्नल होंगे जिन को युद्ध कला में दक्षता प्राप्त है। ऐसे ही जीवन के प्रत्येक अंग में देखो, क्या जबरदस्त नतीजे निकलेंगे। एक दम परिवर्तन आ जाएगा।

अब आप पेट वाली चीज़ को लें। हिन्दुस्तान का अब तक का जीवन किन लोगों का है ? अधिकतर हिन्दुस्तानी दातून या कोयले से ही दांत साफ करते हैं। यहां टुथ पेस्ट, मोटर, पाउडर और क्रीम कौन खरीदते हैं। अखबारों में इन चीज़ों के ही विज्ञापन रहते हैं। आज के हिन्दुस्तान में आधुनिक वस्तुओं की खपत इन्हीं पचास लाख लोगों में सीमित है। देहात से आकर शहर में काम करने वाले लोग भी इन से जुड़े हैं। कुल मिला कर लगभग डेढ़ करोड़ समझ लो। अब आप ही उत्तर दीजिए कि देश का जीवन किस के लिए बन गया है ? आज देश का जीवन पैदावार और खपत के मामलों में इन्हीं पचास लाख के सीमित समुदाय पर आधारित हैं। इन्ही के हित और

अनहित के सवाल सार्वजनिक सवाल बन कर आते हैं। सरकार इन्हीं सवालों में उलझी रहती है और बाकी लोगों की उपेक्षा करती है। "जनता कार" आखिर और किस जनता के लिए हैं?

आज देश का सारा सामाजिक ढाँचा ही नकली हो गया है। धनी-गरीब का भेद, शिक्षित-अशिक्षित का भेद, ऊँची-नीची जाति का भेद। ऊँची जाति में आठ करोड़ लोग हैं। ऊपर के भेदों में विभाजित होती हुई यह ऊँची जाति अंग्रेजी पढ़े और वे पढ़े तक घटते-घटते चार या पाँच लाख रह जाती है। आज देश की और प्रदेशों की गद्दी पर ये चार पांच लाख लोग कब्ज़ा जमाए बैठे हैं और भारत की शेष जनता की छाती पेर मूंग दल रहे हैं। आज यदि दिमाग के सवाल को पेट के सवाल से अलग न किया जाए तो देश में एक जबरदस्त मन्थन होगा। तब ऊँची जाति वाले भी बच जाएंगे। एक होगा धोती और कुर्त्ते वाला ब्राह्मण और दूसरा चूड़ीदार पायजामा या पतलून वाला। धोती वाला ब्राह्मण कलकत्ते और दूसरे शहरों में ट्राम मजदूर, कण्डकटर, दरबान और जमादार का काम करता है या गांव में भीख मांगता है। पतलून और चूड़ीदार पायजामा वाला ब्राह्मण लखनऊ और दिल्ली की गद्दी पर है। जब यह भेद साफ होगा तब जबरदस्त हलचल मचेगी। आज धोती वाला ब्राह्मण चूड़ीदार पायजामे वाले और पतलून वाले ब्राह्मण से अपना रिश्ता मानता है अहीर जाट, कुर्मी या दूसरी मेहनत कश जाति वाले से नहीं। लेकिन तब चूड़ीदार पतलून वाले से अपना झूठा रिश्ता छोड़कर धोती वाला ब्राह्मण देश की गरीब जनता से अपना सीधा रिश्ता जोड़ लेगा, तब साफ होगा कि देश में केवल दो जातियां हैं। एक सामन्ती ऊंची जाति और दूसरी दरिद्र ऊँची जाति। देश का कल्याण इस मन्थन से होगा। इस मन्थन के लिए यह जरूरी है कि हम पेट के सवाल के साथ-साथ दिमाग का सवाल भी उठावें। दिमाग के सवाल को दूर रखकर हम पेट की समस्या हल नहीं कर सकते।

वास्तव में रोटी की और भाषा की समस्याएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं अंग्रेजी हटाने का आन्दोलन जितना मस्तिष्क की स्वतन्त्रता का आन्दोलन है उतना ही पेट के स्वावलम्बन का भी। इस आन्दोलन का प्रचार जीवट के साथ कीजिए। यह पत्रक मित्रों को पढ़ाइए। छपवा कर बंटवाइए। वाद-विवाद कीजिए। नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार हैदराबाद (आन्ध्र) से प्रकाशित 'भाषा' नामक ग्रन्थ जो इस आन्दोलन का आधार-ग्रन्थ हैं आपका पूरा पथ प्रदर्शन करेगा। अपने नगर तथा कालेज के पुस्तकालय में उसकी प्रतियां मंगवा कर साथियों को पढ़ने की प्रेरणा दीजिए। जिन लोगों का दिमाग इतना सड़ गया है कि वे अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा के माध्यम से किसी विचार को ग्रहण करने में शर्माते हैं या पचा नहीं पाते उन्हें वहीं से प्रकाशित इस ग्रन्थ के अंग्रेजी संस्करण "लैंग्वेज' को पढ़ाइए।

———

हिन्दुस्तानी बच्चे को गदहे के बोझ से मुक्ति दिलाओ

"किसी भी भाषा की अनिवार्य पढ़ाई का विरोध क्यों करते हो ? भाषाएं जितनी भी सीख ली जाएं उतना ही अच्छा" ऐसा कहना आज एक फैशन बन गया है और इस फैशन के शौकीन अधिकांश वे बूढ़े मिलेंगे जिन्होंने दो दर्जे तक उर्दू पढ़ी है। आर्य-समाज के मन्त्री बन जाने पर भी जिन्होंने हिन्दी नहीं सीखी; खालसा-दल के सक्रिय सदस्य होते हुए भी जो पंजाबी न सीख पाए तथा केवल अंग्रेजी से ही देश का उद्धार मानते हुए भी जो ए. बी. सी. तक न सीख सके।

नेहरू जी ने जब आसाम का दौरा किया था तो उनसे कुछ विद्यार्थी मिले थे और उन्होंने अपनी राम कहानी सुनाई थी कि हम तो भाषाओं के बोझ के मारे मरे जाते हैं। आसाम के वासी होने से आसामी तो हम पढ़ते ही हैं; बंगाल द्वारा इस क्षेत्र के प्रभावित होने के कारण हमारे लिए बंगला पढ़ना भी लाज़मी किया हुआ हैं; मुसलमान होने के कारण उर्दू भी हमारे गले से चिपटी हुई है और हिन्दुस्तानी होने से हिन्दी पढ़ने को भी मजबूर हैं और फिर इन सबसे ऊपर सवार है अंग्रेजी। अब बताइए हम किस किस को याद करें। इस पर कम्बख्ती यह कि इन पांचों भाषाओं की लिपियां भी अलग अलग हैं। अतः हमें बचाइए। नेहरू जी ने वहां तो उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया परन्तु देहली आकर अपने एक भाषण में अपनी बे-अख्त्यारी जाहिर कर दी थी।

हिन्दुस्तान के विद्यार्थी की समस्या को सुलझाने की कोशिश कोई भी नहीं करता। सभी बे-अख्त्यारी जाहिर कर देते हैं। अपनी विवशता प्रकट कर देते हैं। पर अब विवशता भी प्रकट करने की ज़रूरत नहीं। बहाना मिल गया है कि किसी भाषा का विरोध बुरी बात है। भाषाएं जितनी भी ज्यादा सीख ली जाएं उतना ही अच्छा।

हिन्दुस्तान में बचपन से बुढ़ापे तक भाषा-ज्ञान यानी हिन्दी, बंगाली, संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि सीखने का जो भारी बोझ डाला जाता है उसकी वजह से भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, रसायन, भौतिकी, भूगर्भ आदि विद्याओं का ज्ञान हो ही नहीं पाता। विशेष पद-प्राप्त विदेशी भाषा अंग्रेजी को ही सीखने में विद्यार्थी सारी उमर गुज़ार देता है। भाषा पर अधिकार प्राप्त करने का उसे इतना ध्यान रहता है कि विषय-ज्ञान की गहराइयों तक वह पहुँच ही नहीं पाता। इसीलिए आज भारत में विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, राजनीतिज्ञ, इतिहास, भूगोल आदि अंग्रेजी की सस्ती

नकल के रूप में विद्यमान हैं, उनका कोई मौलिक गठन नहीं। भारतीय आवश्यकताओं और समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा नहीं और न विश्व के दूसरे मुल्कों के वैज्ञानिकों तथा अर्थशास्त्रियों की कोटि के विद्वान् ही यहां पैदा होते हैं। भारतीय विद्यार्थी समाज अंग्रेजी भाषा के जंजाल में जकड़ लिया गया है।

इस सम्बन्ध में कुछ विचित्र तर्क भी सुनने को मिलते हैं। एक तर्क यह है कि बंगला, हिन्दी, पंजाबी, तमिल आदि सब देशी भाषाएं कच्ची हैं। इन से दुनिया का ज्ञान नहीं मिलता। इसलिए हम को एक पकी हुई यूरोपीय भाषा चाहिए। यह तर्क झूठा है। फ्रेंच की तुलना में हिन्दुस्तान की भाषाओं का भण्डार चार पांच गुना अधिक है। अंग्रेज़ी से हिन्दी या बंगला का शब्द-भण्डार दुगना है। संस्कृत के समास के आधार पर इन भाषाओं में शब्द गढ़ने की अपार क्षमता है। हां एक फर्क है। पिछले डेढ़ सौ वर्ष में यूरोप की भाषाओं के शब्दों के अर्थ स्थिर हो गए हैं, मगर हमारी भाषा के शब्द बंध नहीं पाए, वे बदलते रहते हैं, उनको स्थिर करना है निरन्तर इस्तेमाल से ही अर्थ स्थिर होता है। यह उल्टा तर्क है कि देशी भाषाओं से ज्ञान असम्भव है। अगर रूस के वैज्ञानिकों को अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ती तो स्पुतनिक का आविष्कार न हो पाता। रूसी भाषा तो तीस या चालीस साल पहले हिन्दी या बंगला जैसी थी, शायद कुछ मामलों में और भी ज्यादा गई गुजरी। एक हज़ार वर्ष पुरानी रूसी है, परन्तु हिन्दी, बंगला, मराठी आदि अपनी मां संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि के जरिए पांच या छह हज़ार वर्ष पुरानी हैं। लोक सरकार चाहे वह फासिस्ट या कम्युनिस्ट ही क्यों न हों, लोकभाषा में काम करती है। रूस की सरकार भी हालांकि वह लोकहित राक्षसी ढंग से चाहती है अपनी देशी भाषा का ही प्रयोग करती है। रूस में एक हज़ार में एक वैज्ञानिक अंग्रेज़ी जानता है। जर्मन के वैज्ञानिक अंग्रेज़ी नहीं जानते। किसी नई खोज का अनुवाद उनकी भाषा में छप जाता है।

एक तर्क और चलता है—"चश्मा अंग्रेज़ी बाल काटना अंग्रेज़ी, फिर कैसे और क्यों अंग्रेज़ी छोड़ें ?" हम पूछते हैं कि चश्मा अंग्रेज़ी है क्या ? सभी गोरी जातियों को अंग्रेज़ी नाम क्यों देते हो ? यह हिन्दुस्तानियों की सबसे बड़ी भूल है। दुनियां को आधुनिक वस्तुएं और पद्धतियां केवल अंग्रेज़ों की देन नहीं है। पैट्रोल हवाई जहाज़ अमरीका का है। बिजली अंग्रेज़ों की हैं। रेडियो और चश्मा जर्मनी का है। हिन्दुस्तान में भ्रम फैला है कि सबके आविष्कारक अंग्रेज हैं। फिर सबकी भाषा सीखो, केवल अंग्रेज़ी ही क्यों ? यूरोपीय बाल काटना, विशेषकर औरतों का, वास्तव में अजन्ता और एलोरा पद्धति की नकल है।

आप बुनियादी सवाल को पकड़िए। व्यापार और लेन-देन कैसे चलता है ? इस के तीन विभाग हैं वस्तु, विचार और नामकरण। बारूद एक वस्तु है जिससे पटाखा, गोली वगैरह बनती है। चीन ने सब से पहले बारूद बनाई। पर बहुत से लोग इसे अंग्रेज़ी समझते हैं और गनपाऊडर कहते हैं। अनपढ़ एम० ए० ईसाई समझते हैं कि

अंग्रेज़ी उनकी धार्मिक भाषा है। ईसामसीह की भाषा अंग्रेज़ी नहीं थी। ईसा ने अरमैक भाषा में धर्म-प्रचार किया था। वह भाषा मर गई, पर वह हिन्दुस्तान के अधिक नज़दीक थी। अरमैक लिपि का प्रभाव ब्राह्मी के द्वारा हिन्दी और बंगला आदि पर है। ईसाई धर्म का अंग्रेज़ी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अब विचार को लीजिए जैसे साम्यवाद, गांधीवाद आदि। विचार का लेन-देन वेहिचक होना चाहिए। फिर नामकरण लीजिए। मोटर में हमने दोनों को लिया, वस्तु भी और नाम भी। भाषा असल में नाम का संग्रह है। चीज़ों की संज्ञाओं और नामों का समूह है। चीज़ और विचार हम कहीं से भी ले सकते हैं, पर नामकरण तो पहले हम अपनी भाषा में करेंगे। यदि आवश्यकतानुसार विदेशी नामकरण लेना भी पड़े तब भी अपने संस्कार के अनुसार उसे तोड़-मोड़ कर लेना होगा। भाषा ऐसी बनानी है। जो जानदार और ज़ोरदार हो। आज बहुत से लोग जानते हैं कि लालटेन हिन्दी है, पर यह शब्द अंग्रेज़ी से आया है। नामकरण में सावधान रहना चाहिए। हम दूसरों से नाम क्यों लें? जब हमारे पास शब्द-भण्डार है। अगर हम नाम लेते हैं तो अपना नाम एडवर्ड और जॉन क्यों नहीं रखते? शान्ति और सीता क्यों रखते हैं?

यदि ज्ञान हासिल करना है तो भाषा-ज्ञान की जगह विषय-ज्ञान में दिमाग लगाओ। पांच वर्ष की उमर से ही भारतीय बच्चा पागल बना दिया जाता है। अन्त तक उसकी यही हालत रहती है। उस के दिमाग पर भाषा-ज्ञान का भारी बोझ डाल दिया जाता है। विषय-ज्ञान उसको नहीं मिल पाता। यही दुर्दशा हिन्दुस्तान के विश्व-विद्यालयों के विद्वानों की है। वे गदहा बन गए हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि रूस और जापान के वैज्ञानिक भाषा ज्ञान के बोझ के बिना विषय-ज्ञान के बल पर आविष्कार कर पाते हैं और हम सारी उमर भाषाएं पढ़ने में गुज़ार देते हैं। भाषा-ज्ञान और विषय ज्ञान का अन्तर समझना पड़ेगा। अगर हिन्दुस्तानी बच्चे पर से भाषा-ज्ञान का अनावश्यक बोझ हटा दिया जाए तो उसका विषय-ज्ञान गहरा और विस्तृत हो जाएगा, यह एक निर्बिवाद सत्य है।

हिन्दुस्तानी बच्चे को गदहे के बोझ से मुक्ति दिलाओ। सब स्कूलों और कालिजों में ज़बरदस्त आन्दोलन चलना चाहिए। आज अंग्रेज़ी ज़बरदस्ती पढ़ाई जाती है। सबसे ज्यादा बच्चे अंग्रेज़ी में फेल होते हैं। देश का रुपया और समय दोनों नष्ट किए जा रहे हैं। "जो दिमाग किसी विदेशी भाषा को न सीखे वह विषय-ज्ञान भी नहीं सीख सकता" यह गलत तर्क है। विदेशी भाषा की अनिवार्य पढ़ाई के खिलाफ एक आन्दोलन खड़ा करके कहना है कि अब हमारे दिमाग की छुट्टी दो। हमें सबल राष्ट्र बनाना है। विषय-ज्ञान हासिल करना है और भाषा ज्ञान के बोझ छुटकारा पाना है।

————

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की कुछ बातें

(डा० राम मनोहर लोहिया द्वारा

१९६२, अक्तूबर १४, हैदराबाद, अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन में दिया गया भाषण)

इस अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की कुछ मोटी-मोटी बातें मैं आपके सामने रखूंगा। एक तो यह कि अंग्रेजी हटाओ वाले हिन्दी हठी नहीं है। साधारण तौर पर देश में अंग्रेजी हटाओ वालों को यह कह करके बदनाम किया जाता है कि ये तो हिन्दी वाले हैं, हिन्दी हठी हैं। अब यह बात बिल्कुल साफ हो गई है कि हम तेलुगू हठी भी हैं, हम तमिल हठी भी हैं, हम बंगाली हठी हैं, जितना हिन्दी हठी हैं, उतना शायद उससे भी अधिक तेलुगू हठी है, तमिल हठी, बंगाली हठी हैं। और इस सम्मेलन के होने के बाद भी अगर कोई इस भ्रम को फैलाते हैं कि अंग्रेजी हटाने वाले तो हिन्दी लाने वाले हैं या अंग्रेजी हटाने का मतलब है हिन्दी को चलाना, तो मैं यही कहूंगा कि वे जानबूझ कर इस धोखेबाजी को फैला रहे हैं। अंग्रेजी हटाने का मतलब जितना हिन्दी चलाना है या हिन्दुस्तानी चलाना है उतना ही तेलुगु चलाना है, बंगाली चलाना है, तमिल चलाना है, मराठी चलाना है और दूसरी भाषाओं को चलाना है।

इसके ऊपर अब किसी तरह का भ्रम कम से कम हिन्दुस्तान की जनता में नहीं रहना चाहिये। जान बूझ करके जो भ्रम फैलाया जा रहा है, फैलाया गया है, उसका कारण यह है कि अंग्रेजी हटाने के ऊपर जब सच्ची बहस की जाये तब बहस करने वाले टिक नहीं सकते। इसलिये एक झूठी बहस छेड़ दी जाती है और तट देश के जितने लोग हैं उनको बरगला दिया जाता है, उनको धोखा दिया जाता है कि देखो, इनसे बच कर रहना और जहां एक बार तट देश के लोग विमुख हो जाते हैं, तो फिर मध्य देश के लोगों से भी जा कर कह दिया जाता है कि देखो इन लोगों से बच कर रहना, ये देश को तोड़ देंगे। आप ऐसा मत समझना कि हिन्दी इलाके के बड़े लोग, उच्च वर्ग वाले, हिन्दी चलाना चाहते हैं। उच्च-वर्गीय लोग चाहे वे हिन्दी इलाके के हों, चाहे तमिल इलाके के हों या चाहे बंगाली इलाके के हों, अंग्रेजी को रखने के पक्ष में हैं। किस लिए हैं, उस प्रश्न को अभी अभी आप थोड़ी देर के लिये नजर अंदाज कर दो। वे सबके सब चाहते हैं कि अंग्रेजी रहे और बड़ी चालाकी से उन्होंने अपनी बहस छेड़ दी है। वे जानते हैं कि हिन्दुस्तान के ये दो टुकड़े हैं, एक तो समुद्र के किनारे

वाले प्रदेश जिनको मैं तट देश कहता हूं और दूसरे वे इलाके जो मध्यदेश हैं। तट देश में ये उच्चवर्गीय पढ़े लिखे लोग जा कर कहते हैं—पढ़े लिखे का मतलब तो आप जानते ही हैं, अंग्रेजी पढ़े लिखे—कि देखो इस अंग्रेजी हटाओ से बच कर रहना, नहीं तो हिन्दी की गुलामी तुम्हारे ऊपर आ जायेगी। यह बोली मध्य देश में तो चल नहीं सकती। वहां के लोगों से जा कर कहते हैं, देखो अंग्रेजी बचा करके रखना नहीं तो बंगाली और मद्रासी नाराज हो जायेंगे, देश टूट जायेगा। यह कैंची की जैसे दो पत्तियां होती हैं। बड़े चालाक लोग हैं। कभी-कभी मुझे बड़ा अचरज होता है। अगर कहीं हिन्दुस्तान शक्तिशाली हुआ होता और हमारी कूटनीति चालाकी के ऊपर निर्भर करती तो ऐसे लोग न जाने कितने काम आते लेकिन अफसोस यह है कि पचास बरस पहले ये लोग पैदा हो गये। शक्ति है नहीं और चालाकी से काम चल रहा है। कैंची की दो पत्तियां। एक पत्ती है तट देश में हिन्दी साम्राज्यशाही की दूसरी पत्ती है मध्य देश में देश के विघटन की। और दोनों के बीच में हिन्दुस्तान की जनता का अंग-अंग, बोटी-बोटी, हड्डी-हड्डी काटी जा रही है इस कैंची के जरिये। यह बुनियादी बात आप लोगों को पकड़ लेनी है।

मुझे इस सम्मेलन की एक प्रतीकात्मक बात से बहुत खुशी है कि यहां पर वैज्ञानिक सत्येन बोस के आने से और मगनभाई देसाई को आप खाली शिक्षा-विशारद मत समझना उनके आने से कम से कम आगे यह कहा जा सकेगा तर्क के लिये, कि क्यों नाहक कहते हो कि यह हिन्दी वालों की चीज है और खैर तेलुगु तो है ही। श्री विश्वानाथ सत्यनारायण से बड़ा तेलुगु कौन होगा? वे भी हैं इसके साथ। वे नहीं आये इसका मुझे अफसोस है। कई बार ऐसा भी होता है कि उम्र वगैरह के कारण सब लोग पहुँच नहीं पाते। करनाटक के डा. पुटप्पा पूरी तरह से इस आन्दोलन के साथ हैं. शत प्रतिशत साथ हैं। यह सब लोग हैं। लेकिन इसमे यह मत समझ लेना कि बात अब बिल्कुल साफ हो गई है हमेशा के लिए। धोखा होता रहेगा। भ्रम फैलाया जायेगा। लेकिन आप लोगों के हाथ में यह औजार हो गया कि बंगाल का जो इस वक्त सबसे बड़ा आदमी है और गांधी जी के चेलों में जिसने अभी तक गांधीवाद को पूरी तरह नहीं भुलाया है उनमें जो सबसे अच्छे आदमी हैं मेरी निगाह में वे भी तो यहां आये हैं। वे कौन हिन्दी वाले हैं? मगनभाई देसाई महात्मा गांधी के 'हरिजन' अखबार का सम्पादन कर चुके हैं और मेरी निगाह में यह अधिक बड़ी पदवी है। बनिस्वत इसके कि ये किसी विश्वविद्यालय के उपकुलपति रह चुके हैं। यह अंग्रेजी हटाओ आंदोलन हिन्दी चलाओ आंदोलन नहीं है। जिस हद तक यह हिन्दी चलाना चाहता है, उसी हद तक तेलुगू, तमिल, मलयायम, बंगाली, मराठी चलाना चाहता है और जब मैं हिन्दी कहता हूं तो मेरा मतलब उर्दू से भी है हिन्दुस्तानी से भी है। हिन्दी, हिन्दुस्तानी उर्दू ये तीनों तो शैलियां हैं एक भाषा की, और मेरा विश्वास है अगले ३०-४० बरस में हो-हल्ला हो कर रह जाएगा। उस पर कोई खास बात कहने की जरूरत नहीं।

इसके साथ-साथ एक दूसरी बात भी बिल्कुल साफ हो जानी चाहिए। अंग्रेजी हटाना कहाँ से ? जाहिर है उसे इंगलिस्तान से नहीं हटाना है। मुझे माफ करना मैं हिन्दुतान, आज के हिन्दुस्तान में पढ़ा-लिखा आदमी नहीं पा रहा हूं। कहीं कोई सत्येन-बोस जैसा एकाध मिल जाया करता है जिसके बारे में कभी-कभी मन ऊँचा भी उठता है, कभी-कभी बैठने भी लग जाता है, तो ऐसे एकाध को छोड़ दो, वरना हिन्दुस्तान में पढ़ा-लिखा आदमी रह नहीं गया और यह अंग्रेजी भाषा का प्रताप है। अंग्रेजी को कहां से हटाना है, इसके बारे में भी अध-पढ़े लिखे मजाक कर दिया करते है। मैं साफ कह देना चाहता हूं कि हमारा यह मकसद नहीं है कि इंगलिस्तान से या अमरीका से अंग्रेजी को हटाया जाए। वहाँ पर यह भाषा अच्छी है, बढ़िया है, कभी कभी मुझे भी वहाँ बोलने में मजा आ जाता है। हिन्दुस्तान में भी इसे पुस्तकालयों में से नहीं हटाना है। पुस्तकालयों में अंग्रेजी भी रहे हिन्दुस्तानी के अगल बगल में, जर्मन रहे, रूसी रहे। और सिरफ यह ही क्यों रहे, चीनी रहे, अरबी रहे, फारसी रहे। इसके अलावा कालेज और विश्वविद्यालयों में एक ऐच्छिक विषय के रूप में इसकी पढ़ाई-लिखाई हो सकेगी। कहाँ अंग्रेजी रहेगी, उसका मैंने ब्योरा दे दिया। इसके अलावा और कहीं अंग्रेजी रह नहीं पायेगी। इस पर दिमाग एकदम साफ हो जाना चाहिये। लेकिन आज सरकार के मालिक बहस को ईमानदारी से चला नहीं रहे है। जब आप लोगों की तरफ से साफ कह दिया जाता है कि अंग्रेजी को पुस्तकालय से नहीं हटाना है, अंग्रेजी को इंगलिस्तान और अमरीका से नहीं हटाना है, अंग्रेजी को ऐच्छिक विषय के रूप से नहीं हटाना है, तो फिर काहे को यह खिड़की और ज्ञान वगैरह की चर्चा हुआ करती है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

बिल्कुल साफ कहा गया है कि अंग्रेजी को कहां से हटाना है। अंग्रेजी को हटाना हैं अदालत से, अंग्रेजी को हटाना है उच्च न्यायालय से, अंग्रेजी को हटाना है सर्वोच्च-न्यायालय से, अंग्रेजी को हटाना है सरकारी दफतरों से, अंग्रेजी को हटाना है रेल-तार पल्टन से, अंग्रेजी को हटाना है हिन्दुस्तान के हर एक सार्वजनिक काम से, जिससे हिन्दुस्तान का हर एक सार्वजनिक काम अपनी भाषा के माध्यम से हो सके। इस पर बहस करो। लेकिन कभी कोई पढ़ा लिखा आदमी इस सवाल पर बहस नहीं करता। सदा ही यह कह दिया जाता है कि नया ज्ञान सीखना, दुनिया के ऊपर खिड़की खोल करके रखना बुद्धिमान बनना है, ज्ञानी बनना है। क्या खाक ज्ञानी बन रहे हो। हर एक दायरे में पिट रहे हो। जहां देखो, वहां बाहरी शैतानी ताकतें तुम्हारे पर फैली जा रही है और ज्ञान बढ़ रहा है।

पिछले कई सौ बरसों में हिन्दुस्तान के ज्ञान का दरवाजा, खिड़की, छेद, सब बन्द पड़े हुये हैं। और बन्द पड़े हैं, उसका एक मात्र कारण आज सिरफ अंग्रेजी नहीं है, एक महान कारण है कि हिन्दुस्तान में भाषा के मकसद को ही सैंकड़ों बरसों में समझा नहीं गया। भाषा है किस लिए ? भाषा होती है एक तो समझने के लिए और दूसरे होती है बोलने और अभिव्यक्ति के लिये। जहाँ तक साधारण ज्ञान है उसको

समझने के लिये और उसके ऊपर बोलने के लिये अपने देश की भाषाओं का इस्तेमाल करना होगा। जहाँ तेलुगू वाले हैं, हमें तेलुगू बोलना भी होगा, समझना भी होगा। लेकिन अगर कोई खास ज्ञान जहाँ जिस भाषा में होगा, रूसी में, अंग्रेजी में और जर्मन में, उसको हम हासिल कर सकेंगे। एक मिसाल लीजिये, शेक्सपियर का अध्ययन हिन्दुस्तान में पिछले १२५-१५० बरस से चल रहा है। हिन्दुस्तान में जितने आदमियों ने शेक्सपियर को पढ़ा है, उतना शायद सारी दुनिया के आदमियों को भी रख दिया जाये तो भी उतना नहीं पढ़ा होगा। सिरफ अंग्रेज नहीं, फ्रांसीसी, जर्मन न जाने कितने निकलेंगे जिन्होंने शेक्सपियर पर मूल टीका की है जिसे पढ़ने में मजा आता है। हिन्दुस्तान में कम्बख्त एक निकल आता जिसने शेक्सपियर पर लिखा होता, तो मैं कहता, किसी ने कुछ किया। इसका कारण यह है कि जब जर्मन शेक्सपियर को पढ़ता है तो अंग्रेजी में पढ़ना जरूर है ज्यादातर जर्मन अनुवाद द्वारा, लेकिन पढ़ कर जब उस पर सोचता है तो अपनी भाषा में। और जब लिखता है तो अपनी भाषा में। फ्रांसीसी फरेंच में लिखता है, जर्मन जर्मनी में लिखता है। तब आ कर उसमें बड़े-बड़े लोग होते हैं। मेक्समूलर का नाम सबने सुना होगा। हिन्दुस्तान के वेदों के सिलसिले में वह मशहुर है। उसने संस्कृत में वेदों को पढ़ा, लेकिन वह इतना जाहिल नहीं था कि पढ़ने के बाद इस पर जो टीका लिखी वह भी संस्कृत में लिखने बैठ जाता। उसने जर्मन में लिखा।

हिन्दुस्तान में भाषा के बारे में सारा सिलसिला एक दम से टूट गया है। यहां पर पढ़ोगे उसी भाषा में, समझोगे उसी भाषा में, अभिव्यक्ति करोगे, लिखोगे भी उसी भाषा में। हिन्दुस्तान में जितने भी सरकारी दफतर हैं उनमें तीन चौथाई वक्त बरबाद जाता है। कोई भी जाकर इस बात को अजमाइश कर लें। मैं नाम नहीं लेना चाहता, हिन्दुस्तान का जो सबसे बड़ा राजकीय आदमी हैं उस के लिये भी यही कहता हूं। अंग्रेजी लिख लेना और और बोल लेना कोई आसान काम है। यहाँ हैदराबाद में आंध्र प्रदेश का जो दफतर है उसमें अंग्रेजी में चिट्ठी-पत्री लिखी जाती है। बड़े से बड़ा मन्त्री, सचिव, अफसर जब चिट्ठी लिखने बैठता हैं तब दिन भर में चार-पांच से अधिक नहीं लिख सकता। बेचारा डरने लगता है कि कहीं गलती तो नहीं हो रही है। एक लकीर का दस दफा मुआइना करता है और फिर उसके बाद कहीं जा कर वह एक चिट्ठी लिख पाता है घण्टे दो घण्टे में। छह सात अधिक कह दिया, मैंने दरयाफ्त किया कभी-कभी तो चार पांच ही चिट्ठियों में उनका दिन खत्म हो जाता हैं। अगर उन्हें चिट्ठियां तेलुगू, तमिल या हिन्दुस्तानी में लिखनी होती तो दिन भर में कम से कम ४० चिट्ठियां लिख लेते। लोग सवाल उठाते हैं कि आप में एक दूसरे को कैसे समझ लोगे। अनुवाद के लिये भी अलग से दफतर खोल दो, तब भी पैसा कम खर्च होगा और अधिक कांम होगा बनिस्वत आज के। अंग्रेजी के कारण तो आज हिन्दुस्तान ज्ञान शून्य हो गया है। ज्ञान की खिड़की खुली नहीं है, खिड़की बन्द होती

चली जा रही है क्योंकि ज्ञान की अभिव्यक्ति भी हिन्दुस्तान में अंग्रेजी के जरिये हो रही है। देशपाण्डे जी वह बात आप अच्छी प्रकार से याद रखना कि तीसरे दरजे से अंग्रेजी क्यों पढ़ाते हो, पढ़ाना है तो जब बच्चा उत्पन्न होता है तभी से पढ़ाओ और तभी से क्यों, जब वे गर्भाधान कर लेता है तब से अंग्रेजी पढ़ाओ। यह मामूली बात नहीं है।

ज्ञान आदि की चर्चा छोड़ों और इस सवाल का जवाब दो कि किस देश में रेल, तार, पलटन, सरकारी दफतर, कालेज, विश्वविद्यालय, न्यायालय ये सब किसी सामन्ती भाषा के जरिये चलाते हैं। मैंने विदेशी भाषा नहीं कहा है। देसी-विदेशी का मामला अलग कर दो। मैंने सामन्ती भाषा कहा है, क्योंकि अंग्रेजी को ताकत और दौलत के लिये इस्तेमाल करने वालों की तायदाद कुल चालीस-पचास लाख है। पचास लाख एक तरफ और ४३ करोड़ दूसरी तरफ। ये पचास लाख ४३ करोड़ की छाती पर किस तरह चढ़े रहें, यह है असली सवाल कि वे किस प्रकार शासन करें और किस तरह उनका शोषण करें। हाथ में बन्दूक की गोली और मुंह में अंग्रेज़ी की बोली, इन दो के जरिये ४०-५० लाख सामन्ती लोग आज ४३-४४ करोड़ पर राज चला रहे हैं। यह देशी-विदेशी का मामला नहीं है, यह तो सामन्ती और लोक भाषा का मामला है और यह आज से नहीं पिछले कई सौ बरसों से हिन्दुस्तान चौपट हो रहा है क्योंकि एक तरफ तो है सामन्ती भाषा, सामन्ती भूषा और सामन्ती भोजन और सामन्ती भवन और दूसरी तरफ है लोक भाषा, लोक भूषा, लोक भोजन और लोक भवन। यह बटवारा हिन्दुस्तान में कई सौ बरस से चला आ रहा है और उसी को कायम रखने के लिये आज का यह उच्च वर्ग, शासक वर्ग प्रयत्नशील है और इसी लिये वह हमारे बुनियादी सवाल का जवाब नहीं देता।

कभी मिस्र का नाम लिया जाता है, कभी रूस का नाम लिया जाता है, कभी स्केन्डेनेविया का नाम लिया जाता है, कभी कहीं का नाम लिया जाता है। ऐसे लोगों से कहना है कि क्या बच्चों को वरगलाना ही आप लोगों का धर्म हो गया है? मिस्र में कौन-सा काम होता है अंग्रेज़ी या किसी और भाषा के जरिये, यह बताओ। मिस्र में अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है या नही पढ़ाई जाती है यह तो छोटा सवाल है, हालांकि इन सब देशों में भी अंग्रेज़ी की पढ़ाई लाजमी नहीं है। रूस में अंग्रज़ी की पढ़ाई लाजमी नहीं है। अन्य विदेशी भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेज़ी भी एक भाषा है और जिस तरह से एक ऐच्छिक विषय विदेशी भाषाओं का होता है उसी तरह रूस में अंग्रेज़ी भी है। लेकिन सवाल यह नहीं है कि हिन्दुस्तान में आप अंग्रेज़ी को एक ऐच्छिक विषय की तरह रखना चाहते हो या नहीं। मेरा बस चले तो हिन्दुस्तान को आजाद रखने के लिए अंग्रेजी को ऐच्छिक विषय के रूप में भी नहीं रखूं, क्योंकि सचमुच इस भाषा ने हमारा बड़ा ही सत्यानाश किया है। उसने और सब खिड़कियां बन्द कर दी हैं। दुनिया को हम जान नहीं पा रहे हैं। मैं तो अपने को सौभाग्यशाली समझता हूं, असल में तो है

पुराने और नये हिन्दुस्तान की खिड़की, लेकिन जो थोड़ी-बहुत बाहर की खिड़की खुली मैं इतना बदनसीब नहीं था कि सिरफ इंगलिस्तान की तरफ खिड़की खुलती, वहां थोड़ी खुली और थोड़ी खुल गई जर्मनी वगैरह की। इसलिए दिमाग में वह जाले और कीड़े नहीं पड़ पाये जो केवल अंग्रेजी वालों के दिमाग में पड़ जाया करते हैं।

जो भी हो, यह बताओ कि कौन सा ऐसा मुल्क है। जिसके सब सार्वजनिक काम किसी सामन्ती भाषा के माध्यम से चलते हैं। कोई मुल्क नहीं। मैं कहना चाहता था, कोई सभ्य मुल्क नहीं। ऐसे एकाध मुल्क निकल आयेंगे जहाँ पर वहां की भाषा को लगातार विदेशी शासन के जरिये खतम कर दिया गया है, वहां तो शायद कोई अन्य भाषा मिल जाये। मान लो ४० लाख आदमी हैं उस देश में। उनकी अपनी भाषा खतम हो चुकी है। उन्होंने किसी दूसरी भाषा को अपना लिया है चाहे टूटी-फूटी ही सही, बिना व्याकरण के, उच्चारण खराब हो गया है, तो वह वहां की जन भाषा हो गई और तब वहां का रेल, तार वगैरह का काम उसमें चलता है। मैं हिन्दुस्तान की सरकार से और आंध्र वगैरह की सरकारों से कहना चाहूंगा, कि वे अंग्रेजी को लादना ही चाहते हैं तो पहले तेलुगू तमिल का सर्वनाश कर दें और यहां के लोगों को टूटी-फूटी अंग्रेज़ी सिखा दें ताकि वह इनकी मातृभाषा बन जाये और फिर उसको राजभाषा बनायें। तब तो वह पूरा लोक राज कहलाएगा लेकिन उसके पहले लोकराज रखकर एक सामन्ती भाषा के माध्यम से इसको चलाना चाहोगे तो मैं कहूंगा, यह विडम्बना है, धोखेबाजी है, बदमाशी है, यह लोकराज नहीं है, क्योंकि लोकराज तो केवल लोकभाषा में चल सकता है, और किसी भाषा में चल नहीं सकता। बार-बार इन लोगों से यह सवाल पूछूंगा और आप भी इन से पूछता। अब जैसे उस्मानिया विश्वविद्यालय है, जहां पर अंग्रेजी पढ़ाई जाए या नहीं यह विषय बिल्कुल है ही नहीं, लेकिन बार-बार यही सवाल पूछ लिया जाता है। यह छोटा सवाल है कि कालिज में किस प्रकार अंग्रेजी पढ़ाई जाए. असली सवाल तो यह है कि रेल, तार, पलटन, कालेज, विश्व-विद्यालय, न्यायालय किस भाषा के सम्बन्ध से चलाना चाहते हो। उसका जवाब अभी तक नहीं दिया गया है।

मुझे आज नरेन्द्र जी का भाषण सुन कर बड़ी खुशी हुई। अगर आप के पास कोई ताकत है तो ये अपने पार्टी के नेताओं से इसका जवाब जबरदस्ती दिलवाने की कोशिश करें। ये मैं गम्भीरता के साथ कह रहा हूं क्योंकि कभी-कभी ऐसे मौके आया करते हैं कौम की जिन्दगी में जब पार्टियां आदि छोटी चीज हो जाया करती हैं और अब वह मौका आ गया हैं जब इस मामले को लेकर खुद काँग्रेस के अन्दर जो सच्चे लोग हैं, जिनको महात्मा गांधी या भारत की आजादी से उसको छोड़ दो, मनुष्य की आजादी का सवाल आ गया है, उससे कुछ बातें सीखी हैं, तो अपने नेताओं से पूछें कि इस बहस को हमेशा तुम गन्दी क्यों किया करते हो। पहले बहस को तो ठीक तरह से

चलाओ। अंग्रेजी हटाना, नहीं हटाना, इस बात को छोड़ दो, सच तो रखो, बहस ठीक तरह से चलाओ, ईमानदार बनो।

यह भी मैं आप से कह दूं कि सामन्ती भाषा का जब कभी जिक्र करता हूं—असल में आप सब लोगों के मन में और खैर मेरे में तो नहीं हैं, उम्र बढ़ गई है और आपके मुकाबले में कुछ ठोकरें ज्यादा खाई हैं, ऐच्छिक ठोकरें—तो हम लोगों के सबके मन में एक कमज़ोरी है, और वह क्या है? शायद हैदराबाद में जो शहर के लोग रहते हैं उनके बारे में वह इतना लागू नहीं पड़ता है। लेकिन कितने लोग हैं? यहां पर भी वह मोहल्ला, जहाँ रामस्वामी एक दिन हम को ले कर गये थे, मोहल्ले में वह रहते हैं हरिजन, गरीब, झोपड़ी वाले, ये सब जितने भी लोग हैं, मैं समझता हूं १२ लाख में से ८ लाख तो ऐसी बस्तियों में रहते होंगे, वे तो इन सभाओं में आते ही नहीं। बदनसीबी, अफसोस तो यही है। उसी के साथ-साथ आप गांव को भी देख लेना। आन्धप्रदेश के जितने भी २०-२५ या ३० हज़ार गांव होंगे, उनके रहने वालों की बात सोच लेना। जब वे दो अफसरों को आपस में अंग्रेजी में बात करते सुनते हैं तब अनके मन में क्या बीतती है इसे जरा अच्छी तरह से समझ लेना है। तब वे यह नहीं सोचते कि ये अफसर खराब हैं। अगर ऐसा सोचने लगें तब तो अपना काम बन जाए। वे सोचते हैं कि ये लोग पढ़े लिखे हैं, पढ़े लिखे लोग जानते हैं। अपने देश में पढ़े लिखे लोग और अंग्रेज़ी जानने वाले ये दो परस्पर पर्यायवाची शब्द हो गये हैं। इससे बड़ा नुकसान हुआ क्योंकि महामूर्ख भी अंग्रेजो जानता है तो पढ़ा-लिखा मान लिया जाता है। अपनी खोपड़ी को तराशो, उसको उलटो, उसमें जो कूड़ा पड़ा हुआ है उसको बाहर निकालो। हमारे दिमागों में यह बात धंसी हुई है कि जब दो आदमी अंग्रेजी में बोलते हैं तो वे बड़े हैं, पढ़े लिखे हैं, देश का कामकाज चला सकते हैं, उन्हीं को हक है देश का काम काज चलाने का और उन्हीं में वह योग्यता है और कि हम क्या चलायेंगे हमको कहां अंग्रेजी आती है। आखिर मैं इस सम्मेलन में क्यों आया। दिन रात जब मैं उन तबकों में पहुंचा जिन को उठाना है, तो उनकी दर्द-भरी आंखों से और कभी जीभ से एक सन्देश सुना, हम लोग क्या करें, हमको अंग्रेजी आती नहीं. चिट्ठी भी नहीं लिख पायेंगे, हम राजनीति क्या चलाएंगे। तब मेरी समझ में आया कि सामन्ती शासन जनता को कैसे दबाता है—खाली बंदूक के जरिये नहीं। बन्दूक तो कभी-कभी इस्तेमाल होती है। रोज अगर बन्दूक इस्तेमाल होने लग जाये तब या तो जनता खतम हो जाएगी या शासन खतम हो जाएगा। तब वह कायम कैसे रहता है? जनता के मन को छोटा करके। जिसके शरीर पर कब्जा करना होता है। उसके मन को छोटा किया जाता है। गाय पर कैसे कब्जा किया, बकरी पर कैसे कब्जा किया? उसका मन छोटा करके। यह इनसान खतरनाक है। भैंस के ऊपर कब्जा कर लिया है। छोटे बच्चे, छोटी-सी सूखी टहनी लेकर भैंस को चराया करते हैं। उसके मन पर कब्जा कर लिया। शेर पर कब्जा करने का मंत्र अभी तक इनसान नहीं सीख पाया है इसलिए उसे सीखचे में रखना पड़ता है, ४३ करोड़ लोगों के शरीर पर कब्जा

करो, उनके मन को छोटा बनाओ, उनमें हीन भावना पैदा कर दो। उनको यह लगे कि हम तो देश का कामकाज चला नहीं सकते, देश का कामकाज तो खाली ये ५० लाख आदमी चला सकते हैं। यह बिल्कुल जड़ की बात, क्योंकि यह अंग्रेजी आज कायम है। ये ४०-५० लाख लोग ४३ करोड़ को छाती पर चढ़े रहने के लिए उनका मन छोटा करते हैं।

अब एक सलाह भी मैं आप को दे दूं कि जब कभी दो हिन्दुस्तानियों को, अफसरों को या और किसी को सार्वजनिक जगह पर फिर याद रखना क्योंकि इसको लेकर बड़ा झमेला खड़ा हुआ है, मैं सार्वजनिक जगह बार-बार कह रहा हूं—आपस में गिटमिट करते सुनो तब अपना मन छोटा मत करना। यही सोचना कि इनके माँ और बाप दो में से कोई एक अंग्रेज जरूर रहा होगा। इस बात को गांव-गांव में, घर-घर में पहुंचा दो। मैं उसमें एक अपवाद बता देना चाहता हूं—सार्वजनिक जगह पर, सड़क पर, कारखाने में, अदालत, सरकारी दफतर में, लेकिन किसी के घर में मत घुसना। अगर मान लो कोई इश्कबाजी अंग्रेजी में कर सकता है अपने मियाँ से या अपनी बीवी से तो फिर उसको करने देना। वहां दखल नहीं देना।

इन उच्चवर्गी लोगों के तरीके कितने जबरदस्त हैं। तीसरे दरजे की बात कई बार उठाई गई कि तीसरे दरजे से अंग्रेजी पढ़ाई जायेगी। गरीब लोगों के मुंह से सुन करके मुझे हैरत हुई कि वे उसको इतना नापसन्द नहीं करते, साधारण जनता उसको इतना नापसन्द नहीं करते। क्यों? क्योंकि जब हम आजाद हुए, स्कूलों की बनावट दूसरे ढंग की होने लगी। साधारण जनता के मुनसीपालटी के, गांव पंचायत के जो स्कूल थे, वहां से तो पांचवें, सातवें या नवें दरजे तक अंग्रेजी हटा दी गई, लेकिन जो पादरियों के स्कूल थे, जो सरकारी या अर्ध सरकारी स्कूल थे, देहरादून जैसे स्कूल, और न जाने ये पचासों किस्म के स्कूल हैं, जहां बड़े लोगों के बच्चे पढ़ने जाते हैं, वहां शुरू से ही अंग्रेजी को रखा। यह दोनों चीजें चालू रही हैं। बारह बरस तक यह सिलसिला चला। जनता अभी इसको समझ नहीं पा रही है। जनता अगर समझती तो वह मांग करती कि ये जितने स्कूल हैं इनको दियासलाई लगाकर जलाओ और सब स्कूलों से अंग्रेजी को खतम करो। जनता ने उसे समझा नहीं। जो जनता की छाती पर चढ़ा हुआ है वह इतना चालाक है कि जनता को एक भ्रमजाल में फंसा देता है। अब ऐसी बहस में मत पड़ना। अंग्रेजी तीसरे में जाए, आठवें से न जाए या नवें से न जाए, यह बहस तो उन लोगों के लिए हैं, जो विचारे पीछे पड़े हुए हैं। अब तो बहस यह है कि अंग्रेजी सब जगह से जाए और हिन्दुस्तान में ऐसा कोई प्राथमिक स्कूल चल नहीं पाएगा कि जहां राष्ट्रपति का बच्चा और भंगी का बच्चा अलग-अलग स्कूल में जाएगा। उन्हें एक ही ढंग के स्कूलों में जाकर पढ़ना होगा। अभी मेरी जीभ में इतनी ताकत नहीं है कि मैं कह दूं कि कालेज भी एक ही ढंग के हों। केवल पांच बरस से दस बरस तक की जितनी भी पढ़ाई है वह सब एक ही ढंग के स्कूल में होगी चाहे

वह भंगी का बच्चा हो, चाहे वह प्रधानमन्त्री का हो, चाहे राष्ट्रपति का हो और चाहे करोड़पति का। राष्ट्रीय एकता का निर्माण क्या मजाक में हो जाएगा। पांच से दस बरस तक की एक-सी ही स्कूलें हों। और फिर अंग्रेजी का सवाल तो बिल्कुल साफ ही हो जाता है कि अंग्रेजी खतम करो। उसकी क्या जरूरत पड़ी हुई है। इसलिए अंग्रेजी हटाओ वालों को मैं एक चेतावनी भी देना चाहता हूं कि जो आम रास्ता है, बड़ी सड़क है, उसी पर चलते रहना। पगडण्डी में इधर उधर नहीं फंस जाना कि यह आन्दोलन चलाने लग जाओ कि तीसरे दरजे से अंग्रेजी मत पढ़ाओ, पांचवें से पढ़ाओ, सातवें से पढ़ाओ, इन सब चीजों के लिए आन्दोलन करना औरों के लिए छोड़ देना चाहिये, हां अगर उसमें हम थोड़ी बहुत मदद कर सकते हैं, तो कर देंगे। असली आन्दोलन यह है कि अंग्रेजी को सभी स्कूलों से माध्यम के रूप में खतम करना है, वह चाहे पादरी के स्कूल ही क्यों न हों। सच पूछो तो पादरी के स्कूल रहने ही नहीं चाहिये और जो पब्लिक स्कूल हैं ये भी। ये जो बड़े-बड़े सेठों के और बड़े-बड़े मन्त्रियों के बच्चों के लिए जो स्कूल हैं, वे रहने ही नहीं चाहियें। सब बच्चों को एक ही ढंग के प्राथमिक स्कूल में पढ़ना है। जब इस बुनियादी बात को अंग्रेजी हटाओ वाले पकड़ लेते हैं कि कहां से अंग्रेजी हटाना है, तब मामला आगे के लिए साफ हो जाता है।

यह सही है कि इतना कह देने से ही काम तो पूरा नहीं हो जाता। तट देश के लोगों को बहुत बरगलाया जा चुका है। खाली यह कह देने से काम नहीं चलेगा कि हिन्दी को अपनाओ। १२-१३ बरस में दिमाग में इतना कूड़ा भर दिया गया है कि अब यह कहना कि हिन्दी अपनाओ खराब काम है। मैं सारे हिन्दुस्तान में हिन्दी वालों को एक सलाह देना चाहता हूं कि हिन्दी के प्रचार की बात अब आप अपने मुंह से मत कहो। तट देश वाले खुद जो करना चाहें करें। हिन्दी को राजभाषा बनाने की भी बात मत कहो। मैं तो और आगे जाना चाहता हूं कि स्कूलों में हिन्दी को एक जरूरी विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था भी खतम करो। ये जो तट देश वाले हैं — जब खुद इसे पढ़ना चाहें तब पढ़ें। बिल्कुल साफ तौर से जब उनके दिमागों में यह बात लानी चाहिये कि अंग्रेजी हटाना है, हिन्दी आप की इच्छा हो तब चलाना, जब इच्छा हो, आज चलाओ, दस बरस बाद चलाओ, लेकिन अंग्रेजी को हटाओ। हिन्दी की बात करते-करते तटदेश के लोगों को चिढ़ हो गई है। अब बात बंद हो जानी चाहिये और उन्हें साफ तौर पर कहना चाहिए कि प्रदेश के काम से तो आप अंग्रेजी को बिल्कुल हटाओ।

अब रह जाता है केन्द्र का काम तो मैं विस्तार में न जा कर खाली यह कह दूं कि अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन ने कौन-कौन सी तजवीजे रखी हैं। पहली तजवीज रखो कि केन्द्र का काम हिन्दुस्तानी में करो और दस बरस के लिए गैर हिन्दी भाषियों को गजटी नौकरियों में पूरा संरक्षण दे दो। सबके सब कलेक्टर तेलुगु और मराठी और बंगाली हो जाते हैं तो मेरे जैसा आदमी तो उस का स्वागत करेगा। मध्यप्रदेश के २०

करोड़ आदमी हैं उनको क्या आना-जाना है अगर उनका कलक्टर एक मराठी भाषा वाला है या तेलुगु या उर्दू भाषा वाला है। दूसरी बात, अगर दस बरस के संरक्षण से इन लोगों को तसल्ली नहीं होती हो तो जनसंख्या के आधार पर हमेशा के लिए संरक्षण ले लो। इससे भी तसल्ली नहीं होती है तो बहुभाषी केन्द्र बनाओ। दिल्ली में सब भाषाओं को चलाओ। आज के युग में कानफोन से और तर्जु में से इतनी आसानी से इन्तजाम हो सकता है कि सब भाषाएं चल सकती हैं। उतने से भी खुश नहीं होते हैं तो अपने प्रदेश से तो सब लोग अंग्रेजी को फौरन खतम करें लेकिन जब तक आपके दिमाग बदलते नहीं हैं तब तक दिल्ली में दो महकमे बना दो, एक रहे हिन्दुस्तानी वाला महकमा जिससे मध्य देश के सब सूबे जुड़ जाएं, दूसरा रहे अंग्रेजी वाला महकमा जिससे तट देश के वे सब जुड़ जायें तो जुड़ना चाहते हैं। ये कई रास्ते बताये गये लेकिन बहस तो उनको छेड़ना नहीं है। क्योंकि उनको तो अंग्रेजी कायम रखना है। जो उच्चवर्ग के लोग हैं और कैंची चलाते हैं, अगर उनको बहस करना हो तो इन सब बातों पर बहस करें। हिन्दी भाषी केन्द्र पहली बात, बहुभाषी केन्द्र दूसरी बात, और दिल्ली के दो विभाग बना दिये जाएं, एक हिन्दुस्तानी और दूसरी अंग्रेजी, यह तीसरी बात। अब मैं चौथी बात भी कहना चाहता हूं कि किसी भी आदमी को मैं न्योता देता हूं कि अगर उसके दिमाग में और कोई योजना है तो वह बताए बशर्ते कि अंग्रेजी को इसी क्षण हटाने की बात उसमें हो इसके अलावा मेरी और कोई शर्त नहीं। अंग्रेजी को इसी क्षण हटाया जाए जिससे हिन्दुस्तान की जनता को राहत मिले. ४३ करोड़ में जान आए, वे सजीव बनें। अभी हम लोग अचेत हो गये हैं, अर्धमुर्दा हो गये हैं और अगर हमको जानदार बनना है तो अपनी भाषाओं के जरिये ही मौका मिलेगा। यह है असली चीज।

अब, चीन वगैरह की चर्चा होती है। चीन अच्छा देश नहीं है, वह तो राक्षसी देश है। लेकिन वे लोग अपनी भाषा में काम चलाते-चलाते शक्तिशाली हो गये हैं। इनमें से एक-एक आदमी रगड़ खाते-खाते सजीव हो जाता है। हमारे यहां कौन रगड़ खा रहा है। जिस किसी मोहल्ले में आप चले जाओ, जहां गरीब लोग बसते हैं, वहां क्या तो रगड़ है, मन में कोई हिलोर नहीं है, कहीं कोई उठान नहीं हैं। जब हम आजाद हुए, उसके पहले मन में उठान ज्यादा था, मेरे जैसे आदमी के मन में. यह सही है कि मेरा मन क्या होगा, उसको आदत पड़ गई है, कुछ उठान हर हालत में रहेगा, हालांकि पिछले १२-१३ बरस के हिन्दुस्तान को देख कर मेरे जैसे आदमी का मन भी आशा और निराशा की दो पेंगों के बीच प्रायः हमेशा झूलता रहता है। अपने देश की हालत इतनी खराब हो गई है। फिर कभी अपने लोग मिल जाते हैं। वे कहते हैं. तो फिर मन आशा की तरफ पेंग मारने लग जाता है। यही अंग्रेजी वाला मामला लें। इतनी साफ सी बात है लेकिन अंग्रेजी को हटाने में हम लोग कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। छोटी सी चीज है, हो जानी चाहिये थी, अब तक इस में ज्यादा वक्त नहीं लगाना चाहिये था।

अब आप याद रखना कि कि अंग्रेजी रखने का कानून हिन्दुस्तान की लोक सभा में बनेगा। संविधान तो शायद ये लोग बदलेंगे नहीं उसके कई कारण हैं। अंग्रेजी को वे सखी भाषा बना देंगे। शायद उस कानून को पास भी करवा लेंगे। पंचवर्षीय योजना में कई तारीफें है। एक तारीफ यह है पैसा। पढ़े लिखे लोगों के बीच में पैसा खूब बंट रहा है चाहे वे स्कूल-कालेज हों, चाहे राजनीतिक पार्टियाँ हों, चाहे विरोधी पार्टियां हों। पचासों तरीके होते हैं तो सब लोग सड़ चुके हैं। इतना सड़ चुके हैं कि अंग्रेजी को सखी भाषा बनाने वाला विधेयक लोक सभा में पास हो कर रहेगा। हिन्दी इलाके के लोग तो इतना सड़ गये हैं कि वे अपने मन और आत्मा को सन्तोष दे लेंगे, न इधर हाथ उठाएंगे न उधर। कहेंगे हम ने तो अपना काम कर लिया। तुमने नहीं उठाया, पर पास तो हो जाएगा। एक हालत को छोड़ कर विधेयक के पास होने का खतरा बिलकुल साफ साफ आपके सामने है। अंग्रेजी को सखी भाषा रखना और सखी भाषा रखने का मतलब साफ है कि हिन्दी को भी साम्राज्यशाही की भाषा बना देना क्योंकि अंग्रेजी अब तक साम्राज्यशाही की भाषा रही है। यह संविधान जब बना, तभी वह दोष इसके अन्दर आ गया था। हिन्दी अंग्रेजी को जिस किसी ने साथ रखा विचारे ने समझा नहीं या उन लोगों ने नहीं समझा कि इसके खतरनाक नतीजे होंगे। उसके अलावा, एक अच्छा सिक्का है और दूसरा खोटा सिक्खा है तो इन दोनों में से खोटा ही हमेशा चलेगा। आपकी जेब में एक खरा और खोटा सिक्खा हैं और किसी पान वाले से आप ने पान खरीदा और उसकी बिजली इतनी तेज नहीं हैं तो उसे कौन सा सिक्का दोगे ? सखी भाषा में रूप में रख कर हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा को तरक्की दिलवाने की बात सोचना सरासर बेवकूफी हैं। यह नामुमकिन बात है।

अंग्रेजी के साथ इज्जत जुड़ी हुई है, दौलत जुड़ी हुई है, रुतबा जुड़ा हुआ है। हमसे कई दफे कांग्रेसी लोग कहते हैं कि जाओ हिन्दुस्तान में मां-बाप को सिखाओ, सरकार के खिलाफ तुम क्यों आन्दोलन करते हो, रचनात्मक काम करो, तेलुगू और उर्दू वगैरह की पढाई-लिखाई बढ़ाओ, बच्चों के मां बाप से कहो वे अपने बच्चों को अंग्रेजी के माध्यम से न पढ़ाएं, हिन्दुस्तानी के माध्यम से पढ़ाएं, पाठ्य पुस्तकें बनाओ। इस पर मुझे इतना ही कहना है कि हजार रचनात्मक काम करते चलो, लेकिन जब तक अंग्रेजी के साथ दौलत, इज्जत और रुतबा जुड़ा हुआ है, कौन बाप ऐसा होगा जो अपने बच्चे को पढ़ाएगा तेलुगू या मराठी या हिन्दुस्तानी के माध्यम से ? अगर उस के पास पैसा है तो वह अपने बच्चे को अच्छा ही पढ़ाना चाहेगा कि जिसमें बच्चे को रुतबा मिले। जब तक सरकार की बुनियादी कानूनी जगह पर आप चोट नहीं मारते तब तक रचनात्मक काम के जरिये भाषा के इस मसले को हल कर ही नहीं सकते।

इसलिए उस कानून को इस वक्त रोकने का, मैं समझता हूं, एक ही तरीका है। अगर हिन्दुस्तान की जनता खैर वह तो दिल्ली पहुँच नहीं पाएगी, आस-पास के मध्य देश हैं वे अगर विधेयक के आने के साथ-साथ ५० हजार १ लाख की तादाद में

पहुंच जाए, लोक सभा को घेर कर बैठ जाएं तो कुछ हो सकता है। ज्यादा नहीं, एक ही लाख मैं कह रहा हूं। और ऐसा हो चुका है पहले। आप लोग जो जवान है, वे जानते नहीं हैं। बम्बई, कलकत्ते में, अंग्रेजी राज से लड़ते हुए लाख-लाख, दो दो लाख आदमी सड़क के ऊपर एक-दो घण्टे नहीं ३६ घण्टे बैठ चुके हैं, अंग्रेजों ने कहा, हम आगे नहीं बढ़ने देंगे, पुलिस पलटन बुला ली, बन्दूक के मोरचे तान दिये। जनता बैठ गई, क्योंकि वह अहिंसा वाली लड़ाई थी। तुम आगे नहीं जाने दोगे, हम पीछे नहीं हटेंगे, और बैठ गये। कुछ उठे कुछ नये आये और बैठे रहे। कई जगह से अंग्रेजों को अपनी पुलिस और पलटन को वापिस हटाना पड़ा। यह मैं जानता हूं कि आज इतना जन बल नहीं है और जनबल हो भी जाए तो मन का बल उतना नहीं है क्योंकि हम लोग शायद जनता को अहिंसक नहीं रख पायेंगे, पत्थर वगैरह फैंक देंगे। यह सब खतरे हैं उसमें लेकिन किसी तरह से यह चमत्कार अगर हो गया कि ५० हजार, लाख आदमी लोक सभा को घेर कर बैठ जाएं और अहिंसा ढंग से पत्थर नहीं फेंके और कह दें कि इस विधेयक को हम पास नहीं होने देगें, हम बैठे रहेंगे, तो मैं, आज के शासक वर्ग को मैं जानता हूं कि वह डरपोक है और इसलिए उन कानून को पास करने की वह हिम्मत नहीं करेगा। शासक वर्ग जब मैं कहता हूं तो खाली काँग्रेस ही नहीं, मेरा मतलब ४० लाख से है और उसी ४० लाख में से हर एक पार्टी के नेता तैयार होते हैं। उनमें से एकाध कोई अलग निकल जाया करते हैं, अपवाद छोड़ दे। उस नेतृत्व में इतनी खूबी है, शायद वह आधुनिकता का प्रतीक है, शक्ति का प्रतीक हैं कि वह चुनाव में चुन जाया करता है और वह या उसके ऐजन्ट लोक सभा में बैठते हैं, लेकिन वह डरपोक लोग डर कर भी कभी कभी चोट कर जाया करते हैं। ऐसा होता है। २-३-४ बरस तक महाराष्ट्र सूबे को लेकर डरपोक लोगों ने ऐसी चोट की थी। डेढ़ दो सौ लोगों की जान गई और फिर उसके बाद महाराष्ट्र बन गया।

आप में से कइयों ने यहां पर बेवकूफी वगैरह पर भाषण दिये हैं—बेवकूफ, गुण्डे बच्चे, बेहूदा। इसमें कोई शक नहीं कि इस शब्दों के बौछार की ज्यादातर कृपा मेरे ही ऊपर है। तो मैं कहना चाहता हूं कि पंडित नेहरू और मैं, हम दोनों में से कोई एक जरूर बेवकूफ, झूठा और गुण्डा है, लेकिन कौन है, इस का फैसला इतिहास करेगा, अगर इतिहास को प्रधान मन्त्री जैसे मदहोश पागल में कोई दिलचस्पी रहे और मुझ जैसे नपुंसक में कोई दिलचस्पी रहे तो। मैं अपने को नपुंसक कह रहा हूं क्योंकि १५-२० बरस तक अंग्रेजों से लड़ करके भी कोई ऐसी ताकत हासिल नहीं की। १२ बरस तक आजाद हिन्दुस्तान को पिसते-घिसटते देख करके अभी तक कोई रास्ता नहीं निकला। पता नहीं, मरने तक कोई रास्ता मिल जाए और शायद मैं अपनी इस आज की हैसियत को बदल डालूं। लेकिन अभी जो मेरी हैसियत है वह तो कमजोर आदमी की है तो बात तो सही कहता है, लेकिन सही बात को हासिल करने के लिए उसके पास ताकत नहीं है। सिर्फ सच से काम नहीं चलेगा। कमजोर सच तो कभी-कभी

झूठ से ज्यादा खराब होता है जब सच शक्तिशाली होता है, तब काम चला करता है। ऐसा नहीं कि मैं अपनी हैसियत को नहीं पहचानता। आज तो मेरी हैसियत एक मामूली कमजोर आदमी की है, जो सच को अपनाए हुए हैं, उसे नहीं मालूम वह रास्ता जिससे कि वह कमजोर सच को शक्तिशाली बनाए।

गार में मैंने शेरों को देखा है। शेर बहुत डरपोक होता है चार छह बार वह आमने-सामने देखता है और एक दो-बार ही वह बार करता है और जहां उसके बार खाली जाये कि वह ऐसे जोर से भागता हैं जिसका कोई ठिकाना ही नहीं। उसमें दम नहीं रहता तो मैंने आपको यह चीज बतलाई कि किस तरह से इस विधेयक के बारे में जनमत को उठाया जा सकता है। और बहुत-सी ऐसी चीजे हैं जैसे आंध्र प्रदेश है, मैं हिन्दुस्तानी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। खाली एक बात कहना चाहता हूं कि जहाँ देखो वहां दुकानों पर अंग्रेजी के नाम लिखे हुए हैं। मैंने निजाम को कभी अच्छा आदमी नहीं समझा लेकिन इतना मैं जरूर कहना चाहता हूं कि जबान के मामले में वह निजाम जो और मामलों में बुरा था, आज के इस शासक वर्ग से अधिक अच्छा था। यह सब अंग्रेजी यहां क्यों बढ़ी ? आजादी का पुण्य प्रताप है। इसी निजाम वाले हैदराबाद में मराठवाड़े वाली अदालतें मराठी में चला करती थीं और जब से वहां आजाद हिन्दुस्तान की अदालतें कायम हुई हैं तब से वहां पर अंग्रेजी चलने लग गई है। ये जितने नामपट हैं उनके बारे में अभी तक तो अंग्रेजी हटाओ वाले लोगों ने पुलिस को इत्तल्ला देकर इन्हें मिटाने की कोशिश की। वह काम हो चुका। इस सम्बन्ध में सत्याग्रह का जमाना खतम हो चुका हैं पर और बातों में तो अभी सत्याग्रह करना है, क्योंकि सत्याग्रह के विना तो नई दुनिया का निर्माण हो नहीं सकता। इस अंग्रेजी वाले मामले में पुलिस को सूचना देने की जरूरत नहीं। जब जहां मौका पाओ, जिस किसी सरकारी जगह पर अंग्रेजी लिखी-हुई है उसको मिटाओ, खुरचो, जैसे भी हो हटाओ क्योंकि यह सिर्फ दिल्ली से ये काम न चलेगा। इसे तो स्थान-स्थान पर करना होगा। मुझ से कई लोग कहते हैं तुम तो गांधीवादी हो, सत्याग्रही कहते हो, ऐसे छुप करके क्यों करोगे ? तो ये छुपने की बात नहीं है। इस पर बहुत त्याग हो चुका यह कोई आज वैसा मसला नहीं है। हम घर में खाना खाते हैं, अपने घर में क्या हम सड़क पर थाली ला कर खाते हैं या पुलिस को इत्तल्ला देते हैं कि देखो हम बारह बजे खाना खाएंगे। इसके ऊपर बहुत चर्चा हो चुकी है, काम हो चुका है, पुलिस को इत्तल्ला मिल गई है और अब तो आप जो नौजवान लोग हैं, उनसे एक अपील करना चाहता हू, खाली हैदराबाद के लिए नहीं, सारे हिन्दुस्तान के हर एक शहर के लोग और बड़े बड़े कस्बों के लोगों से कि जहां कहीं मील के पत्थर पर, रेल के नामपटों पर, सरकारी दफ्तरों के नामपटों पर अंग्रेजी लिखी हुई, उसको खुरची, रंगो, मिटाओ। एक अनवरत युद्ध चल जाना चाहिये। सरकार के आदमी तो अंग्रेजी में लिखने लग जाएं, जनता के आदमी अंग्रेजी मिटाने में लग जाएं। इससे बड़े मजे की बात होगी। ऐसी छोटी-छोटी चीजों से ही बड़े राज्य गिर जाया करते हैं क्योंकि वह जो जनता है, रामस्वामी के इलाके

वाली, हरिजन, जिसको किसी चीज का पता नहीं रहता, उन की छोटी-छोटी बस्तियों, गन्दे घरोंदे तक फिर यह खबर पहुंचेगी तब मालूम होगा कि हिन्दुस्तान में कोई नई ताकत पैदा हो गई है, एक तरफ सरकार की वह ताकत है जो अंग्रेजी है और दूसरी ओर कोई नई ताकत हो गई है जो अंग्रेजी मिटाती है। मैं कितनी आसान बातें कह रहा हूं जिन्हें लोग यूं ही कर सकते हैं।

उसी तरह से, स्कूल के बच्चे, कालेज के लड़के-लड़कियां अंग्रेजी में जब कोई मास्टर पढ़ाए. तो जो सलाह मैं अभी दे रहा हूं, उस पर अमल एक दम से नहीं करना चाहिए, क्योंकि एकदम से कर दोगे तो आपके सहपाठी नहीं समझ पाएंगे पहले उनके बीच में ये सब बातें बताना जो आप सुन रहे, दो मास, चार मास खूब बहस चलाना, न्याय सभा चलाना और जब दिमाग पक जाए तब जहां कहीं अध्यापक अंग्रेजी में पढ़ाना शुरू करे, बड़े अदब के साथ कह देना, अब हम आपसे पढ़ने को इन्कार करते हैं, आप हमें मातृ-भाषा में पढ़ाओ, लोकभषा में पढ़ाओ, अंग्रेजी में अब हम नहीं पढ़ेंगे। उस विषय को छोड़ कर जो ऐच्छिक अंग्रेजी वाला है, जैसे रूसी वाला, बाकी कोई भी विषय अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ने को तैयार नहीं। यह मामला अब ऐसा नहीं हल होगा। उप कुलपति सम्मेलनों से नहीं होगा, आध्यापकों के दिमाग बदलने से न होगा। अब यह मामला जनता के खेत में, मैदान में, कारखानों और स्कूलों कालेजों में हल होगा, जब जनता खुद निर्णय करके अपने कर्म से दिखाना शुरू कर देगी कि अब हमको अंग्रेजी नहीं चाहिए।

उसी तरह से दुकानदारों का मामला है। मान लो आपने सिर्फ सरकारी नाम-पटों से शुरू किया। अगर सचमुच नरेन्द्र जी इस चीज को बढ़ाते हैं, हैदराबाद में आप अकेले ही नहीं मैं तो कहूंगा कि आप जैसे लोगों को अब ऐसे आन्दोलनों में पूरी तरह से आ ही नही जाना चाहिए और दूसरे लोगों को भी लाना चाहिए तो ये काम आगे बढ़ सकता है। जो दुकानदार अपने नामपटों से अंग्रेजी खतम कर देते हैं, उनके यहां बिक्री बढ़ाइए और जो दुकानदार अपना नामपट अंग्रेजी में रखते हैं उनके यहां बिक्री बन्द करवाइए। इस तरह कई एक सिलसिले विद्यार्थियों में, मजदूरों में शुरू किये जा सकते हैं।

एक और चीज अंग्रेजी हटाओ वालों को याद रखनी चाहिए कि अब जो समितियाँ आदि बनायें या सम्मेलन आदि करें तो संगठन पर भी ध्यान दें। इसमें कोई शक नहीं कि नामी लोगों के आने से बड़ा फायदा होता है। एक बड़े नामी आदमी के आने का मतलब होता है। १०० इधर-उधर को प्रतिनिधियों का आना, लेकिन उसके साथ-साथ कहीं ऐसा नहीं हो जाए कि पलटन खाली जरनैलों की बने। विद्यार्थियों के नुमाइन्दे, मजदूर संघों के नुमाइन्दे, किसान या खेत मजदूरों के नुमाइन्दे सम्मेलन में आने चाहिएं, कमेटियों में आने चाहियें। मैंने अफसोस के साथ एक बात देखी है कि हम लोगों का ध्यान एक तरफ जाता है, जब बड़े लोगों की तरफ जाता है तब किसान,

खेत-मजदूर भुला दिये जाते हैं या जब ध्यान इनकीं तरफ जाता है तो बड़े लोगों को भूल जाते हैं। दोनों तरफ मन रखते हुए इस अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन को मजबूत बनाना चाहिए।

अंग्रेजी वाले न सिर्फ ताकतवर हैं बल्कि सचेत भी हैं। वे हल्ला मचाना जानते हैं। तेलुगू वाले या हिन्दुस्तानी वाले न जाने क्यों ढीले पड़ रह जाते हैं। मैं किसी का नाम नहीं लेना चाहता, अगर मान लीजिए यह अंग्रेजी रखो सम्मेलन होता तब जितने भी अंग्रेजी वाले हैं, वे उच्चवर्ग वाले और उनके ऐजन्ट बिल्कुल खूंखार जानवर की तरह से सम्मेलन की तरफ आ जाते और झपटने से लग जाते, लेकिन जो हिन्दी, उर्दू, तेलुगू या हिन्दुस्तानी के लेखक या बड़े लोग हैं। उनको सम्मेलन अभी खींच नहीं पाता है। पता नहीं क्या बात है ? वे बिचारे दब गये हैं या हीन भाव से ग्रसित हैं या समझते हैं कि हमारे कहने से क्या हो जाएगा। कुछ न कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे वे अलग रह जाया करते हैं। उनको भी अपने सम्मेलन की तरफ खींचता है।

असल बात तो यह है कि इन ४३-४४ करोड़ आदमियों में नया प्राण डालना है और नया प्राण डालने में जो रुकावट हो रही है उसको समझ लेना है। इस सम्मेलन में एक सवाल पूछा गया था कि यह अंग्रेजी क्यों नहीं हट पा रही है कारण बताओ। सम्मेलन के प्रतिनिधि ने जवाब दिया कि प्रधानमन्त्री उसका कारण है जवाब किसी हद तक सही था, लेकिन पूरा सही न था। कोई व्यक्ति कारण नहीं हुआ करता, खासतौर से जब वह प्रधानमन्त्री जैसा व्यक्ति हो, सो वह अच्छे या बुरे का कारण हो सकता है। और कोई व्यक्ति कारण न करके, वह केवल समूह का प्रतीक बन करके कारण हुआ करता है। सड़ान अपने देश में इन्हीं ४०-५० लाख लोगों को है जो आज हिन्दुस्तान के नेता बने हुए हैं, मन के नेता, शरीर के नेता।

आप जो यहां आ कर अंग्रेजी हटाओ की बात को इतना हृदयंगम कर रहे हो, इस बात को बुरी तरह अपने गले के नीचे उतार रहे हो, लेकिन आप लोग शिकार किस के हो ? इसी पचास लाख वाले समूह के, क्योंकि मैं आप से पूछना चाहता हूं कि यहां के लोक सभा में आपने किसको चुन कर भेजा। मुझे नहीं मालूम कौन है जो भी हो श्री मेलकोटे हैं। सिकन्दराबाद से भी गया होगा मोइनुद्दीन साहब। यहां से ये दो लोग लोकसभा में गये। अब आप यह पता लगाइए कि ये दोनों हजरत लोकसभा में किस भाषा में बोलते हैं। यह जरूरी हो जाता है। आप इस सम्मेलन से कोई चीज अगर सीख कर जाओगे तो पता लगाओ। अगर यह दोनों अपनी तकरीरें लोकसभा में अंग्रेजी में करते हैं तो फिर हैदराबाद और सिकन्दराबाद के इलाकों में ५ बरस तक इन्तजार नहीं करना, १९६७ इन्तजार मत करना। अभी पता लगाओ आप उनके वोटर हैं आप को हक है। आप उनसे खत लिख कर पूछो कि आप किस जबान में वहां तकरीर करते हो। फिर एक पूरा आन्दोलन यहां खड़ा हो जाएगा कि वहां पर अभी तक उन्होंने जो पाप किया उसके लिए उन्हें माफी दे दो। मैं पुराने पाप के लिए किसी

को सजा नहीं देना चाहता लेकिन अब उनको नोटिस दे दो कि अगर अब आगे से आप अपनी कोई तकरीर अंग्रेजी जबान में करोगे तो हम मांग करेंगे कि आपको लोकसभा से निकाला जाए।

यह मैं जानता हूं कि संविधान में अभी ऐसी कलम है नहीं लेकिन कोई बात नहीं। अगर हिन्दुस्तान के लोग १०-२०-५० जगहों में तो हजारों की तादाद में अपने प्रतिनिधियों से मांग करने लग जाए कि या तो तुम अंग्रेजी में वहां बोलना बन्द करो वरना हम तुम को वापिस बुलाने वाली मांग उठाते हैं तो उसका जबरदस्त असर पड़ेगा, क्योंकि दिल तो इनके मुर्गी के हैं। मधुसूदन जी चतुर्वेदी ने सवाल पूछा था कि क्या करोगे ? करने के लिए तो बहुत से रास्ते निकले हुए हैं और अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन पिछले पांच बरसों से इन रास्तों पर चल रहा है। मुश्किल यह है कि इस आन्दोलन की नीति, रास्ते, तरीके तो हैं लेकिन शरीर अभी इसको नहीं मिल पा रहा है। चतुर्वेदी जी और उनके जैसे लोगों से मैं कहूंगा किसी तरह से इसको शरीर दो कि जिससे यह सब काम पूरे हो सकें। अब कोई शक नहीं कि अंग्रेजी हिन्दुस्तानी से हटेगी और फिर इन ४३ करोड़ लोगों में प्राण आएंगे।

सच पूछो तो जब मुल्क का बटवारा हुआ था तब मुझ से गलती हुई थी। एक गलती अंग्रेजी वाले मामले में हो गई। जब संविधान में यह कलम रखी जा रही थी, तभी मुझे सोच लेना चाहिये था। लेकिन असल में उस वक्त ज्यादा नहीं सोचा। उस वक्त ज्यादा यह सोचा कि कारखानों को पंचायत बनाओ, रोटी का दाम ठीक-ठाक करो, मजदूरी ठीक करो, लगान कम करो, कम नफे वाली खेती के ऊपर या बिना नफे वाली खेती पर लगान खतम करो। ये जितनी भी बुनियादी बातें हैं, आर्थिक मांगों की बातें हैं, उनकी तरफ ध्यान ज्यादा रहा। लेकिन फिर, लड़ते-लड़ते देखा या कम से कम मैंने देखा कि सिर्फ आर्थिक मांगों के लिए लड़ने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि पेट और मन, ये दोनों तो जुड़े हैं और अगर पेट को सुधारना चाहते हो तो मन को सुधारना जरूरी है।

४३ करोड़ के पेट को अगर भरना है तो उनका मन जब हीन बना हुआ है, छोटा बना हुआ है तो पेट कैसे भर पाओगे। उनका मन भी तो मजबूत बनना चाहिए। और तभी मुझ जैसे आदमियों को लगा कि तरफ चीजों के दाम को ठीक करो, वहां दूसरी तरफ अंग्रेजी भाषा को हटाने का भी काम चलाओ। ये दोनों पेट और मन से जुड़े हुए हैं। जो बिजली आप अपने घरों में इस्तेमाल करते हो, वह बिजली आप कितने में खरीदते हो। हैदराबाद का दाम मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं समझता हूं कि पांच आना यूनिट है। उसके बनाने में खर्चा तीन पैसा यूनिट पड़ता है। तीन पैसे के खरचे से जो बिजली बनती है वह पांच आने में आपको बेचा जाता है। सिर्फ यही नहीं जो तपेदिक की बीमारी के खिलाफ सूई स्ट्रेप्टीमाइसिन दो आने में बनती है यह बेची जाती है बारह आने में। ये सब चीजें चल रही हैं। चीजों के दाम बढ़े हुए हैं

लेकिन फिर भी कोई रास्ता नहीं निकल पाता है क्योंकि सरकारी खरचे इतने ज्यादा बन गये हैं कि हर चीज के दाम में औसत ३० सैंकड़ा तो टैक्स है और २० सैंकड़ा मुनाफा है करोड़पतियों का और १० सैंकड़ा फिजूली है और ४० सैंकड़ा खरचा। जब इन सब चीजों में कामयाबी नहीं हो पाई त। हम जैसे लोगों ने कहा अंग्रेजी हटाओ क्योंकि ये दोनों चीजें जुड़ी हुई देखो पेट और मन।

अब मैं आप से आखिर में यही प्रार्थना करूंगा कि गलतफहमी इस अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के बारे में फैलाई गई एक तो यह कि हिन्दी के साथ जुड़ा हुआ है और दूसरे यह कि यह स्कूल कालिज का मामला है, इन्हें अपने मन से निकाल दें। इस आन्दोलन की एक ही बात है और वह यह कि हिन्दुस्तान के सार्वजनिक काम को किस भाषा के माध्यम से चलाया जाए। साफ तौर पर यही मामला है। और कोई मामला है ही नहीं। उसके ऊपर बहस चलाओ और इसलिए मैं, अब जो यहां पर प्रतिनिधि आए हैं, बाहर वाले दूसरे दूसरे शहरों और जिलों के लोग, उनसे कहूं कि अब २-४ महीने रह गये हैं। अगले साल के लिए जरा कमर कस लो, ऐसा न हो कि सम्मेलन खतम हो जाए और धीमी रफ्तार से चलो, यह मैं जानता हूं पैसा नहीं है आदमी नहीं है, दफ्तर नहीं हैं, अखबार नहीं है, सब तरह की कमजोरियां हैं। लेकिन इसकी कोई चिन्ता मत करो। सब बातें अपने आप फैलने लग जाएंगी। जब एक दफा यह समझ लोगे कि अब की बार इसका निर्णय इधर से उधर होने को है और ऐसा मालूम होता है कि यह जो विधेयक आए उसमें एक मौका मिल जाएगा इधर या उधर निर्णय करने का मैं सभी प्रतिनिधियों से कहता हूं कि अब इस आंदोलन को कहीं पहुंचाने की कोशिश करो।

———

*सरकार जनता की सेवक है और जनता मालिक है। पर इन सेवकों की गुस्ताखी यह है कि मालिक का काम-काज उस भाषा में करते हैं जिस भाषा को मालिक समझता ही नहीं। इस देश की ९९% जनता अंग्रेजी नहीं बोल पाती और न अच्छी तरह से समझ ही पाती है फिर भी इस देश के शासक बने हुए काले अंग्रेज जनता का अपमान ही करते चले जा रहे हैं।

स्वामी सत्य भक्त

*अंग्रेजी थोपी हुई गुलामी का अवशेष है। वह राजनीतिक गुलामी के स्थान पर हमारी मानसिक गुलामी का माध्यम है। वह हमारी परमुखापेक्षण की प्रवृत्ति का आधार है। अंग्रेजी का अस्तित्व हमारी राष्ट्रीय चेतना 'स्वदेशी' का विरोधी है।

सुरेन्द्र प्रसाद नारायण सिंह

———

'अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन' बनारस से अहमदाबाद और आगे

(कृष्णनाथ)

यह पिछले डेढ़ साल में अंग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन को मुड़ कर देखने का अवसर है। आत्म-विश्लेषण का और इसके गुण दोष को भी देखने का। लेकिन अगर हम सिर्फ कमियों और दोषों को ही देखते रह जाएं तो उस से कोई विशेष लाभ नहीं। इस बीच आन्दोलन की कुछ उपलब्धियाँ भी हुई हैं। अहमदाबाद सम्मेलन में अगर उत्सवमूर्तियों की कमी है तो उससे हम परेशान नहीं हैं। हाँ अंग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन के बहुत से नेता और आन्दोलनकारी और सहकर्मी यहाँ नहीं पहुंच सके हैं। उनकी कमी हम महसूस करते हैं। राजनीतिक अस्थिरता. भयंकर व्यस्तता, दूरी और अभाव से जो नहीं आ सके हैं, वे भी आन्दोलन और सम्मेलन के साथ हैं। हम उनकी उपस्थिति भी महसूस करते हैं। हम आन्दोलन वाले सम्मेलन हैं। आन्दोलन और सम्मेलन से हमें सन्तोष नहीं है, लेकिन निराशा भी नहीं है। बनारस सम्मेलन के पीछे आन्दोलन की जो गर्मी थी वह आज नहीं है। आन्दोलन के दौर आते हैं। उतार चढ़ाव आते हैं। इस सम्मेलन में जिन प्रस्तावों पर चर्चा की गयी उनसे अगले साल के लिए दिशा निर्देश मिला है। आगे तेज किस्म से आन्दोलन चलेगा। इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

मैं अपनी बात को दो हिस्सों में बांटना चाहूंगा। पहले डेढ़ वर्षों में हमारी उपलब्धियां क्या रही हैं उसे कहना चाहूंगा। श्रीपादजी ने आन्दोलन की कमियों की ओर हम लोगों का ध्यान खींचा है। काम क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, इसका ब्यौरा मेरे लिए छोड़ दिया है। तो पहले हम डेढ़ साल का लेखा-जोखा लें। इस बीच परिवर्तनकारी युवकजन, राजनीतिक, लेखक अंग्रेज़ी हटाओ का कोई काम कर डालते रहे हैं। सबकी खबर भी नहीं देते। असल में अंग्रेज़ी हटाओ आंदोलन कोई एक केन्द्र से ऊपर से नीचे चलने वाला आंदोलन है भी नहीं। यह तो स्वतः-स्फूर्त आन्दोलन है। ऐसे स्वतः स्फूर्त प्रयत्न सारे देश में हुए हैं।

आंदोलन के कुछ लक्ष्य बनाने पड़ते हैं। हमने भी गाँधी शताब्दी वर्ष में अंग्रेज़ी हटाने का संकल्प लिया था। हमें दुख है कि यह संकल्प पूरा न हुआ। अंग्रेज़ी आज भी देश के सार्वजनिक जीवन में है। इस दिशा में जो कुछ हुआ वह कम है। बहुत

कुछ करना है। बनारस सम्मेलन के प्रतिनिधि श्री धर्मराज सिंह ने देवरिया में अदाल में अंग्रेज़ी टाइपराइटर तोड़ दिया। उन्हें एक महीने की सजा हुई लेकिन वे एक हफ़ बाद ही छोड़ दिये गये। पटना में भारत सरकार के गृहमन्त्री की कार रोक कर शिव नन्द और अन्य युवजनों ने माँगपत्र दिया।

मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य श्री कल्याण जैन ने राज्यपाल के अंग्रेज़ी प को विधानसभा में फाड़ डाला। असम विधानसभा में सर्वश्री सोमेश्वरी बोड़ा, अतु गोस्वामी, चन्द्रशेखर गोगई, और हीरालाल पटवारी ने राज्यपाल से माँग की कि विधानसभा में अपनी मातृभाषा में बोलें, अंग्रेज़ी में नहीं। इन लोगों ने अपने आग्र को तब तक जारी रखा जब तक राज्यपाल अश्वासान नहीं दे दिया कि वे ऐसा करेंगे

केरल में युवजनों ने अंग्रेजी के विरोध में प्रदर्शन निकाला और अंग्रेजी के नामप पोत डाले। तमिलनाडु में अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन जड़ पकड़ रहा है। श्री रंगस्वाम ने काफी संख्या में प्रतिज्ञा-पत्रों पर हस्ताक्षर कराया है। "मानिदकुलम" से अंग्रेज हटाओ सम्बन्धी समाचार वगैरह आते रहते हैं। अगला अखिल भारतीय सम्मेलन तमिलनाडु में बुलाने की वे तैयारी कर रहे हैं।

हमारे मंत्री श्री वेदप्रताप वैदिक ने बनारस सम्मेलन के बाद दक्षिण भारत क दौरा किया। इससे विचार फैलाने में मदद मिली। इनकी सभाएं हुई। जानदार पत्रकार परिषदें हुईं। इनमें हर जगह नये-नये लोग आये।

हैदराबाद में भी विचार-प्रचार चल रहा है। तेलंगाना आन्दोलन के पहले मैंने और बद्रीविशाल जी ने उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्र नेताओं को खास तौर पर अंग्रेजी हटाने पर जुट जाने के लिए कहा। दो ढाई घण्टे की बड़ी उत्तेजक बैठक हुई। उनमें से रमाकांत तेलंगाना आन्दोलन के विद्यार्थी नेता के रूप में उभरे। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में भाषा समस्या भी है। पुराने हैदराबाद राज्य के लोगों की शिक्षा उर्दू माध्यम से हुई है और तटीय आंध्रवासियों की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से। आंध्र प्रदेश बनने के बाद वहां अंग्रेजी छा गई और हैदराबाद राज्य के लोग अंग्रेजी न जानने के कारण बेकार और कमतर हो गये। तेलंगाना के लोगों में असन्तोष और विद्रोह पनप रहा था। उसी में अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन भी जुड़ गया। अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन के एक मंत्री श्री तुरलापाटी सत्यनारायण "पौराटम्" (तेलुगु साप्ताहिक) का सम्पादन करते हैं। प्रायः हर अंक में अंग्रेजी के खिलाफ लेख छापते हैं। तेलुगु भाषियों में इसका प्रचार करते हैं। तेलगु लेखकों के एक सम्मेलन में भाषा के प्रश्न को लेकर टूट हो गई। इनमें से युवा लेखकों का खासा हिस्सा अंग्रेजी हटाओ, तेलुगु चलाओ को मानने वाला अलग हो गया।

कर्नाटक में श्री गोपाल गौड़ा और श्री जे. एच. पटेल का इस आन्दोलन में बड़ा योगदान रहा है। इसके अलावा अंग्रेजी के प्राध्यापक डाक्टर अनन्तमूर्ति का अंग्रेजी

हटाओ के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री अनन्तमूर्ति आक्सफर्ड विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य के पी. एच. डी. है। आक्सफर्ड का डाक्टर जब अंग्रेजी हटाओ की बात करता है तो देशी अंग्रेजी पढ़े नव चढ़े लोगों का मुंह लटक जाता है। इनके उपन्यास पर फिल्म भी बनी है। स्नेहलता रेड्डी ने उसमें अभिनय किया है। फिल्म पर रोक लगा दी गई है क्योंकि इसमें ब्राह्मणवाद पर करारा हमला किया गया है। इस तरह इन्होंने जाति तोड़ो और अंग्रेजी हटाओ का मिला-जुला अभियान चला रखा है। इसके अलावा (मानव कन्नड़ मासिक) के सम्पादक श्री एम. डी, नंगुडस्वामी अंग्रेजी हटाओ आंदोलन के लिए सक्रिय योग दे रहे हैं। वहां श्री निजलिंगप्पा ने कन्नड़ का झगड़ा हिन्दी से कराने की कुचाल चली। बंगलौर में हिन्दी विश्वविद्यालय बनाने की बात की। मैंने इसका विरोध किया था। वहां तो शिक्षा का माध्यम कन्नड़ ही हो।

'दिनमान'. 'जन', 'धर्मयुग', 'लोक मुख', 'जनमुख', 'आज', 'नई दुनिया' आदि समाचार पत्रों ने इस आन्दोलन से सहकार किया है। हम इनके आभारी हैं।

पिछले साल अंग्रेजी हटाओ का महत्त्वपूर्ण काम दिल्ली में हुआ। दिल्ली अंग्रेजी का गढ़ है। राष्ट्रीय समिति ने श्री अध्यात्म त्रिपाठी, आचार्य श्रीपाद केलकर और इन्दुमति जी को भार सौंपा था कि ये दिल्ली में अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन को संगठित करें। श्रीपाद जी और इन्दुमति जी ने काफी समय रहकर वहां काम किया। इसी बीच श्री सांवलदास गुप्त ने अंग्रेजी हटाओ सेना का गठन किया है।

गाँधी शताब्दी के अवसर पर पाखण्डियों का राजघाट पर जमावड़ा हुआ था। गांधी जी की समाधि पर सौ आदमियों का एक जत्था आया और पाखण्डियों के पाखण्ड को काटा। उस समय बादशाह खां के आंख की चमक कोई भी देख सकता था। यह काम अलग-अलग प्रदर्शन से न हो पाता जितना कि इन सौ लोगों ने कर दिखाया। इसके बाद ही अंग्रेजी हटाओ सेना के लोगों ने केन्द्रीय लोक सेवा आयोग पर हमला बोल दिया। वहां इक्कीस लोग गिरफ्तार हुए। उस दिन लोक सेवा आयोग के अफसरों को अहसास हुआ कि हमारा झूठ खुल रहा है। इस आन्दोलन को आगे और तेजी से चलाना है।

बम्बई में चल रहे क्रिकेट जैसे सामंती खेल के खिलाफ और अंग्रेजी में आंखों देखा हाल सुनाने के विरोध में नई दिल्ली के आकाशवाणी भवन पर चौबीस घण्टे का धरना दिया गया। लगातार इस पर तर्क-वितर्क चलता रहा। चौबीस घंटे अखण्ड शास्त्रार्थ चला। वहां सभी लोग आते-जाते रहे। कोई गिरफ्तारी नहीं हुई।

इन सब आंदोलनों के लिए पूर्व सूचना की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी के खिलाफ स्वयं स्फूर्त प्रदर्शन, आंदोलन हर जगह हों। आकाशवाणी वगैरह में जो अन्दर काम करते हैं वे इतन कुढ़े हैं कि अंग्रेजी फैलाने वाले यन्त्रों को अगर आप एक तोड़ेंगे तो वे तीन तोड़ेंगे। जरूरत है पहल की। ये पाखण्डी अंग्रेजीपरस्त शीशे के मकान में हैं। इन शीश महलों को ध्वस्त करने की जरूरत है।

उत्तर-प्रदेश में इण्टर में पांचवां अनिवार्य विषय अंग्रेजी रखने के खिलाफ युवजनों ने आंदोलन चलाया। आन्दोलन के दबाव से श्री चन्द्रभानु गुप्त की सरकार ने अंग्रेजी हटाओ आंदोलन के मुकद्दमों को वापस लिया। उच्च न्यायालय में हिन्दी में काम करने की व्यवस्था हुई। लेकिन अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी चलने का कोई मतलब नहीं। हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी की आरती उतारी जाती है। इस्तेमाल अंग्रेजी ही की जाती है। यह ढोंग अब बन्द होना चाहिए। उत्तर-प्रदेश का राज्य अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन वाराणसी में हो, यह न्योता काशी विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष श्री मार्कण्डेय सिंह ने दिया है।

ऐसे प्रदेश जो हमारे देश की राजनीति के भूगोल से कटे से रहते हैं वहां पर भी हमारा आन्दोलन है। श्री रमण शांडिल्य उर्वसीअं में इस आन्दोलन को फैला रहे हैं। ये वहां की बोलियों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं और सरकार अंग्रेजी लाद रही है। इन लोगों ने खास तौर पर युवजनों को उर्वसीअं आने का न्योता दिया है। उर्वसीअं के अलावा अंडमन निकोबार टापू में भी हमारे आन्दोलन की नींव पड़ गई है। इन टापुओं पर रूसियों और अमरीकियों की निगाह है। वहाँ कुछ युवा प्राध्यापक इस आंदोलन को चला रहे हैं। इसी तरह गोवा में अनास्तासीओ अल्मेदा अंग्रेजी हटाओ की चर्चा चलाते रहते हैं।

कलकत्ता में जहां नकली वामपंथ चल रहा है, विजय ढांढनियाँ ने सराहनीय कार्य किया है। वहां पर शीघ्र ही राज्य सम्मेलन होगा। पश्चिमी बंगाल के विधायक श्री अमलेश मजूमदार का न्योता है कि अगला अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन उनके क्षेत्र में हो। हम लोग तय करें। अबकी बार बंगाल में या तमिलनाडु में अपना खम्भा गाड़ें। जालपाईगुड़ी में संयुक्त छात्र समाज के युवजनों ने जबरदस्त आन्दोलन अंग्रेजी हटाने का चलाया है।

अध्यात्म त्रिपाठी, प्रमोद कुमार गुप्त, डाक्टर युगेश्वर तो इस आन्दोलन के अभिन्न अंग हैं, और इसना सक्रिय सहयोग हमेशा मिलता रहा है। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के केन्द्रीय कार्यालय से हमें बराबर सहयोग मिला है। आशा है आगे भी समर्थन मिलता रहेगा। श्री जार्ज फर्नांडीस ने ऐसा आश्वासन दिया है। कमलेश जी व्यंकट राम जी, बाबूलाल शास्त्री, चन्द्रशेखर जी, जनक, सुरेन्द्र, रामसूरत तथा अन्य मित्रों ने बराबर बहुमूल्य काम किया है।

हम संसोपा के अलाबा दूसरी पार्टियों से भी सम्पर्क कर रहे हैं। सर्वश्री त्रिगुण सेन, भगवत झा आजाद, सिद्धेश्वर प्रसाद वगैरह खुलकर साथ नहीं आते। गुजरात में ठाकोर भाई देसाई का समर्थन मिलना बड़ी बात है। सर्वश्री अटलबिहारी बाजपेयी, प्रकाशवीर शास्त्री, बलराज मधोक, श्री नम्बूदरीपाद तथा अन्य दलों के अध्यक्षों से सम्पर्क किया गया है। आशा है भविष्य में यह सम्बन्ध दृढ़ होगा।

अब श्री चन्द्रभान जी गुप्त का सहयोग मिलेगा। श्री भोला पासवान शास्त्री तो अपनी कमेटी में भी हैं और बिहार विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु का सहकार मिलता रहा है।

पुरी में सम्मेलन का न्योता बरकरार है और हम लोगों को समुद्र का निमन्त्रण है। उड़ीसा में अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन इस साल रंग लाया। भुवनेश्वर में युवजनों ने विश्वविद्यालय के उपकुलपति को लिखकर दिया कि दीक्षांत समारोह अंग्रेज़ी में न होकर उड़िया में हो। अगर दीक्षान्त समारोह अंग्रेजी में हुआ तो हम लोग उसे चलने नहीं देंगे। रात के दो बजे सारा अंग्रेजी भाषण उड़िया में अनूदित हुआ और सारी कार्रवाई उड़िया में हुई। यह भी आश्वासन मिला कि उड़ीसा के तीनों विश्वविद्यालयों में उड़िया में ही काम होगा।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के कारण इन्दौर विश्वविद्यालय से अनिवार्य अंग्रेजी हट गई।

दिल्ली, इन्दौर और सागर में राष्ट्रपति के अंग्रेजी भाषण का डट कर विरोध हुआ। अंग्रेजी हटाओ में मान्यता रखने वाले युवजनों ने इसकी खातिर कष्ट झेला।

यह रपट अधूरी है। बहुत से स्वतः स्फूर्त काम हुए हैं। अंग्रेज़ी हटाओ पत्रिका में समय-समय पर छपे हैं। बहुत से अभी अज्ञात ही है। इसमें आप अपनी जानकारी से जो चाहें, जहां चाहें जोड़ सकते हैं।

अंग्रेजी हटाओ पत्रिका इतिहास का निर्माण करने वाली पत्रिका है। इसके चलाने में बड़ी कठिाइयां हैं। हम इसे अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के बारे में खोज और खबर की पत्रिका बनाना चाहते हैं। आप खबर बनाइये और भेजिये।

एक सूचना और दे दूं। राजनारायण जी की सहायता से बनारस में अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन के केन्द्रीय कार्यालय के लिए समता घर में एक कमरा बन गया है। अभी एक हाल बनवाना है।

लुधियाना में अंग्रेजी हटाने का काम धर्म के काम की तरह हो रहा है। पंजाब के सम्मेलन हो चुके हैं। पुस्तिकाएं छपी हैं, विधायकों से अपील की गई है। अंग्रेजी में नामपट और ठप्पे न हों इसकी कोशिश हुई है। श्री हरिदत्त शास्त्री और उन के साथी इस काम को गहरी निष्ठा से कर रहे हैं।

भविष्य के लिए मेरा सुझाव है कि राजकाज में अंग्रेजी पर सीधी चोट करें। अफसरशाही को निशाना बनाएं। अफसर ही राज चलाता है। मन्त्री जनता का प्रतिनिधि होता है, इसलिए अड़ सकता है, लेकिन अफसर झुकेगा। अब नामण्टों को हटाने आदि पर कम जोर दें तो भी चलेगा। वह तो हो ही। लेकिन प्रधान चेष्टा अफसरशाही पर हो। उत्तर भारत में एक केन्द्र चुनें। जैसे इलाहाबाद में लोकसेवा आयोग की अंग्रेजी परीक्षाओं को असम्भव कर दें और इसी तरह हैदराबाद या बंगलौर में।

विश्वविद्यालयों में आजकल जो मिश्रित भाषा चलाई जा रही है, खतरनाक है। यह उसी तरह खतरनाक है जिस तरह मिश्रित अर्थव्यवस्था। उसमें ज्ञान न अंग्रेजी वाला मिलता है, न देशी भाषा वाला, अज्ञान दोनों ही का आ जाता है।

अगर आकाशवाणी को ठीक कर दें तो अंग्रेजी में खबर फैलाने वाला एक केन्द्र बन्द हो जाएगा। आकाशवाणी भवन में घुसकर अंग्रेजी में देश के लिए समाचार प्रसारण बन्द करायें। अंग्रेजी में अखबार भेजने वाले टेलीप्रिंटर को तोड़ें। अगर पी. टी. आई. की एकाध मशीन भी तोड़ दें और आकाशवाणी को एक घंटे के लिए भी बन्द करा दें तो बहुत कुछ हो जाए। समाचार का शुद्ध संचार शुरू हो।

अंग्रेजी हटाओ का अन्तर्राष्ट्रीय विभाग भी खोला जाना चाहिए। यह विभाग एशिया-अफ्रीका के भाषा आन्दोलनों को जोड़ने का काम करे और उनका नेतृत्व करे। इसकी जिम्मेदारी वैदिक सम्हालें। ये जो भी काम करते हैं अच्छा करते हैं। अन्त-राष्ट्रीय विभाग भी अच्छा चलाएंगे।

ध्वंस के बिना सृजन नहीं हो सकता। बीज की जब खोल फूटती है तो ही नया अंकुर निकलता है। लेकिन आन्दोलन के लिए सृजन आवश्यक है। सृजन न हो तो निष्ठा टिक नहीं पाती। बिखर जाती है। अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग को तत्काल खत्म करने में मानने वालों का भारतीय भाषा संस्थान बने। गुजरात में रचनात्मक प्रवृत्ति के लिए जमीन तैयार है। ठाकोर भाई देसाई और जनार्दन राम नागर के सहकार से यह संस्थान सम्भव है। इसमें बुद्धि विलास के लिए खोज न हो, बल्कि परिवर्तन के लिए हो। गुजरात या राजस्थान में इसका केन्द्र बन सकता है।

अन्त में मैं पुनः आप सब के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं। आप सभी का जो यहां आये हैं, या किसी कारणवश नहीं आ सके हैं, सभी का अटूट स्नेह और समर्थन मिला। इससे मुझे बल मिला। अभारी हूं। आशा करता हूं कि आने वाले दिनों में अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन तेज और ज्यादा तेज होगा और जल्द अपना लक्ष्य हासिल करेगा।

(अहमदाबाद सम्मेलन में पहली मार्च १९७० को दिये गये वक्तव्य के आधार पर प्रस्तुत)

———

अंग्रेजी दासता को सार्वजनिक और सरकारी व्यवहार से खतम करना न सिर्फ हमारी राष्ट्रीयता बल्कि अन्तर-राष्ट्रीयता का भी तकाजा है।

विजय नारायण देव साही

———

प्रथम अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

नासिक—२८, २६ अक्तूबर १६५६ ई०

स्वागताध्यक्ष—मराठी के सुप्रसिद्ध कवि श्री कुसुमाग्रज

उद्घाटन—मराठी के ख्याति प्राप्त साहित्यकार श्री गजानन त्र्यम्बक माडखोलकर

अध्यक्ष—आसाम के प्रख्यात उपन्यासकार श्री वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

शुभकामना संदेश—

१. श्रीमगन भाई देसाई, हरिजन के सम्पादक और गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति
२. श्री के० ही० पुटप्पा, मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति
३. श्री मोहनलाल भट्ट, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मन्त्री
४. श्री काका साहब कालेलकर, सदस्य लोकसभा
५. श्री महा पंडित राहुल सांकृत्यायन, मसूरी
६. सेठ गोविन्ददास, नई दिल्ली
७. श्री चपल कान्त भट्टाचार्य, सदस्य लोकसभा, बंगाल
८. डा० एन० वी० कृष्ण वारियर सम्पादक दैनिक 'मातृभूमि' कोजीकोड
९. श्री ज० ल० क० जलाली, प्रधानमंत्री, काश्मीरी पंडित युवक सभा, श्रीनगर
१०. श्री राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
११. श्री छत्र ध्वज शर्मा, मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल
१२. श्री कृष्ण केशव क्षीरसागर, अध्यक्ष, महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पुणे
१३. श्री वी० स० खाण्डेकर, कोल्हापुर
१४. श्री वि० गाडगिल, पुणे
१५. सम्पादक 'नयी दुनिया' दैनिक इन्दौर
१६. सम्पादक 'नव भारत' दैनिक भोपाल
१७. श्री जितेन्द्रनाथ दास, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रीय प्रैस कामगार यूनियन
१८. श्री अनन्त काणेकर, मराठी साहित्यकार

१९. आचार्य प्रह्लाद केशव अत्रे, मराठी साहित्यकार
२०. श्री वा० न० कुलकर्णी, मराठी साहित्यकार
२१. श्री शा० मि० जोशी, मराठी साहित्यकार
२२. श्री मस्ती व्यंकटेश अय्यंगार, कन्नड साहित्यकार, बंगलूर
२३. श्री नीलमणि फूकन, असमी साहित्यकार
२४. श्री नवकृष्ण चौधरी, उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री
२५. श्री महावीर शास्त्री, सदस्य लोकसभा, पंजाब
२६. श्री मोतीसिंह ठाकुर, सदस्य लोकसभा, गुजरात

सम्मेलन में श्री वणक्कल एन० दोरायबाबू, तमिलनाड, श्री वीरभद्रराव, श्री इमाम बेग रौनक आन्ध्र प्रदेश और प्रत्येक सूबे से अनेक व्यक्तियों ने भाग लिया। इंगलिस्तान की एक समाजवादी, कुमारी जैनेट इरविन ने भी सम्मेलन में भाग लिया और कहा कि, "सार्वजनिक कामकाज में एक विदेशी भाषा का इस्तेमाल करना हिन्दुस्तानियों के लिए शर्म की बात है।"

सम्मेलन के प्रस्ताव

1. अंग्रेजी हटाओ और लोक भाषाएँ प्रतिष्ठित करो।

सह भाषा के रूप में अंग्रेज़ी को अनिश्चित अवधि तक कायम रखने के केन्द्रीय सरकार के निर्णय का अंग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन का यह प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन पूर्णतया विरोध करता है। भारतीय संविधान में उद्घोषित भाषानीति के न केवल खिलाफ यह निर्णय है बल्कि हिन्दी और देश की सभी लोक भाषाओं को अपना सुयोग्य स्थान प्राप्त करने के रास्ते में यह एक बड़ा रोड़ा है। अंग्रेजी को धीरे धीरे हटाने की बारह बरसों की सरकारी नीति का और काम का यह स्वाभाविक दुष्परिणाम है। जब तक सार्वजनिक व्यवहार में अंग्रेजी का प्रभुत्व है, तब तक हिन्दुस्तानी या मराठी, गुजराती, तमिल या अन्य किसी लोक भाषा को विकसित और सम्मानपूर्ण जीवन जीने की कोई आशा नहीं है।

इसलिए यह सम्मेलन सभी भाषा भाषी भारतीयों का आवाहन करता है कि वे इस सरकारी फैसले का अपनी पूरी शक्ति से विरोध करें और यह मांग करें कि अंग्रेजी को देश के सार्वजनिक जीवन से तत्काल हटाया जाये।

अंग्रेजी हटाने का सम्बन्ध देश में लोकतन्त्र व समानता प्रस्थापित करने के प्रयासों से है। अंग्रेजी के रहते प्रजातन्त्र झूठा है। अंग्रेजी रहने से समानता भी असंभव है। शासक वर्ग का अंग्रेजी के प्रति चालू मोह हिन्दुस्तान की संस्कृति की आन्तरिक फूट का सबसे बड़ा लक्षण है, जिसके अनुसार एक तरफ है लोक भाषा, लोकभूषा, लोक भोजन और लोक भवन तथा दूसरी तरफ है सामन्ती भाषा, भूषा, भोजन और भवन। पिछले पन्द्रह सौ बरसों से चलती आयी इस फूट ने आज जो

रूप धारण किया है, उसके अनुसार एक तरफ तो है शासक वर्ग की सामन्ती भाषा अंग्रेजी और दूसरी तरफ है देश के जन साधारण की लोक भाषाएँ। अंग्रेजी के जरिये शासक वर्ग लोगों के मन में यह हीन भावना पैदा करना चाहता है कि वे गंवार हैं और राजकाज के लायक नहीं।

कहा जाता है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों का हिन्दी से विरोध होने के कारण अंग्रेजी को रखना जरूरी है। यह सरासर असत्य है। असम, तमिलनाड, बंगाल में वहां की जन भाषाओं को और मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान इन जिन हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी को एकमेव राजभाषा बनाने की अड़चन नहीं है, फिर भी वहाँ अंग्रेजी को ही रक्खा गया है। इससे साफ होता है कि अहिन्दी भाषियों के हिन्दी विरोध का यह कारण अपना अंग्रेजी के प्रति मोह छिपाने के लिए उठाया गया है। असल में हिन्दी, बंगला, मराठी, उड़िया, उर्दू आदि लोकभाषाओं में आपस में कोई संघर्ष नहीं है। झगड़े की जड़ है विदेशी अंग्रेजी भाषा जिसके साथ लोकभाषाओं का एक साथ संघर्ष है।

सम्मेलन सभी प्रदेशों के लोगों को आग्रह पूर्वक आवाहन करता है कि वे अपने-अपने सूबों में "अंग्रेजी को हटाकर प्रादेशिक भाषाओं का सभी सार्वजनिक क्षेत्रों में उपयोग किया जाए" इस माँग पर बल दें और उसके लिए प्रखर आन्दोलन करें।

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन देश की जनता को आह्वान करता है कि वह अंग्रेजी के सार्वजनिक इस्तेमाल से घृणा करे, उन लोगों का तिरस्कार करे जो इस सामन्ती भाषा का सार्वजनिक इस्तेमाल करते हैं और इस बात पर शरमाएं नहीं कि उसे अंग्रेजी नहीं आती, बल्कि घमंड करे कि उसे अपनी-अपनी लोकभाषाएँ आती हैं और उनके जरिये विषय ज्ञान की तरफ रुचि है और अंग्रेजी से उसे मतलब नहीं। सामन्ती भाषा और भूषा से नफरत किए बिना अब देश में लोकराज चलना सम्भव नहीं। सम्मेलन जनता से निवेदन करता है कि वह इसके प्रस्तावों पर अमल करें।

२. अंग्रेजी और शिक्षा

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की निश्चित राय है कि हर प्रकार और हर स्तर की शिक्षा से अंग्रेजी का माध्यम तत्काल खतम किया जाए। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन भी एक ऐच्छिक विषय रहे।

अंग्रेजी का माध्यम हटाए बिना देश में विषय ज्ञान, जैसे विज्ञान, इतिहास, रसायन, फिजिक्स इत्यादि की वृद्धि नहीं हो सकती और अंग्रेजी के निर्जीव भाषा ज्ञान में ही लोग उलझे रहेंगे। इसलिए सम्मेलन देश के सभी विद्यार्थियों और विशेषकर विद्यार्थी संगठनों को राय देता है कि वे अंग्रेजी के माध्यम अथवा जरूरी पढ़ाई में अड़ंगा डालें।

आवश्यक अंग्रेजी के विषय और अंग्रेजी के माध्यम का एक नतीजा यह भी हो

रहा है कि लोकशाही निखर नहीं पाती और सामन्त शाही को बल मिल रहा है। ऊँची सरकारी नौकरियों जैसे कलेक्टर इत्यादि की परीक्षा में अंग्रेजी का माध्यम होने के कारण ९० प्रतिशत जनता के बच्चों को ऊँचा उठने का मौका नहीं मिलता। सम्मेलन हिन्दुस्तान की सरकारों से मांग करता है कि वे अपनी परीक्षाओं से अंग्रेजी के माध्यम को तत्काल खतम करें और जनता से निवेदन करता है कि ऐसे परिवर्तन के लिए मत संगठित करे।

उच्च शिक्षित लोगों की संख्या को कम रखने के लिए भी सामन्तों ने अंग्रेजी को अपना हथियार बनाया है, और ऊँचे दर्जे की पढ़ाई को छोड़ दें तो भी दसवें दर्जे की परीक्षा में हर साल लाखों विद्यार्थी फेल करते है, जो सभी विषय ज्ञान और अपनी-अपनी भाषाओं में पास करते हैं, किन्तु अंग्रेजी में फेल कर जाते है। राष्ट्र के धन और समय के इस नाश पर और लाखों बच्चों के अकारण हानि पर सम्मेलन को दुःख है। अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन सभी विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों से अपील करता है कि जब मैट्रिक परीक्षा के नतीजे निकलें तब सभा, जलूस और दूसरे जनमत के द्वारा अधिकारियों से मांग करें कि उन सभी को पास किया जाय जो केवल अंग्रेजी में फेल हों।

सम्मेलन नोट करता है कि सामन्तों के विशेष प्रकार के स्कूलों में राजकीय शालाओं के नियम लागू नहीं होते और बहुत छोटी उमर में ही अंग्रेजी को माध्यम और जरूरी विषय चलाये जाते हैं। सम्मेलन की राय में ऐसे स्कूल देश ध्वंसक हैं और इन्हें तत्काल बन्द किया जाये।

सम्मेलन की राय में स्नातक तक की शिक्षा के लिए इलाके की भाषा को माध्यम बनाया जाए; स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए हिन्दी को। फिर भी यदि कोई विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय किसी भी स्तर पर हिन्दुस्तानी को माध्यम नहीं बनाना चाहता तब उसे सभी स्तरों पर अपनी लोकभाषा को माध्यम बनाने का अधिकार हो।

सम्मेलन इस तर्क को नहीं मानता कि हिन्दुस्तान की भाषाओं में सभी प्रकार की शिक्षा के लिए समुचित ग्रन्थ नहीं अथवा जल्दी नहीं बन सकते। सम्मेलन मानता है कि देश में विद्यालयों और शिक्षकों की इतनी तायदाद है कि सभी प्रकार के शिक्षा ग्रन्थों का तीन महीने के अन्दर अनुवाद हो जाए अथवा लिख लिए जाएँ।

३. दुकानदारों के नाम पट

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन देश भर के दुकानदारों से निवेदन करता है कि वे अपने नामपटों से अंग्रेजी भाषा और अक्षरों को हटाएँ और अपनी पुजियों, हिसाब-किताब, विज्ञापन इत्यादि से भी। सम्मेलन आशा करता है कि सभी नगरों की अंग्रेजी हटाओ समितियाँ दुकान-दुकान जाकर इन संदेश को पहुँचाएंगी और जलूस, अभियान इत्यादि भी निकालेंगी।

४. अंग्रेजी के दैनिक

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की राय है कि हिन्द सरकार ने अपनी अंग्रेजीपरस्त नीति के कारण ही अंग्रेजी के दैनिक अखबारों को बढ़ावा दे रखा है और लोकभाषाओं के दैनिकों को दबा र खा है। यदि दूर मुद्रक और तार अंग्रेजी भाषा में न चलें तो एक सप्ताह के अन्दर देश के सभी अंग्रेजी दैनिक बन्द हो जाएँ। सम्मेलन जनता से निवेदन करता है कि दूर मुद्रकों और तार से अंग्रेजी की हकाल पट्टी के लिए प्रबल मत गठित करें।

अंग्रेजी हटाओ समितियों को भी सम्मेलन निर्देश देता है कि सभाओं, शपथों इत्यादि के द्वारा अंग्रेजी दैनिकों के बहिष्कार की प्रवृत्ति जनता में जगाएं। सम्मेलन यह साफ कर देना चाहता है कि दैनिकों-सम्बन्धी इस नीति को पुस्तकों, मासिकों आदि पर लागू नहीं करना चाहिए।

५. अदालतों में लोक भाषाएँ

सम्मेलन की निश्चित राय है कि सभी स्तरों की अदालतों का काम तत्काल लोक भाषाओं में होना चाहिए। अच्छा तो यही हो कि जिला स्तर की अदालतों का काम इलाके की लोकभाषा में हो और उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय का काम हिन्दुस्तानी में। यदि किसी इलाके के लोग अपने उच्च न्यायालय का काम हिन्दुस्तानी में न चलाने की जिद पर अड़े हों तब अच्छा होगा कि वे अपना उच्च न्यायालय अंग्रेजी में न चलाकर अपनी लोकभाषा में चलाएँ।

न्याय की पहली शर्त है कि वादीप्रतिवादी और लोग इसकी प्रत्येक कड़ी और उसके फैसले को समझें। जिसे लोग समझते नहीं, उसे न्याय कहना धोखे का काम है।

सम्मेलन लोगों से अपील करता है कि वे और खास कर गाँव के किसान या शहर के गरीब, जिनका अदालतों से खर्चीला और दुःखदायी सम्बन्ध होता है, ऐसा मत संगठित करें कि अदालतों की कार्यवाही अंग्रेजी में न हो पाये।

६. संगठन

सम्मेलन आशा करता है कि विभिन्न प्रदेशों और नगरों में अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन यथा शीघ्र कर लिए जाएंगे और उनके फलस्वरूप अंग्रेजी हटाओ समितियों का निर्माण होगा अथवा जहां वे बन चुकी हैं वहां और मजबूत होंगी। इन समितियों का निर्माण करते समय ध्यान इस बात पर देना है कि सदस्य सोत्साह और दृढ़ता पूर्वक 'अंग्रेजी हटाओ' के विभिन्न कार्यक्रमों का चलाता है न कि उसकी प्रतिष्ठा और नाम पर। इस पर भी पूरा ध्यान रखा जाए कि अलग अलग पेशों और क्षेत्रों जैसे मोहल्ले वगैरह के लोग अपनी अपनी समितियों में शामिल हों, विशेषकर उन वर्गों के लोग, जैसे विद्यार्थी, दुकानदार, किसान, अध्यापक वगैरह जिन पर अंग्रेजी का मारक हमला होता है।

—१९५९ अक्तूबर २८–२९, नासिक।

———

द्वितीय अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

उज्जैन—७ से १० जनवरी, १९६१ ई०

स्वागताध्यक्ष—श्री शिव प्रताप सिंह, सम्पादक दैनिक, 'भास्कर" उज्जैन।

उद्घाटन—मराठी की सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और समाज शास्त्री मालती बाई बेडेकर।

अध्यक्ष—अलग-अलग अवसरों पर अलग व्यक्तियों ने अध्यक्षता की। नाम ये हैं—पूना के प्रसिद्ध वकील श्री वि० गाडगिल, हिन्दी के साहित्यकार श्री भगवतशरण उपाध्याय, राम मनोहर लोहिया, बंगाल के श्री शंकर मुखर्जी, आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के सदस्य वंदेमातरम् राम चन्द्र राव, उड़ीसा के श्री रविराय, मध्य प्रदेश के श्री छोटेलाल भारद्वाज, श्रीमती यशोदा देवी, मध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्य श्री नत्थू भाई, माधव कालेज के डा० मुले।

शुभकामना संदेश—हिन्दी साहित्य सम्मेलन और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की विभिन्न शाखाओं के अतिरिक्त अनेक संदेश आए। कुछ नाम ये हैं—श्री राहुल सांस्कृत्यायन, श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र, श्री इन्दुलाल याज्ञिक; श्री उदयनारायण तिवारी, डा० रघुवंश, श्री यदुनाथ यत्ते, श्री ज्योति प्रसाद निर्मल, श्री कृष्णदत्त पालीवाल, श्री हेमकुमार तिवारी, श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, श्री पाद-दामोदर सातवलेकर, श्री धर्मवीर भारती, श्री नरदेव शास्त्री और श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द। सत्याश्रम, वर्धा के स्वामी सत्यभक्त तथा श्री सूर्य नारायण व्यास ने जो सम्मेलन में उपस्थित थे स्वयं ही अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं।

सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम हैं—
महाराष्ट्र—जार्ज फर्नांडिस, मधुलिमये, वसन्तवाणी;
गुजरात—परमार, भानुशंकर जोशी, प्राणुभाई भट्ट;
आन्ध्रप्रदेश—इमाम वेग रौनक, मज़हरूद्दीन, अब्दुस्सुभान;
तामिलनाड—नल्लशिवम्, दोराय बाबू, सुन्दरम्, आरमुगम;
बंगाल—शंकर मुखर्जी, उड़ीसा—सच्चिदानन्द।
उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान से भी अनेक प्रतिनिधि आए थे।

सम्मेलन के प्रस्ताव

१. संसद-विधान सभा

अंग्रेजी हटाओ सम्सेलन जनता से प्रार्थना करता है कि वह अपना वोट चुनावों में उन सदस्यों को न दें जो विधान सभाओं व लोकसभा आदि में अंग्रेजी में बोलते हैं। सम्मेलन उपर्युक्त समितियों को हिदायत देता है कि इस प्रस्ताव की सूचना मिलने के बाद भी जो विधायक अंग्रेजी बोलना न छोड़ें उनके खिलाफ वे आवश्यक कार्यवाही करें।

२. उच्च न्यायालय की भाषा

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन राज्य सरकारों और विधायकों का ध्यान संविधान की धारा ३४८ की ओर खींचता है जिससे हर राज्य को अधिकार है कि वह उच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी की जगह हिन्दी या और कोई लोकभाषा घोषित करे। सम्मेलन उन सभी विधायकों से अपील करता है कि जो लोकभाषा के समर्थक हैं और जिनका राज्य अब भी उच्च न्यायालय से अंग्रेजी नहीं हटाता कि वे आवश्यक कार्यवाही करें।

३. दुकानें और अंग्रेजी

यह सम्मेलन जनता से अपील करता है कि वह ऐसी दुकानों से खरीदना बन्द करे जिनके नामपट वगैरह अंग्रेजी में हैं।

४. अंग्रेजी की पढ़ाई

सम्मेलन की राय है कि अंग्रेजी की पढ़ाई लाजमी न होकर ऐच्छिक हो। इस लिए सभी सरकारी नौकरियों के लिए दुभाषियों जैसी नौकरी छोड़कर, अंग्रेजी जानना गैर जरूरी हो। सारी पढ़ाई का माध्यम हिन्दुस्तानी या और कोई लोकभाषा हो। सम्मेलन जनता, विद्यार्थी, अभिभावक और लोकतन्त्री अध्यापकों से जरूरी कार्यवाही के लिए प्रार्थना करता है।

५. अंग्रेजी हटाओ समितियों से अनुरोध

सम्मेलन गैर हिन्दी इलाकों के अंग्रेजी विरोधी लोगों और अंग्रेजी हटाओ समितियों से अनुरोध करता है कि वे प्रादेशिक मामलों में अंग्रेजी की जगह प्रादेशिक भाषा के इस्तेमाल पर जोर दें।

६. विद्यार्थी पत्रक

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के मौके पर जुटने वाले पूरे देश के विद्यार्थी प्रतिनिधियों का यह सम्मेलन शिक्षा के अन्दर घुसी सड़ांध के खिलाफ रोष दिखाता है। यह सम्मेलन विद्यार्थियों को न्योता देता है कि वे राजनीति और शिक्षा

नीति के ऐसे व्यापक और सर्वमान्य आधार गढ़ें जिनसे मन जागे, बुद्धि चमके और देश उठे। ऐसे विद्यार्थी पत्नक का प्राण हो कि भारत माता की कटती जीभ उसे वापस मिले जिसके आधार हों :—

१. केवल अंग्रेजी के पर्चे में फेल और बाकी सब विषयों में पास विद्यार्थियों को पास किया जाय।

२. कालेज और विश्वविद्यालय प्रवेश पर लगी सभी बंदिशों को खतम किया जाए और जो कोई निचले दर्जे में पास है और अगले दर्जे में पढ़ना चाहता है उसकी भर्ती निर्बन्ध हो।

३. ऊँची से छोटी, सभी सरकारी नौकरियों के लिए अंग्रेजी का जानना गैर जरूरी हो।

४. शिक्षा से अंग्रेजी का माध्यम खतम हो।

सम्मेलन तमाम देश के विद्यार्थियों से अनुरोध करता है कि वे इस विद्यार्थी पत्नक के आधार पर पास, भर्ती और माध्यम समितियों का सब जगह निर्माण करें और सभी शान्ति पूर्ण तरीकों से आगे बढ़ें।

७. औद्योगीकरण और ज्ञान

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन की राय है कि अंग्रेजी के द्वारा देश का औद्योगीकरण और नये ज्ञान विज्ञान का प्रसार नहीं हो सकता। बड़े लोगों का दिमाग मुहावरे बाजी और व्याकरण के चक्कर में फंस कर सच्चे विषय ज्ञान से विमुख रहता है। जिन लाखों करोड़ों के नये ज्ञान विज्ञान पर आधुनिकता की इमारत रची जाती है वे अंग्रेजी विहीन रहते हुए आधुनिक नहीं हो पाते। इसलिए सम्मेलन देश का औद्योगीकरण और नवीकरण हिन्दुस्तानी तथा दूसरी लोक भाषाओं के द्वारा ही सम्भव समझता है।

सम्मेलन की राय है कि पारिभाषिक शब्द केवल सरकारी समितियों में नहीं बन सकते बल्कि इस्तेमाल के द्वारा आपो आप गढ़ते रहते हैं। नये ज्ञान-विज्ञान की सभी पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद, अध्यापकों के बाहुल्य को देखते हुए, एक बड़ी छुट्टी में तैयार हो सकते हैं। सम्मेलन यह बात साफ कर देना चाहता है कि जो लोग अंग्रेजी के सार्वजनिक इस्तेमाल को फौरन खतम करना चाहते हैं वे हर किसी शब्द के इस्तेमाल के लिए तैयार रहेंगे, शुद्ध-अशुद्ध के गैर जरूरी झगड़े न खड़े करेंगे और आशा करेंगे कि इस्तेमाल के दौर में विदेशी शब्दों में से गैर जरूरी गिर जाएंगे और जरूरी घिसकर देशी बन जाएंगे।

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की सुनिश्चित राय है कि सुविधाओं या सम्भावनाओं की कमी के कारण नहीं बल्कि इच्छा न रहने के कारण भारत मां को अपनी जीभ नहीं मिल रही है। क्योंकि शासक वर्ग में, जो कि देश के सभी राजकीय दलों को चलाता

है, इस इच्छा का जगाना मुश्किल है, इसलिए सम्मेलन हिन्दुस्तान की जनता का आह्वान करता है कि वह अंग्रेजी हटाने की अपनी इच्छा को बलबती बनाए, जगह-जगह समितियां बनें, जगह-जगह सम्मेलन और गोष्ठियां हों, जगह-जगह प्रदर्शन हों। सम्मेलन यह भी सिफारिश करता है कि हिन्दी तथा दूसरी लोकभाषाएँ पीछे देखू न बनें अपितु आधुनिकता की प्रतीक तथा माध्यम बनें।

८. चुनाव

किसी भी दल के ऐसे उम्मीदवार का समितियाँ समर्थन कर सकती है जो सम्मेलन के उद्देश्यों को स्वीकार करे। ऐसा एक से अधिक उम्मीदवार होने पर सभी का समान रूप से समर्थन किया जाए।

९. दैनिक अखबार

हर स्वतन्त्र देश में पुस्तक और पत्रिकाएँ विभिन्न विदेशी भाषाओं में छपती हैं किन्तु दैनिक अखबार सिर्फ अपनी भाषा में। हिन्दुस्तान के भी सभी दैनिक एक दिन में बन्द हो जायें अगर देश के तार और दूरमुद्रक अंग्रेजी में काम करने की देशद्रोहिता बन्द करें। सम्मेलन सरकार से मांग करता है कि अंग्रेजी दैनिकों का प्रकाशन असम्भव बनाए।

१०. सहभाषा

जब तक अंग्रेजी और हिन्दी या और कोई लोकभाषा सहभाषा के रूप में रहेगी, अंग्रेजी फलेगी-फूलेगी और लोक भाषा की क्षति होगी। रुतबा और दौलत अंग्रेजी की पढ़ाई और इस्तेमाल में बसेंगे और हिन्दी के नकली प्रचार से गैर हिन्दी इलाकों के मन उखड़ते रहेंगे। इसलिए, सम्मेलन की सुनिश्चित राय है कि अंग्रेजी से रुतबा और दौलत छीने बगैर लोकभाषाओं के पक्ष का प्रचार झूठा है। सम्मेलन लोकभाषा और अंग्रेजी के सहभाषा के सिद्धान्त को आखरी तौर पर ठुकराता है।

१९६१, जनवरी ७—१० ; उज्जैन

————

*मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिमत है कि जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। महात्मा गाँधी

*किसी हिन्दुस्तानी को जो केन्द्र की अंग्रेजी की गुलामी करता है किसी राज्य का मुख्य मन्त्री बनने का अधिकार न मिलना चाहिए। रघुवीर सहाय

————

तृतीय अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

हैदराबाद, १२ से १४ अक्तूबर, १९६२ ई०

स्वागताध्यक्ष—श्री बन्देमातरम् रामचन्द्र राव, सदस्य विधानसभा, आन्ध्रप्रदेश।
उद्घाटन —हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय प्रोफेसर सत्येन बोस (बोस विश्व के प्रख्यात वैज्ञानिक हैं और बोस आइंसटाइन सिद्धान्त सर्वविदित है।)
अध्यक्ष— श्री मगन भाई देसाई सम्पादक 'हरिजन' और गुजरात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति।

उर्दू के प्रख्यात साहित्यकार और फिल्म निर्देशक श्री ख्वाजा अहमद अब्बास और शिक्षा शास्त्री श्री घो० वि० देश पाण्डे, सदस्य विधान सभा महाराष्ट्र ने भी सम्मेलन में विशेष भाग लिया।

शुभकामना संदेश—डा० के०वी० पुटप्पा, काका साहब कालेलकर, डा० रघुवीर, श्री अमृतराय, श्री किशोरीदास वाजपेयी, श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, श्री वि० गाडगिल, श्री मेवालाल आजाद, श्री बैजनाथ प्रसाद दुबे, श्री पं० मु० डांगरे, श्री रमेश कुमार जैन, श्री इ० आ० असरानी, श्री बच्चनसिंह, श्री अजितकुमार, श्री भगवान दास, श्री ज्ञानी अर्जुनसिंह, श्री वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, श्री श्रीपाद जोशी. श्री ग० त्र्यं० माडखोलकर, श्री कुसुमाग्रज, श्री कृष्णवारियर, श्री धर्मवीर भारती, श्री रा० मे० माणकलाथ और श्री विश्वनाथ सत्यनारायण।

प्रस्ताव

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन देश की जनता को न्योता देता है कि वह अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग हटाने के लिये कमर कसे। सम्मेलन की निश्चित राय है कि भाषा की प्रतिष्ठा पहले होती है और विकास बाद में।

यह जानते हुए कि भाषा औजार है समझ का और अभिव्यक्ति का, सम्मेलन कहना चाहता है कि ये दोनों काम देश की भाषाओं को करने हैं, किन्तु विशेषज्ञ समझ के लिए और एक ऐच्छिक विषय के रूप में अंग्रेजी को दूसरी विदेशी भाषाओं के साथ रखा जा सकता है। बाकी सभी क्षेत्रों से अंग्रेजी को हटाना है।

सम्मेलन कहना चाहता है कि उसकी नीति संविधान के अनुकूल है और वह चेतावनी देना चाहता है कि संविधान के खिलाफ कोई काम न हो।

—१९६२ अक्तूबर १२—१४, हैदराबाद

चतुर्थ अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

वाराणसी—२०, २१, २२ सितम्बर, १९६८ ई०

संयोजक—श्री कृष्णनाथ

मन्त्री—श्री बद्री विशाल पित्ती

अध्यक्ष—श्री मगन भाई देसाई

इस सम्मेलन के प्रस्तावों का सार इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में "अंग्रेजी कैसे हटाएं ?" शीर्षक लेख (पृ० ४६) के अन्तर्गत आ चुका है अतः पुनरुल्लेख नहीं किया जा रहा।

———

पंचम अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

अहमदाबाद, २८ फरवरी, १ मार्च, १९७० ई०

स्वागताध्यक्ष—श्री तुलसी बोडा

मन्त्री—श्री कृष्ण नाथ

अध्यक्ष—आचार्य श्री श्रीपाद केलकर

प्रमुख प्रस्तावों के अंश

अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का पांचवां राष्ट्रीय अधिवेशन केन्द्रीय तथा राज्य-सेवा आयोगों से मांग करता है कि तत्काल केन्द्रीय और राज्य सरकार की नौकरियों में भरती के लिए विज्ञापन, लिखित और मौखिक परीक्षा ओर साक्षात्कार से अंग्रेजी का माध्यम और अनिवार्यता समाप्त करे।.........अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन और आन्दोलन को मानने वाले, विशेषकर विद्यार्थी और युवजन परीक्षा केन्द्रों में जबरदस्ती घुसकर परीक्षा के पर्चे, कापियाँ वगैरह फाड़ें और परीक्षा को असम्भव बनाएं।.........यह अधिवेशन ऐसे राजनेताओं की तीव्र भर्त्सना करता है जो भारत

की लोक भाषाओं के बीच झगड़े करवाने की कोशिश कर रहे हैं।......यह सम्मेलन हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारों से यह मांग करता है कि लोक भाषाओं के बीच अभिन्नता का वातावरण बनाने के लिए वे पहल करें और गैर हिन्दी भाषी राज्यों से सम्बन्ध एवं पत्रव्यवहार में उन्हीं राज्यों की भाषाओं का प्रयोग करने की व्यवस्था करें।............यह सम्मेलन महसूस करता है कि अंग्रेजी की अनिवार्य पढ़ाई और शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल से देश के विद्यार्थियों का हर साल प्रत्यक्ष छह सौ करोड़ घण्टा नष्ट होता है। अप्रत्यक्ष रूप से जो हीन भाव पनपता है, अज्ञान बढ़ता है वह प्रत्यक्ष का कम से कम तीन गुना है। अगर यह अज्ञात गुणक तीन माना जाए तो प्रति वर्ष अठारह सौ करोड़ घण्टे नष्ट हो रहे हैं।.........

अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन अनिवार्य शिक्षा और माध्यम के रूप में अंग्रेजी के इस्तेमाल को तत्काल खत्म करने के आन्दोलन को प्रभावी और परिणामकारी बनाने के प्रयत्न पर बल देता है। अंग्रेजी हटाने के साथ साथ अठारह साल मतदान की उम्र, बेकारों को काम या बेकारी भत्ता और विश्वविद्यालय प्रशासन में विद्यार्थियों को भागीदारी के आन्दोलन को यह सम्मेलन अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करता है।

———

*मैं बर्मा का रहने वाला एक विदेशी हूं। मेरा देश जिस दिन स्वतन्त्र हुआ उसी दिन से अपनी देशभाषा (बर्मी) को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देकर उसी का प्रयोग सर्वत्र कर रहा है। यहां तक कि संसद् में भी केवल बर्मी भाषा का ही प्रयोग होता है। जो सदस्य बर्मी नहीं जानते, जिनकी मातृभाषा बर्मी नहीं है उन्हें भी संसद् में बोलने के लिए बर्मी भाषा सीखनी पड़ती है।

भदन्त रेवत धर्म

*असमानता के विरुद्ध संघर्ष कई मोर्चों पर लड़ा जाना है और उनमें से एक मोर्चा अंग्रेजी के सार्वजनिक प्रयोग के विरुद्ध होना लाजमी है। रमेश चन्द्र तिवारी

*आज वह समय आ गया है कि हम इस बात का संकल्प लें कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद के भाषा रूपी अवशेष को हम समाप्त करके ही दम लेंगे।

सुरेन्द्र प्रसाद नारायण सिंह

———

पंजाब में अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन

पहला सम्मेलन

लुधियाना, ३० अगस्त, १९६८ ई०

सभापति—आचार्य श्री श्रीपाद केलकर (पुणे, महाराष्ट्र) अध्यक्ष—'अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन'

संयोजक—श्री हरिदत्त शास्त्री, प्रधान अंग्रेजी हटाओ समिति लुधियाना।

प्रमुख वक्ता—प्रो० विनयकुमार (दिल्ली)
श्री उदय प्रतापसिंह विद्रोही, अध्यक्ष विद्यार्थी संघ गोरखपुर विश्वविद्यालय
श्री राजकुमार जैन, अध्यक्ष विद्यार्थी संघ दिल्ली विश्वविद्यालय
श्री अध्यात्म त्रिपाठी, सहायक सम्पादक 'आज' वाराणसी
श्री ठाकुर यशपालसिंह, सदस्य लोकसभा,
श्री जार्ज फर्नांडिस, सदस्य लोकसभा

———

दूसरा सम्मेलन

लुधियना, २३ अगस्त १९६९ ई०
सभापति—श्री मधुलिमये सदस्य लोकसभा
संयोजक—श्री हरिदत्त शास्त्री
प्रमुख वक्ता—श्री अ० विश्वनाथन्
श्री इन्दुमति केलकर (पुणे)
श्री यज्ञदत्त शर्मा सदस्य लोकसभा

———

अंग्रेजी हटाओ समिति पंजाब के प्रथम सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये :—

१. **पंजाब प्रादेशिक अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का यह खुला अधिवेशन** भारत के समस्त विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा-विभागों से समस्त कक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त करने की सबल मांग करता है और इस मांग के पूरी होने तक केवल अंग्रेजी के कारण फेल होने वाले परीक्षार्थियों को पास करने पर जोर देता है। साथ

ही इसके अभाव में उत्पन्न होने वाले छात्र असन्तोष की सारी जिम्मेदारी विश्वविद्यालयों और शिक्षा विभागों पर डालता है।

२. जनता से यह अभ्यर्थना करता है कि वह अपने सभी घरेलु व्यवहार, पत्र, पते, तार, निमन्त्रण, शोक. बधाई आदि के पत्र, नाम-पट, हिसाब-किताब आदि में देशी भाषा का ही प्रयोग करें तथा जिन दुकानों के नामपट अंग्रेजी में हों उनका बहिष्कार करने की आदत डालें।

३. लोकसभा तथा राज्य सभा के अध्यक्षों से संसद् में समस्त देशी भाषाओं के प्रयोग की अनुमति की सबल मांग करता है, जिस से जनता के प्रतिनिधि जनता का प्रतिनिधित्व जनता की ही भाषा में कर सकें।

४. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों से मांग करता है कि किसी भी कार्यालय का कोई भी काम अंग्रेजी में न हो और किसी भी सरकारी नौकरी के लिये अंग्रेजी जानना जरूरी न हो।

लुधियाना
२९-१२-६८

हरिदत्त शास्त्री
प्रधान
अंग्रेजी उन्मूलन समिति, लुधियाना

नकोदर समिति के सम्मेलन

पहला सम्मेलन

नकोदर २२ अप्रैल, १९७३ ई०

सभापति—लाला जगतनारायण जी भूतपूर्व सदस्य राज्यसभा

संयोजक—प्रो० यज्ञदत्त जिज्ञासु एम० एस० सी०, महामन्त्री अंग्रेजी हटाओ समिति नकोदर

मुख्य वक्ता—कु० तृप्ता
कु० किरण चोपड़ा
प्रो० ठाकुरदत्त जोशी
प्रो० जगदीशराय (ज० ने० विश्वविद्यालय दिल्ली)
डा० रामप्रकाश एम० एस० सी० (पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़)
डा० वेद प्रताप वैदिक (मन्त्री अ० भा० अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन)

———

दूसरा सम्मेलन

नकोदर ३० नवम्बर, १९७४ ई०

सभापति—डा० रोशनलाल आहूजा (पंजाबी के शिरोमणि साहित्यकार)

संयोजक—प्रो० ठाकुरदत्त जोशी, प्रधान अंग्रेजी हटाओ समिति नकोदर

प्रमुख वक्ता—कु० आशा बी० ए०, बी० एड०

प्रिं० सुखदेव शर्मा

श्री बाबूराम अमर

प्रिं० अमरनाथ शर्मा

डा० वेदप्रताप वैदिक

जालन्धर समिति का सम्मेलन

जालन्धर, मई २५, १९७३ ई०

सभापति—श्री रमेशचन्द्र, सम्पादक दैनिक 'पंजाब केसरी' जालन्धर

संयोजक—श्री श्यामदेव शास्त्री, एम० ए०

प्रमुख वक्ता—श्री वेद अरोड़ा

डा० रमेश कुन्तल मेध

डा० वेद प्रताप वैदिक

---

*अपनी भाषा का साहित्य ही स्वजाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचना करने पर भी विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुँच सकता। अपनी माँ को निःसहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोंड़ कर जो मनुष्य दूसरे की माँ की सेवा सुश्रुषा में रत होता है उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञ वल्क्य या आपस्तम्ब ही कर सकता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

*मेरी विनम्र सम्मति है कि अंग्रेजी यदि ज्ञान विज्ञान की खिड़की है तो अपनी भाषा स्वयं अपनी आँख। और आज विचार करें तो सही कि खिड़की को खोलकर अपनी आँख फोड़ लेना कहाँ तक बुद्धिमानी है।

अनिल कुमार राय

हिन्दी का प्रयोग

सरकारी काम काज में
हिन्दी का प्रयोग करो
अंग्रेजी में परिपत्र कार्यालय से आया ।
सचिव ने उत्तर दिया
'बीइङ्ग डन'
दोनों अधिकारियों ने जेब में
वेतन डाला खनाखन
सभी कार्यालयों में हिन्दी का
प्रयोग हो रहा है दनादन ।

डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी
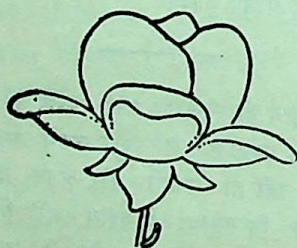
तृतीय खण्ड

आशीर्वाद और समर्थन

*मेरा यह सुनिश्चित मत है कि विदेशी भाषा के अनिवार्य रहने पर हमारे शिक्षार्थियों में राष्ट्रीय स्वाभिमान का विकास नहीं हो सकता। स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी को अनिवार्य रखना राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतिकूल है।

जय प्रकाश नारायण

*भारत में भारतीय भाषाओं की सार्वजनिक प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी हटाओ का आन्दोलन उतना ही आवश्यक और तर्क सम्मत है जितना स्वातन्त्र्य पूर्व युग में स्वदेशी की प्रतिष्ठा के लिए विदेशी वस्त्रों की होली जलाना।

धर्मवीर भारती

*'अंग्रेजी हटाओ' एक आन्दोलन मात्र नहीं, बल्कि पुण्य व्रत है, राष्ट्रधर्म है। अंग्रेजी के व्यामोह से देश को मुक्त कर हमें जन को ज़ड़ता एवं हीनता से उद्धार करना है।

अनिल कुमार राय

———

विषय औंर उनके लेखक

परदेशी भाषा की गुलामी

महात्मा गाँधी

मैंने सर राधाकृष्णन् से पहले ही कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हैं ? मैं यहाँ पहुँच कर क्या कहूँगा ? जब बड़े-बड़े विद्वान् मेरे सामने आ जाते हैं तो मैं हार जाता हूँ जब से हिन्दुस्तान आया हूँ। मेरा सारा समय काँग्रेस में और गरीबों, किसानों और मजदूरों वगैरा में बीता है। मैंने उन्हीं का काम किया है। उनके बीच मेरी जबान अपने आप खुल जाती है। मगर विद्वानों के सामने कुछ कहते हुए मुझे बड़ी झिझक मालूम होती है। सर राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण उन्हें भेज दूँ। पर मेरे पास उतना समय कहाँ था ? मैंने उन्हें जवाब दिया कि वक्त पर मुझे जैसी प्रेरणा मिल जाएगी, उसी के अनुसार मैं कुछ कह दूँगा। मुझे प्रेरणा मिल गई है। मैं जो कुछ कहूँगा मुमकिन है, आपको अच्छा न लगे। उस के लिए आप मुझे माफ कीजिएगा। यहाँ आकर जो कुछ मैंने देखा, और देखकर मेरे मन में जो चीज़ पैदा हुई, वह शायद आपको चुभेगी। मेरा ख्याल था कि कम-से-कम यहाँ तो सारी कार्यवाही अंग्रेजी में नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषा में ही होगी। मैं यहाँ बैठा यही इन्तजार कर रहा था कि कोई न कोई तो आखिर हिन्दी या उर्दू में कुछ कहेगा। हिन्दी उर्दू न सही कम से कम मराठी या संस्कृत में ही कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशाएँ निष्फल हुईं।

अंग्रेजों को हम गालियां देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना कर रखा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गए हैं। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को काफी पामाल किया है। इसके लिए मैंने उनकी कड़ी से कड़ी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उन्हें जिम्मेदार नहीं समझता। खुद अंग्रेजी सीखने और अपने बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी-कितनी मेहनत करते हैं ? आज कोई हमें यह कहता है कि हम अंग्रेजों की अंग्रेजी बोल लेते हैं, तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है ? इसकी वजह से हमारे बच्चों पर कितना जुल्म होता है ? अंग्रेजी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान इसमें दिलचस्पी ले। कोई दूसरी जगह होती तो शायद यह सब बर्दाश्त कर लिया जाता, मगर यह

तो हिन्दू विश्वविद्यालय है। जो बातें इसकी तारीफ में की गई हैं कि यहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी इस देश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के जीते जागते नमूने होंगे। मालवीय जी ने तो मुँहमांगी तनखाहें देकर अच्छे से अच्छे अध्यापक यहाँ आप लोगों के लिए जुटा रखे हैं। अब उनका दोष तो कोई कैसे निकाल सकता है? दोष जमाने का है। आज हवा ही कुछ ऐसी बन गई है कि हमारे लिये उसके असर से बच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अब वह जमाना भी नहीं रहा, जब विद्यार्थी को जो कुछ मिलता था, उसी में संतुष्ट रह लिया करते थे, अब तो वे बड़े बड़े तूफान भी खड़े कर लिया करते हैं। छोटी-छोटी बातों के लिए भूख हड़ताल तक कर लिया करते हैं। अगर उन्हें ईश्वर बुद्धि दे तो वे कह सकते हैं—'हमें अपनी मातृभाषा में पढ़ाओ।' मुझे यह जानकार खुशी हुई कि यहाँ आंध्र के २५० विद्यार्थी हैं। क्यों न वे सर राधाकृष्णन् के पास जाएं और उनसे कहें कि यहाँ हमारे लिए एक आन्ध्र विभाग खोल दीजिए और तेलुगु में हमारी सारी पढ़ाई का प्रबन्ध कर दीजिए? और अगर वे मेरी अकल से काम लें, तब तो उन्हें कहना चाहिए कि हम हिन्दुस्तानी हैं, चुनांचे हमें ऐसी जबान में पढ़ाइये जो सारे हिन्दुस्तान में समझी जा सके। और ऐसी जबान तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

जापान आज अमेरिका और इंगलैंड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं। मैं नहीं करता। फिर भी जापान की कुछ बातें हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जापान के लड़कों और लड़कियों ने योरुप वालों से जो कुछ भी पाया है, सो अपनी मातृभाषा जापानी के जरिये ही पाया है, अंग्रेजी के जरिये नहीं। जापानी लिपि बहुत कठिन है, फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया। उनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी जबान के जरिये ही होती है। जो चुने हुए जापानी पश्चिमी देशों में खास किस्म की तालीम के लिए भेजे जाते हैं, वे भी जब आवश्यक ज्ञान पा कर लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जापानी भाषा के जरिये ही देते हैं। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी बना लेते और अपनी भाषा को तिलांजलि देकर अंग्रेजी में सब कुछ पढ़ाने लगते, तो उससे बढ़कर बेवकूफी और क्या होती? इस तरीके से जापान वाले नई भाषा तो सीखते, लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिन्दुस्तान में आज हमारी महत्वाकांक्षा ही यह रहती है कि हमें किसी तरह कोई सरकारी नौकरी मिल जाए, या हम वकील, बैरिस्टर, जज वगैरा बन जायें। अंग्रेजी सीखने में हम बरसों बिता देते हैं तो भी सर राधाकृष्णन् या मालवीय जी महाराज के समान अंग्रेजी जानने वाले हमने कितने पैदा किये हैं? आखिर वह पराई भाषा ही है न? इतनी कोशिश करने पर भी हम उसे अच्छी तरह सीख नहीं पाते। मेरे पास सैंकड़ों खत आते रहते हैं, जिनमें कई एम. ए. पास लोगों के भी होते हैं। परन्तु चूंकि वे अपनी जबान में नहीं लिखते, इसलिए अंग्रेजी में अपने ख्याल अच्छी तरह जाहिर नहीं कर पाते।

चुनांचे यहाँ बैठे-बैठे मैंने जो कुछ भी देखा, उसे देखकर मैं तो हैरान रह गया। जो कार्यवाई यहाँ हुई, जो कुछ कहा या पढ़ा गया, उसे आम जनता तो कुछ समझ ही नहीं सकी। फिर भी हमारी जनता में इतनी उदारता और धीरज है कि वह चुपचाप सभा में बैठी रहती है। और खाक समझ में न आने पर भी यह सोचकर संतोष कर लेती है कि आखिर ये हमारे नेता ही हैं न ? कुछ अच्छी बात कहते होंगे। लेकिन उस से इसे लाभ क्या ? वह तो जैसी आई थी वैसी ही खाली लौट जाती है। अगर आप को शक हो तो मैं अभी हाथ उठवा कर लोगों से पूछूँ कि यहाँ की कार्यवाई वे कितना कुछ समझे हैं ? आप देखियेगा कि वे सब 'कुछ नहीं, कुछ नहीं' कह उठेंगे। यह तो हुई आम जनता की बात। अब अगर आप यह सोचते हों कि विद्यार्थियों में से हर एक ने हर बात को समझा है, तो वह दूसरी बड़ी गलती है।

आज से पच्चीस साल पहले मैं यहां आया था, तब भी मैंने यही सब बातें कही थीं। आज यहां आने पर जो हालत मैंने देखी, उसने उन्हीं चीजों को दोहराने के लिए मजबूर कर दिया।

दूसरी बात जो मेरे देखने में आई उसकी तो मुझे जरा भी उम्मीद न थी। आज सुबह मैं मालवीय जी महाराज के दर्शन को गया था। बसन्त पंचमी का अवसर था इसलिए सब विद्यार्थी भी वहाँ आये थे। मैंने उस वक्त भी देखा कि विद्यार्थियों को जो तालीम मिलनी चाहिए वह उन्हें नहीं मिलती। जिस सभ्यता, खामोशी और तरतीब के साथ उन्हें चलते आना चाहिये, उस तरह चलना उन्होंने सीखा ही नहीं था। यह कोई मुश्किल काम नहीं, कुछ समय में सीखा जा सकता है। सिपाही जब चलते हैं, तो सिर उठाए, सीना ताने, तीर की तरह सीधे चलते हैं। लेकिन विद्यार्थी तो उस वक्त आड़े-टेढ़े, आगे-पीछे, जैसा जिस का दिल चाहता था, चलते थे। उनके उस 'चलने' को चलना कहना भी शायद मुनासिब न हो। मेरी समझ में तो इसका कारण भी यही है कि हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेजी जबान का बोझ इतना पड़ जाता है कि उन्हें दूसरी तरफ सिर उठा कर देखने की फुरसत ही नहीं मिलती। यह वजह है कि उन्हें दर असल जो सीखना चाहिये उसे वे सीख नहीं पाते।

एक और बात मैंने देखी। आज सब हम श्री शिवप्रसाद गुप्त के घर से लौट रहे थे। रास्ते में विश्वविद्यालय का विशाल प्रवेश द्वार पड़ा। उस पर नजर गई तो देखा, नागरी लिपि में 'हिन्दू विश्वविद्यालय' इतने छोटे हरफों में लिखा है कि ऐनक लगाने पर भी वे नहीं पढ़े जाते। पर अंग्रेजी में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ने तीन-चौथाई से भी ज्यादा जगह घेर रखी थी। मैं हैरान हुआ कि यह क्या मामला है ? इस में मालवीय जी महाराज का कोई कसूर नहीं, यह तो किसी इन्जीनियर का काम होगा। लेकिन सवाल तो यह है कि अंग्रेजी की वहां जरूरत ही क्या थी ? अंग्रेजी का वहाँ लिखा जाना भी हम पर जमे हुए अंग्रेजी जबान के साम्राज्य का एक सबूत है।

(काशी विश्वविद्यालय, दीक्षान्त भाषण १-२-४२ से)

क्या अंग्रेजी राष्ट्रीय एकता का साधन है ?

(आचार्य विनोबा भावे)

पिछले कुछ समय से देश में भाषा के प्रश्न को लेकर जो घटना चक्र घटित हुआ है उसके अनेक पहलू हैं। विषय यद्यपि व्यापक है फिर भी दृष्टिकोण में अन्तर होने के कारण ही विवाद उठ खड़ा हुआ है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए भारतवर्ष के समग्र इतिहास को ध्यान में रखना जरूरी है। बदरी-केदार भारत के दो महान् और पवित्र तीर्थ स्थल हैं। कवि-कुल शिरोमणि कालिदास द्वारा वर्णित नगाधिराज हिमालय की गोद में तिब्बत और भारत की सीमा पर ये स्थित हैं। इन दिनों तीर्थ स्थानों के दर्शन के लिए भारत के सभी राज्यों के लाखों भक्तजन प्रति वर्ष जाते हैं। इन मन्दिरों के पुजारी और प्रबन्धक सदा केरल के नम्बूदरी ब्राह्मण हुआ करते हैं। वहाँ का पुजारी इनके सिवाय और कोई नहीं हो सकता है। कहाँ केरल, कहाँ बदरीनाथ। भारत की यह एकता क्या अंग्रेज़ी भाषा के कारण सम्पन्न हुई है ?

'शिव पेरुमान' ('भगवान शिव') तमिलनाड के देवता हैं। इस बात को सभी जानते हैं। परन्तु शैव सिद्धांत पर प्रमाणित ग्रन्थ मुख्यत: केवल दो ही भाषाओं— कश्मीरी और तमिल में मिलते हैं। तमिलनाड का यह शिव कश्मीर में कैसे पहुच गया ? क्या उसे वहाँ किसी ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भेज दिया ? कहाँ तमिलनाड एकदम दक्षिण में और कहां कश्मीर एकदम उत्तर में। देश में दक्षिण उत्तर का यह संगम-समागम क्या अंग्रेजी का परिणाम है ?

भारत की एकता

भारत की यह एकता सांस्कृतिक एकता के कारण है। पूर्व और पश्चिम तथा दक्षिण और उत्तर को मिलाने वाला अद्भुत कार्य भारत में पिछले दस हजार वर्षों से निरन्तर होता आ रहा है।

सन्त अप्पर बारह वर्ष तक बिहार में रहे। पता नहीं यह बात तमिलनाड वालों को भी मालूम है या नहीं ? प्राचीन काल में बिहार में जैन मतावलम्बियों का अच्छा वर्चस्व था। जैन शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए ही सन्त अप्पर बिहार में रहते थे। उत्तर भारत में कबीर और तुलसी जैसे बड़े सन्त हो गये हैं। ये दोनों रामानुज

सम्प्रदाय के थे। ऐसा कैसे सम्भव हुआ ? रामानुज ने उत्तर का आश्रय लिया था। वे जिस वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे उस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य नम्मलवार थे। परन्तु नम्मलवार का नाम महाराष्ट्र से लेकर कश्मीर तक और वहाँ बंगाल और असम तक किसी को भी नहीं मालूम और रामानुज भी नम्मलवार के शिष्य के शिष्य थे। रामानुज ने केवल नम्मलवार के विचारों का ही प्रचार किया और ये विचार सारे भारत में फैल गये। उसका कारण यह है कि रामानुज उत्तर भारत में गये थे; उनकी मातृभाषा तमिल थी, परन्तु तमिल में उन्होंने बहुत कम लिखा है, उनका लेखन कार्य प्रायः संस्कृत में हुआ है। महाराष्ट्र में दो श्रेष्ठ सन्तों – ज्ञानदेव और तुकाराम का नाम घर-घर में सुना जा सकता है। ये शंकराचार्य के शिष्य थे। हमारे युग में बंगाल में राम कृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द दो श्रेष्ठ पुरुष हो गये हैं। ये दोनों भी शंकर के अनुयायी थे। यह सब क्यों और कैसे हुआ ? शंकराचार्य की मातृभाषा मलयालम थी। परन्तु यह कार्य मलयालम के कारण निश्चय से नहीं हुआ। केवल संस्कृत का आश्रय लेकर ही शंकर ने यह चमत्कार कर दिखाया।

शंकराचार्य की यात्रा

मैं श्रीनगर गया था। वहां एक छोटी सी टेकरी है जिसका नाम शंकराचार्य शिखर है। वहां के लोगों ने मुझे बताया कि इस स्थान पर शंकराचार्य ने तपस्या की थी। यह कैसी विचित्र बात है—केरल के किसी युवक ने श्रीनगर में तपस्या की थी और इस बात को आज भी कश्मीर में बड़े प्रेम और गर्व से बताया जाता है। मैं जब कश्मीर की यात्रा पर गया तब वहां के लोग यह कह कर कि शंकराचार्य के बाद एक निश्चित 'मिशन' लेकर आने वाले आप दूसरे महानुभाव हैं, मेरी यात्रा की तुलना शंकराचार्य की यात्रा से करते थे। मैं असम भी गया हूं। गवाहाटी में कामाख्या देवी का मन्दिर है। वहाँ प्राचीन काल में बड़े उद्भट विद्वान् रहा करते थे। उनसे विचार विमर्श और चर्चा करने के लिए शंकराचार्य वहाँ भी गये थे। इसके बाद मैं कलकत्ता के निकट गंगासागर गया। मुझे वहाँ भी बताया गया कि इस जगह शंकराचार्य कई दिन ठहरे थे। वहाँ उन्होंने असंख्य विद्वानों से शास्त्रार्थ किया था। शंकराचार्य के एक स्तोत्र में गंगासागर का भी उल्लेख है :—कुरुते गंगासागर गमनम्' भजगोबिन्द स्तोत्र में शंकराचार्य ने लिखा है कि गंगासागर की यात्रा करने से भी मुक्ति नहीं मिलती है, मुक्ति के लिए आत्म ज्ञान चाहिये। शंकराचार्य बहुत घूमे परन्तु वे भारत की सीमाओं से बाहर नहीं गये। अपनी एकता के लिए भारत अंग्रेजी भाषा का ऋणी नहीं है यह एक अच्छी प्रकार हृदयंगम कराने के लिए ही मैंने यह सब कहा है।

अंग्रेजी भाषा खिड़की है

दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूं, वह यह है कि अंग्रेजी भाषा एक

खिड़की है। हमारे देश में यह विचार बद्धमूल हो चला है कि अंग्रेजी के माध्यम से हमें भारत से भिन्न शेष जगत का दर्शन होता है। परन्तु हम इस बात को भूल जाते हैं कि यह 'मात्र एक' खिड़की है। बुद्धिमान् लोग अपने घरों में केवल एक खिड़की नहीं लगाते। चारों दिशाओं में अलग-अलग खिड़कियां रखने से ही सारे विश्व के समुचित दर्शन हो सकते हैं। यदि हम केवल एक ही खिड़की से दुनिया देखना चाहेंगे तो हमें एकांगी दृश्य ही दिखाई देगा। इस लिए भारत को ऐसी अनेक खिड़कियों की जरूरत है। कम से कम फ्रेंच, जर्मन, रूसी, स्पेनिश, चीनी, जापा[illegible] आदि भाषाओं की सात खिड़कियां तो होनी ही चाहियें, तभी विश्व के यथार्थ दर्शन हो सकते हैं। अंग्रेजी से देश को लाभ पहुंचा है, परन्तु वह थोड़ा और एकां[illegible] है।

केवल अंग्रेज[illegible] से धोखा

जब मैं जेल में था तब 'इनस[illegible]इड एशिया' नामक एक पुस्तक की बड़ी धूम थी। इस पुस्तक में एशिया के बारे [illegible] बहुत कुछ लिखा गया है। पुस्तक सुन्दर है, परन्तु इस[illegible] में भारत के बारे में जो [illegible]खा गया है उसमें बहुत सी भूलें है। मुझ से जब कुछ लोगों ने यह बात कही तो [illegible]मने उन्हें कहा—"इस पुस्तक के बारे में अन्य देशों के लोग भी ऐसा ही कहते [illegible] होंगे। जापान वाले कहते होंगे, बाकी सब ठीक है, केवल जापान के बारे में गल[illegible]त लिखा है। चूंकि हमें भारत की परिस्थितियों का ज्ञान है, इसलिए भारत [illegible]क बारे में जो गलत बातें लिखी गई हैं उन पर हमारा सहज ही ध्यान चला जाता है। चीन, जापान, इन्डोनेशिया आदि के बारे में हमारा ज्ञान सीमित है अतः इन देशों के बारे में जो कुछ लिखा है उसे हम ठीक समझ बैठते हैं। इसी को संस्कृत में 'परप्रत्ययनेय बुद्धिता' कहा गया है। अर्थात् अपनी बुद्धि से काम न कर दूसरे की बुद्धिता पर निर्भर करना।

स्वयं पुरुषार्थ चाहिये

इसलिये हमें अंग्रेजी के अतिरिक्त दूसरी खिड़कियों का भी प्रयोग करना चाहिये। अंग्रेजों की तरह हमें स्वयं भी पुरुषार्थ करना चाहिए। अंग्रेजों ने जो पुरुषार्थ किया है उसका लाभ स्वयं हमारी झोली में आकर गिरेगा, यह भ्रम निकाल देना चाहिये। मेरे भोजन या औषध लेने का लाभ किसी और को नहीं होगा। स्नान, निद्रा, भोजन औषध का जो सेवन करता है उसका लाभ उसी को होता है। अंग्रेजी ने हमें कुछ ज्ञान दिया है, परन्तु उस के साथ ही उसने कितना अज्ञान और ज्ञान के आवरण में कितना दम्भ और अहंकार और मिथ्यात्व प्रदान किया हैं, क्या इस पर किसी ने कुछ सोचा है।

एक भारी भ्रम

बहुत से लोगों की यह धारणा है कि अंग्रेजी आने पर सारी दुनियां में कहीं कोई अड़चन नहीं आएगी। अंग्रेजी विश्व की भाषा है, यह भारी भूल है। अंग्रेजी जानने वालों की संख्या तीस करोड़ है, जबकि विश्व की जनसंख्या तीन सौ करोड़ है। अर्थात् दस प्रतिशत व्यक्ति ही अंग्रेजी जानते हैं। विश्व में अनेक देश ऐसे हैं जहाँ अंग्रेज़ी का बिल्कुल प्रयोग नहीं होता है।

बहुत से लोग, जिन में देश के चोटी के शिक्षाशास्त्री भी शामिल हैं, यह समझते हैं कि अंग्रेजी के माध्यम से ही विज्ञान सीखा जा सकता है। विज्ञान की अनेक शाखा प्रशाखाएं हैं। किसी का विकास जर्मन भाषा में हुआ है, परन्तु अंग्रेजी में नहीं, किसी का रूसी में हुआ है और अंग्रेजी में नहीं। इसलिए अंग्रेजी और विज्ञान एक ही बात के दो पर्यायवाची हैं, यह भारी भ्रम जितनी जल्दी दूर हो जाए उतना ही शीघ्र देश का कल्याण होगा।

देश में एक और विचित्र-सा भ्रम फैल गया है, या फैलाया गया है, कि तमिलों और बंगालियों के लिये हिन्दी सीखने के बजाय अंग्रेजी सीखना अधिक सरल है। मैं यह बात अब तक नहीं पचा सका हूं।

मैंने भारत की बहुत सी भाषाएं सीखी हैं। अंग्रेजी भी जानता हूं। परन्तु केवल अंग्रेजी भाषा सीखने में जितना श्रम करना पड़ता है उतने श्रम में भारत की सब भाषाएँ सीखी जा सकती हैं, ऐसा मेरा अनुभव है।

वेल्लर जेल में मैंने दक्षिण की चारों भाषाएं—तमिल, कन्नड, तेलगू और मलयालम एक साथ सीखनी शुरू कीं। किसी ने मुझ से पूछा : 'चारों भाषाएं एक साथ क्यों सीख रहे हो?' मैंने उसे उत्तर दिया : 'क्योंकि कोई पांचवीं भाषा नहीं है, इस लिए। यदि कोई और भाषा होती तो उसे भी साथ ही सीखता।

भारत में दो ही भाषा

तमिल, कन्नड आदि दक्षिण की चारों भाषाएँ बहुत कुछ एक ही भाषा हैं। इसी प्रकार शेष भारत की बाकी भाषाएँ भी मिलकर एक ही भाषा के भिन्न रूप हैं। इस प्रकार सारे भारत की दो ही भाषाएं हैं। यदि किसी को हिन्दी आती है तो वह महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल और असम इन ग्यारह राज्यों में अपना काम चला सकता है। यह बात मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकता हूं। इन सब राज्यों में

मैं घूमा हूं। कटक में मैंने हिन्दी में भाषण दिया। दुभाषिये के लिए पूछने पर जनता ने कहा कि हमें आपका हिन्दी भाषण समझ में आता है, दुभाषिए की ज़रूरत नहीं। गुवाहाटी में स्व० प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने हिन्दी में भाषण दिया था तथा जनता ने उसे समझा था। ऐसी स्थिति में दक्षिणी भारतीयों के लिए हिन्दी विदेशी भाषा है, यह कहना मिथ्या प्रलाप है। सभी भारतीय भाषाओं में एक साम्य है, अतः यह कहना कि तमिल, तेलगु आदि भाषा-भाषियों के लिए अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी दूर की भाषा है, केवल अपने अज्ञान की उद्घोषणा करना है। इसी प्रकार यह कहना कि हिन्दी सीखना बड़ा कठिन है, निराधार है। भारत में कश्मीर से कन्या कुमारी और कच्छ से कामरूप तक जो सांस्कृतिक एकता है, उसका कारण क्या है? मेरे कथन का सार यह है कि हिन्दुस्तान में कुल मिलाकर अधिकतम दो ही भाषाएं हैं और उन दोनों को जोड़ने वाली संस्कृत है, अंग्रेज़ी नहीं।

———

*यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा में यह जाति सम्बन्धी असन्तुलन पिछड़ी जातियों की गरीबी के कारण है। लेकिन यह अधूरी सच्चाई है। पूरी सच्चाई यह है कि गरीबी की दलदल में फँसी पिछड़ी जातियाँ अंग्रेजी की गलफांसी के कारण इस दलदल से उभर नहीं पा रही है।

गणेश मन्त्री

*मातृभाषाओं के विकास के नाम पर यदि अंग्रेजी को उसी रूप में मान्यता प्रदान की जाय जिस रूप में वह पंजाब और तमिलनाडु में है तो बेशक मातृभाषाओं के आधार पर सरकारें बने गिर जाएँ, नए प्रदेशों की स्थापना की आवाज गूंजे, कुछ नए रईस पैदा हो सकते हैं लेकिन मानसिक गुलामी से छुटकारा नहीं मिल सकता।

शतरुद्र प्रकाश

*विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में अपने लम्बे अनुभव से मैं इस बात का कायल हो गया हूं कि किसी विद्यार्थी की पढ़ाई सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम उसकी मातृभाषा होना चाहिए। एक ऐसी भाषा जिसमें उसने स्वाभाविक तथा सहज रूप से बातचीत की है और जिसके द्वारा उसने बचपन से ही दुनिया को देखा और महसूस किया है।

अमिय कुमार दास गुप्त

———

अंग्रेजी के रहते लोक-वाणी मौन रहेगी

डा० रघुवीर

यह आंग्ल-तन्त्र जनता भी भाषाओं को नीचे दबाये हुए है। आंग्ल-तन्त्र ने अपने स्वार्थ साधन के लिए जन-भाषाओं में ईर्ष्या और द्वेष के सृजन में सहायता की है। अंग्रेजी के भक्त कहते हैं कि अंग्रेजी देश की एकता की शृंखला है। यदि यह बात ठीक होती तो भारतीय भाषाओं में परस्पर विद्वेष क्यों उत्पन्न हुए और किस कारण बढ़ते जा रहे हैं? जब तक भारतवर्ष में अंग्रेजी का प्रयोग होगा तब तक भारतीय जनता और भाषाएँ एक दूसरे के समीप न आ सकेंगी। जब अंग्रेजी हमारे बीच से हट जायेगी तभी तो हम को एक दूसरे की भाषा और साहित्य को जानने और पढ़ने का अवसर मिलेगा तथा आवश्यकता पड़ेगी।

आइये, परीक्षा करें कि क्या कोई वास्तविक संघर्ष का क्षेत्र है जहाँ एक भाषा दूसरा भाषा का स्थान लिए हैं। १४ भाषाओं में से संस्कृत किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं। संस्कृत का स्थान तो राष्ट्र की आकार भाषा के रूप में है। देश की जन-भाषाएं कुछ तो इसकी पुत्रियां-पोत्रियां हैं और कुछ इससे पोषण प्राप्त करती हैं। अब रह गई १६ भाषाएं, इनमें से कश्मीरी ने अपना प्रांतभाषीय स्थान उर्दू को दे दिया है। कश्मीरी का अपना स्थान केवल प्राथमिक शिक्षा तक सीमित रह गया है। शेष में से हिन्दी सात राज्यों - हिमाचल प्रदेश, दक्षिणी पंजाब (हरियाणा), राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार की मातृ भाषा है।

भौगोलिक भाषाशास्त्र की शब्दावली में हिन्दी हृदय-भाषा अथवा केन्द्रीय-जलाशय है जिसकी परिधि पर अन्य भाषायें विराजमान हैं। हिन्दी की पश्चिमी सीमा पर पंजाबी और कश्मीरी, उत्तर में नेपाली, उत्तर पूर्व में असमिया, पूर्व में बंगला और उड़िया, दक्षिण में तेलगू तथा पश्चिम में मराठी और गुजराती हैं। हिन्दी और इन भाषाओं की सीमायें मिलती हैं।

सीमाओं पर बड़ी चौड़ी पट्टी है जिसके निवासी दो-दो भाषायें बोलते, समझते और लिखते पढ़ते हैं। लाखों नर-नारी है जो हिंदी और पंजाबी, हिन्दी और असामिया, हिन्दी और बंगाली, हिन्दी और उड़िया, हिन्दी और तेलगू, हिन्दी और मराठी तथा हिन्दी और गुजराती बचपन से बोलते समझते आये हैं और मृत्युपर्यन्त बोलते समझते रहेंगे। इसी प्रकार मराठी और कन्नड, कन्नड़ और तेलगू तथा तेलगू और

उड़िया आदि भाषाओं के बीच आदान-प्रदान और सहयोग है। यह स्वाभाविक है। यह हमारे सामान्य इतिहास और भूगोल का परिणाम है। यद्यपि तामिल और मलयालयम की सीमाएं हिन्दी से स्पर्श नहीं करतीं तब भी इनका सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। यह सम्पर्क केवल शिक्षा-संस्थाओं द्वारा ही नहीं है।

इतने समीप सम्बन्धों के होते हुए भी प्रत्येक भाषा के प्रान्त सुनिश्चित हैं। कहीं-कहीं दो चार गांवों में मतभेद है। साथ में मतभेद है। साथ में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हमारी प्रान्तीय भाषाओं के बोलने वालों की संख्या एक करोड़ से लेकर चार करोड़ तक है केवल कश्मीरी एक करोड़ से नीचे (अर्थात् ४० लाख) और हिन्दी भाषी चार करोड़ से ऊपर (अर्थात् २० करोड़) हैं। जिस प्रान्त की जनसंख्या एक करोड़ हो वह अपना शासन और शिक्षा अपनी भाषा में सुचारू रूप से चला सकता है। कोई आर्थिक कठिनाई नहीं पड़ती।

केन्द्रीय भाषा

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि यह केन्द्रीय भाषा दूसरी भाषाओं से घुली मिली हुई है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से यह भारतीय भाषाओं की सखी और सहेली है, अनेक की ती सहोदरा भगिनी है। केन्द्रीय भाषा का प्रयोग उच्च शिक्षालयों और अन्तःप्रांतीय सम्बन्धों में होगा। केन्द्रीय भाषा भारत की एकता की शृंखला है। इसको तोड़ कर अंग्रेजी वर्तमान है। अंग्रेजी हटते ही यह शृंखला अपना स्थान ले लेगी।

हिन्दी और अन्य भाषाओं में परम्परागत समान विचारधारा, समान धर्म, समान साहित्य, समान ज्ञान-विज्ञान होने के कारण समान शब्दावली है। प्रत्येक भारतीय भाषा में प्रायः एक लाख की शब्द-राशि है। इनमें से ३० से ७० सहस्र तक तत्सम संख्या है। जैसे-हमारी भाषाओं की ज्ञान विज्ञान शब्द राशि बढ़ेगी वैसे-वैसे तत्सम संख्या भी बढ़ेगी। तत्सम शब्द भारतीय भाषाओं की परम्परागत सम्पत्ति है। इसके कारण भारतीय भाषाओं में अधिकाधिक समानता है।

जिस प्रकार अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता की शृंखला का निर्माण है इसी प्रकार हिन्दी प्रान्तों में अन्य भारतीय भाषाओं का पढ़ना-पढ़ाना एक दूसरी सुदृढ़ एकता की शृंखला का सृजन है। एक-दूसरे की भाषा और साहित्य के ज्ञान से हम समीप आयेंगे। हमारे द्वेष विलीन होंगे ओर राष्ट्र का कल्याण होगा।

किन्तु आज चारों ओर विडम्बना छाई है :—

हम देश भक्त हैं —इसलिये विदेशी भाषा का प्रयोग करते हैं, करते आये हैं, करते रहेंगे।

हम देश भक्त हैं— इसलिए देशी भाषाओं का प्रयोग न होने देंगे।

हम देश भक्त हैं—यदि कोई आग्रह करेगा कि देशी भाषाओं का प्रयोग करो तो हम देश को खण्ड-खण्ड कर देंगे।

हम प्रजातन्त्र के उपासक हैं—इसलिए चालीस प्रतिशत की भाषा को राष्ट्र की भाषा कैसे बना सकते हैं ?

हम प्रजातन्त्र के उपासक हैं—इसलिए राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर ऐसी भाषा को आसीन करने के लिए बद्ध संकल्प हैं जो राष्ट्र की भाषा ही नहीं।

हम समाजवादी हैं—इसलिए समाज के हाथ में शक्ति तथा शासन नहीं रहना चाहिए।

हम समाजवादी हैं—केवल दो प्रतिशत के हाथ में सम्पूर्ण शासन व्यापार-उद्योग देंगे।

हम समाजवादी हैं—हम नियम बनाते हैं कि ९८ प्रतिशत जनता जो अंग्रेजी नहीं जानती, उसको चपरासी के पद तक सीमित रखा जाये।

हम एकतावादी हैं—हमारा विश्वास है कि हमारे में एकता की शृंखला नहीं बन सकती। हमारी दासता की शृंखला ही हमारी एकता की शृंखला है।

१९५० में हमारे संविधान में यह स्पष्ट कहा गया था कि अंग्रेजी १५ वर्ष से अधिक न चलेगी। इसी धारा को मिटाने के लिए सरकार एक विधायक लाई। सखी भाषा कहना सखी शब्द की विडम्बना है। हिन्दी की सखी भाषायें तो भारतीय भाषायें हैं, अंग्रेजी सखी नहीं है।

अंग्रेजी को और अधिक समय तक चलाये रखने से इसकी जड़ें और अधिक गहरी चली जायेंगी। निहित स्वार्थों में वृद्धि हो जायेगी। इसीलिए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम दृढ़ संकल्प होकर इसका विरोध प्रारम्भ करें। परम पुनीत अथर्ववेद की श्रुति है जिसका अर्थ है—

'जो मेरे अन्न एवं पान की एवं जो मेरी वाणी की हिंसा करना चाहता है, उस पर स्वयं इन्द्र और अग्नि अपनी ज्वालाओं और वज्र से रोषपूर्वक प्रहार और विध्वंस करते हैं।'

जनता इन्द्र और अग्नि है। हमारा धर्म है कि इसकी वाणी की रक्षा करें। यदि यह काम हमने न किया तो जनता स्वयं खड़ी होगी और आँग्ल-तन्त्र प्रलीन होगा।

———

*अनेक ऐसे तथ्य हैं जिन्हें जनता के सामने रखना चाहिए और सामन्ती वर्ग की जालसाजी का पर्दा फाश करना चाहिए। क्योंकि हर प्रान्त की जनता वहीं के बुद्धिजीवियों और शासकों द्वारा मूर्ख बनाई जा रही है और उसकी शक्ति का प्रयोग अंग्रेजी हटाने के लिए नहीं वरन् हिन्दी को रोकने के लिए किया जा रहा है।

हरिमोहन श्रीवास्तव

———

हिन्दी बनाम अंग्रेजी

डा. राम मनोहर लोहिया

अंग्रेजी ज़बान अब हिन्दुस्तान के सार्वजनिक मामलों से खत्म हो जानी चाहिए। इसमें देर करना न केवल भाषा के मसले को उलझा देना और बिगाड़ देना होगा। बल्कि देश के दूसरे मसलों को भी बिगाड़ देना होगा। भाषा से देश के सभी मसलों का सम्बन्ध है। किस ज़बान में सरकार का काम चलता है, इससे समाजवाद तो छोड़ ही दो प्रजातन्त्र भी छोड़ो, ईमानदारी और बेईमानी का सवाल तक जुड़ा हुआ है। यदि सरकारी और सार्वजनिक काम ऐसी भाषा में चलाये जाएं जिसे देश के करोड़ों आदमी न समझ सकें तो होगा केवल एक प्रकार का जादू टोना। जिस किसी देश में जादू, टोना टोटका चलता है वहां क्या होता है? जिन लोगों के बारे में मशहूर हो जाता है कि वे जादू वगैरह से बीमारियां आदि अच्छी कर सकते हैं उनकी बन आती है। लाखों करोड़ों उनके फंदे में फंसे रहते हैं। ठीक ऐसे ही जबान का मसला है। जिस जबान को करोड़ों लोग समझ नहीं पाते, उन के बारे में यही समझते हैं कि यह कोई गुप्त विद्या है, जिसे थोड़े लोग ही जान सकते हैं। ऐसी जबान में जितना चाहे झूठ बोलिये, धोखा कीजिए, सब चलता रहेगा, क्योंकि लोग समझेंगे ही नहीं। आज शासन में लोगों की दिलचस्पी हो तो कैसे हो? वह कुछ जान ही नहीं पाते कि क्या लिखा है, क्या हो रहा है? सब काम केवल थोड़े से अंग्रेजी पढ़े लोगों के हाथ में है। बाकी लोगों पर इन सब का वही असर पड़ता है—जो जादू टोने या गुप्त विद्या का। अपने देश में पहले से ही अमीरी-गरीबी, जातपात, धर्म और पढ़े-बेपढ़े के आधार पर एक जबरदस्त खाई है। यह विदेशी भाषा उस खाई को और चौड़ा कर रही है। अपनी भाषाएं पढ़े-लिखे केवल दस फीसदी लोग हो सकते हैं। पर समझ सब सकते हैं लेकिन अंग्रेजी तो अधिक से अधिक १०० में एक आदमी समझ सकता है, वह भी मुश्किल से। मैंने जानबूझ कर अपनी भाषा कहा है, हिन्दी नहीं कहा। देश में और भी भाषाएँ हैं, केवल हिन्दी नहीं, और सभी एक सी हैं।

मैं फिलहाल हिन्दी और अंग्रेजी के बारे में कहूँगा। देश की अपनी भाषाओं के सम्बन्ध में भी बाद में आप का ध्यान खींचूंगा, पर इतना समझ लें कि झगड़ा हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं और अंग्रेजी के बीच है, हिन्दी और दूसरी भाषाओं के

बीच नहीं। यह गलती पिछले १० वर्षों से सरकार की ओर से होती आ रही है, हमें नहीं करना है।

मेरी समझ में वे लोग बेवकूफ हैं जो अंग्रेजी के चलते हुए समाजवाद कायम करना चाहते हैं। वे भी बेवकूफ हैं जो कहते हैं कि अंग्रेजी रहने पर जनतन्त्र भी आ सकता है। हम तो समझते हैं कि अंग्रेजी के होते यहां ईमानदारी आना भी असम्भव है। थोडे से लोग इस अंग्रेजी के जादू द्वारा करोड़ों को धोखा देते रहेंगे। बेईमानीं चलेगी। जब कोई किसी अफसर से मिलने जाता है तो उसका काम होना इस पर भी निर्भर करता है कि उसके कपड़े कैसे हैं सफेद कपड़े पहनने वाले का काम वह जल्दी करता है क्योंकि आम तौर पर सफेद कपड़े वाला ही अंग्रेजी जानने वाला भी होता है। इसी तरह हमारे अफसर आपसी बातचीज में भी अंग्रेजी का ही इस्तेमाल करते हैं। दूसरे लोग उनके चारों ओर और मातहत भी ऐसे ही लोग रह पाते है. जो अंग्रेजी जानें। हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग इन अफसरों की बातें समझ ही नहीं पाते और उन्हें अंग्रेजी जानने वाले दलालों की मदद लेनी पड़ती है। दूसरों के रिश्तेदारों की जो आम तौर पर ऊंची जात वाले ही होते हैं, बन जाती है और कुनबापरस्ती का बाजार गर्म होता है। अपने रिश्तेदारों और सम्बन्धियों को ही वे अपने साथ नौकरी पर रखते हैं। इसका कारण यह है कि वे अंग्रेजी अच्छी तरह जानते हैं और उन से काम चल जाता है। जो अंग्रेजी नहीं जानते उनका गुजारा नहीं हो पाता। इसी तरह अफसरों की बातें हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग नहीं समझ पाते और जो दलाल वगैरह होते हैं उन्हें पैसा बनाने का मौका मिल जाता है। यह सब चलता रहता है। कानून वगैरह सब अंग्रेजी में बनाते हैं जिससे जनता को उनका मतलब समझने में दिक्कत होती है और अफसरों को अपना काम निकालने में आसानी रहती है। कहने का मतलब यह है कि जब तक अंग्रेजी की बीमारी बनी रहेगी, तब तक ईमानदारी कायम हो ही नहीं सकती। एकदम नामुमकिन है। मेरा यह मतलब नहीं कि अंग्रेजी के खतम होते ही ईमानदारी आ जाएगी। हां, इतना मेरा विश्वास है कि जब अंग्रेजी खतम हो जाएगी तभी ईमानदारी कायम हो सकती है, और हो भी जाएगी।

... ...

भाषा की वजह से सब बातें लोग समझ ही नहीं पाते और खफिया तौर पर ही यह सब बेइमानियां चलती रहती हैं। खुफिया का मतलब यहाँ आम जनता से छिपी हुई ही है। इन सब कार्यवाहियों में हिन्दुस्तान में करीब तीस लाख अंग्रेजीदां लोगों के अलावा किसी की दिलचस्पी या शिरकत नहीं हैं। ४० करोड़ लोग इन ३० लाख के आपसी झगड़े और तनावो से अपने को दूर रखते हैं। पस्त हो चुके हैं और उनका केवल यही कहना रहता है कि हमें क्या कोई बने। सामान्य लोगों को न तो इतनी समझ ही है कि व्यापार को समझें और न दिलचस्पी ही। वही ३० लाख लोग आपस में बँटवारा कर लेते हैं और उन्हीं के बीच सारी छीनी-झपटी चलती रहती हैं।

यह सब बातें ४० करोड़ तक पहुँचे तो ऐसे कामों का चलना मुश्किल हो जाए। ४० करोड़ तक पहुँच पाने की पहली शर्त यही है कि सब काम ऐसी भाषा में हों जिसे आम लोग समझ पायें। उस समय योग्यता का चुनाव भी केवल ३० लाख में से नहीं बल्कि ४० करोड़ में से होगा। योग्यता भी हिन्दी-उर्दू आदि दूसरी भाषाओं के आधार पर देखी और जाँची जाएगी।

इस भाषा के घपले की वजह से हमारी पलटन में भी काफी असन्तोष है। हिन्दुस्तान में पलटन की हालत कोई अच्छी नहीं चल रही है। अफसर काफी नाखुश हैं। देश की पलटन का असन्तुष्ट रहना कितना खतरनाक हो सकता है, खास तौर पर तब जब उस असन्तोष के कारण भी सही हों। असन्तोष का एक हिस्सा तो नौकरी और तनखाहों की वजह से है सो उसको तो मैं छोड़ देता हूं। पर एक दूसरा हिस्सा सब के ध्यान देने लायक है। हमारे यहाँ सिविल अफसर का ओहदा पलटनी अफसर से ऊँचा समझा जाता है। सिविल नौकरी का बाबू तक पलटनी बाबू से ऊँचा रहता है। आप इससे इस चीज को समझ लीजिए कि जब रक्षा विभाग में ऊंचे पलटनी अफसरों की बैठक होती है तो उसका सभापतित्व एक सिविल अफसर, जो रक्षा सचिव होता है, करता है। यह भी नहीं कि रक्षा-मन्त्री ही कर ले। पुराने वक्त से ही हमारे यहाँ यह चला आ रहा है कि पलटन के ऊँचे अफसरों की अंग्रेजी बहुत अच्छी होनी चाहिये। पहले ऊँचे अफसर विलायत से पढ़ कर ही आते थे तो सीख भी जाते थे, पर अभी भी यह हाल है कि बिना अंग्रेजी का बढ़िया ज्ञान हुए ऊँची अफसरी मिलनी मुश्किल है। अब भला बताइए पलटनी अफसरों की योग्यता इस बात से परखी जाएगी कि वह अंग्रेजी कैसी बोलता है या इस बात से कि वह दुश्मन का मुकाबला कितनी अच्छाई से कर सकता है और लड़ाई की कला कैसी जानता है। पिछली लड़ाई का सब से बड़ा जनरल एक जर्मन था, और अंग्रेजी का एक लफ्ज भी नहीं जानता था हाँ, लड़ना जानता था। हिन्दुस्तान में एक से एक वीर जातियां बसती हैं। वे लड़ाई की कला में प्रतिभा दिखा सकती हैं। पर अफसरी के लिए उन्हें सीखनी पड़ती है अंग्रेजी। न सीखें तो अफसर नहीं बन सकते। केवल भाषा की वजह से ही उनकी काबिलियत का इस्तेमाल नहीं हो पाता। इसलिये मैं कहता हूं कि सार्वजनिक उपयोग से अंग्रेजी हटाये बिना कोई काम नहीं बन सकता। अंग्रेजी हट जाने पर ही ४० करोड़ को अपनी योग्यता दिखलाने का मौका मिलेगा। अब सवाल उठता है कि क्या हिन्दुस्तान में ऐसी हालत है कि बिना अंग्रेजी काम चला सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि कैसे करोगे? हिन्दी शब्द कहां है? इसके जवाब में मैं जापान का एक किस्सा बता देता हूं। यह किस्सा १९६० का है, जब अमरीकी फौजों ने जापान पर कब्जा कर लिया था। उसी जमाने में जापान से बहुत से लोग विज्ञान और दूसरी नयी चीजों की जानकारी के लिए विदेश पढ़ने भेजे गये। जब ये लोग वापस आ गए तो इनके सामने यह सवाल उठा कि किस भाषा में काम चलाया जाए। इन लोगों ने कहा कि हमारे पास जापानी शब्द इतने नहीं हैं कि

हम जिन शब्दों को पढ़ कर आए हैं उनके बदले अपने शब्द इस्तेमाल कर सकें। सरकार ने उत्तर दिया कि सब काम जापानी में होगा। अगर ऐसे लफ्ज आयें जिनकी जापानी न हो सके तो उन्हें वैसे के वैसे ही इस्तेमाल किया जाए और धीरे-धीरे उनके जापानी पर्याय निकालने की कोशिश भी की जाए। इस तरह से उन्होंने किया और आज आप देखें कि उनका काम काज कितने मजे में चल रहा है और अब तक कोई सवाल नहीं उठा।

पर हमारे यहां मामला उलटा है। कहते हैं जब शब्द बन जायेंगे तब हिन्दी शुरू करेंगे। यह वैसी बात है जैसे बिना पानी में गये तरना सीखने की इच्छा। यह कितनी खतरनाक हालत है कि अपनी भाषाएं प्रति क्रियावाद की ओर विदेशी भाषा प्रगति की प्रतीक समझी जाती हैं। कई लोग सिर्फ इसी वजह से खुल कर हिन्दी की हिमायत नहीं कर पाते कि कहीं वह भी प्रगति के दुश्मन न समझ लिए जायें। इन सब बातों का फायदा उन लोगों ने उठाया, जो अंग्रेजी पढ़े लिखे हैं और देश से अपने एकाधिपत्य को उठने देना नहीं चाहते।

देश के तीस लाख आदमी नहीं चाहते हैं कि अंग्रेजी खतम हो और उनकी ताकत घटे। इसके लिए उन्होंने दुनिया भर के अडंगे खड़े किये। हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं से हिन्दी की प्रतिद्वन्द्विता चलवायी। सरकार ने उनकी मदद की। हिन्दी और अंग्रेजी के असली झगड़े को नजर-अन्दाज कराने के लिए ये झूठे झगड़े दूसरी भाषाओं से चले। सरकारी नीति रही कि अंग्रेजी के साम्राज्यशाही उन्हें खतम नहीं करनी थी, तो उन्होंने किया यह कि हिन्दी को भी उसी साम्राज्यशाही का एक छोटा हिस्सा दिलाने की कोशिश की। अंग्रेजी का कुछ हिस्सा हिन्दी को भी मिल जाए, यही सरकारी नीति रही। अब यह साफ बात है कि हिन्दी साम्राज्यशाही नहीं चल सकती। गैर हिन्दी इलाके इसकी कभी स्वीकार नहीं करेंगे। सरकार की इस साजिश ने हिन्दी को बहुत नुकसान पहुँचाया। गैर हिन्दी लोगों को अपनी नौकरियों वगैरह का डर लगा। सरकारी नीति के कारण ही कई बड़े इलाकों के लोग हिन्दी की कट्टर मुखालफत करने लगे। आप को जानकर ताज्जुब होगा कि महात्मा गांधी के बाद मैं पहला आदमी हूं जो तामिलनाडू में लगातार २५ सभाओं में हिन्दी बोला। लोगों ने मुझे क्यों सुना? तामिलनाडू में हिन्दी का घोर विरोध है। मैं जानता हूं कि मुझे लोगों ने इसलिए सुना कि मैं हिन्दी और तामिल को बराबरी देना चाहता हू। नेहरु साहब चाहते थे हिन्दी और अंग्रेजी को बराबरी देना। मालूम ऐसा होता है जैसे कि क्लाईव के बेटे पोते गद्दियों पर बैठे हों। मैं आपसे फिर कहता हूं कि हिन्दी की हिमायत वही कर सकता है, जो उसकी बराबरी में अंग्रेजी को न लाये, बल्कि हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं को और जो हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं के साथ राष्ट्र की उन्नति का साधन और अंग्रेजी को गुलामी का साधन समझे।

आज आप किसी बाज़ार में निकल जाइए। दोंनों तरफ सब नाम पट मिलेंगे अंग्रेजी में। यहां तक कि नाई की दुकान पर भी बोर्ड होगी - फैंसी हेयर ड्रेसर। इससे फायदा क्या? कौन समझता है? वह तो यह कहिए कि नामपट के साथ-साथ शीशे की खिड़कियों में माल भी सजा रहता है जिस को देख कर लोग समझ जाते हैं कि किस चीज की दुकान है। वर्ना नामपट से अधिकतर आदमियों को कुछ पता ही नहीं लग सकता। लाखों बच्चों के दिमाग पर इसका क्या असर पड़ता होगा? वे तो यही समझते हैं कि हमारी भाषा इस काबिल नहीं कि उसमें नामपट लगाये जायें। आप सब से मेरी प्रार्थना है कि आप इस पर सोचें और दुकानदारों से कहें कि ये अंग्रेजी नामपट गुलामी का नक्शा हमारे दिमाग में ताजा रखते हैं।

किस किस बात का जिक्र किया जाए। चारों तरफ गुलामी की निशानियां बाकी हैं। अंग्रेजी अखबारों को ही लीजिए। ये गुलामी के सब से बड़े प्रतीक हैं। दुनिया के किसी भी देश में आप दैनिक अखबार विदेशी भाषा में नहीं पायेंगे। हां, मासिक-पत्र या साप्ताहिक पत्र जो विशेष विषयों से सम्बन्ध रखते हैं कभी विदेशी भाषाओं में भी निकाले जाते हैं। पूरे यूरोप में मैंने सिवाय पैरिस और कहीं विदेशी भाषा का दैनिक पत्र निकलते नहीं देखा। पैरिस में एक है और वह अमरीकनों ने अपने लोगों के लिये जो लाखों की तायदाद में वहां हैं, निकाला है। हमारे यहां तो अखबार ज्यादातर अंग्रेजी में हैं। नतीजा यह है कि आप सब लोगों को यह विश्वास हो गया है कि अंग्रेजी के अखबार ज्यादा अच्छे हैं। हमारे यहां अंग्रेजी में छपने वाले अखबारों की करीब आठ लाख प्रतियां निकलती हैं। थोड़े से अखबार जो हिन्दी में निकलते हैं, उनकी दशा ही खराब है और हो भी कैसे नहीं, आप लोग खुद भी विज्ञापन देना हो तो अंग्रेजी अखबार ही पसन्द करते हैं। सरकार खुद अधिक विज्ञापन अंग्रेजी अखबारों को ही देती है। खयाल बन गया है कि अंग्रेजी अखबार अधिक लोग पढ़ते हैं और उनमें सूचनाएँ भी अधिक होती हैं। असल बात यह है कि यदि आप और सरकार इन्हें विज्ञापन देना बन्द कर दें तो ये अखबार दूसरे दिन बन्द हो जाएं। मैं तो आप से कहना चाहता हूं कि सरकार को यह नीति फौरन अपनानी चाहिये, नहीं तो हिन्दी के अखबार उठ ही नहीं सकते और मुल्क के ज्यादातर आदमी दुनिया की जानकारी हासिल नहीं कर सकते। सरकारी विज्ञापन केवल हिन्दी अखबारों को मिलें और दूरमुद्रक भी हिन्दी में ही कर दिये जाएं तो यह मामला अपने आप सुधर जाएगा। आप लोगों से भी मेरी यही प्रार्थना है कि अंग्रेजी अखबार छोड़ कर हिन्दी के अखबार पढ़ें। तभी उनकी उन्नति हो सकती है।

विधान में लिखा है कि पन्द्रह वर्ष के बाद हिन्दी ही चलेगी, परन्तु उसमें भी एक बचाव रख लिया गया है। राष्ट्रपति यदि चाहे तो इस अवधि को बढ़ा सकता है। आजकल की हालत से तो साफ पता लगता है कि यह अवधि बढ़ती ही रहेगी। हमारा कहना है कि सब से पहले तो अंग्रेजी सब जगह से आज ही समाप्त कर दी

जाए। यह पहली बात है। इसके बाद हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं का प्रश्न रह जाता है। इसके लिए हमारा कहना है कि केन्द्र की भाषा हिन्दी रहे और हर सूबे में अपनी अपनी भाषा चले। सूबे केन्द्र को अपनी भाषा में लिखें और केन्द्र हिन्दी में लिखे। बी. ए. तक की पढ़ाई और छोटी अदालतों का काम क्षेत्रीय भाषाओं में चलाया जाए और एम. ए. की पढ़ाई और हाईकोर्ट का काम हिन्दी में हो। बी. ए. तक अपनी भाषा के साथ हिन्दी भी वैकल्पिक विषय रहे।

बहुत से लोग डरते हैं कि मुल्क टूट जाएगा। मेरी तो समझ में नहीं आता कि मुल्क अंग्रेजी से कैसे जुड़ा हुआ है? इस गलतफहमी का बहुत बड़ा कारण भ्रम भी है कि अंग्रेजी विश्व भाषा है। मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि आप इस भ्रम को दूर कीजिए। अंग्रेजी विश्व भाषा नहीं है। अंग्रेजी तो क्या कोई भी भाषा विश्व-भाषा नहीं है। जिस प्रकार अंग्रेजी दुनिया में फैली उसी तरह उससे पहले संस्कृत, अरबी, लैटिन आदि भाषाएं भी फैल चुकी हैं। आज उनके साम्राज्य नहीं है और मैं कहता हूं कि अंग्रेजी का भी नहीं रहेगा। क्या आप समझते हैं कि चालीस करोड़ चीनी और बीस करोड़ रूसी कभी भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि अंग्रेजी विश्व-भाषा मानी जाए। सब बातों में राष्ट्रीय आत्मसम्मान का प्रश्न आ जाता है। मैं समझता हूं कि यदि कभी भी कोई भाषा विश्व-भाषा बन सकी तो वह किसी देश की भाषा नहीं होगी, बल्कि सभी देशों की भाषा का सम्मिश्रण होगी।

दस साल में भी अंग्रेजी हमारे यहाँ से गई नहीं, घटी भी नहीं। इस तरह से घट भी नहीं सकती। सरकार उस से तरक्की समझती है। अगर देश में कुछ ऐसे काम किये होते जिन से किसानों और गरीबों की तकलीफें कम होती, चीजों के दाम सस्ते होते, लोगों को रोजगार मिलता तो हम भी कहते कि तरक्की पसन्द सरकार है। मैं यह कह देना चाहता हूं कि मैं भी यह नहीं समझता कि अंग्रेजी हटा देने से मुल्क के गरीबों का पेट भर जाएगा पर मैं फिर दोहरा दूँ कि बिना अंग्रेजी हटाये देश की उन्नति होना असम्भव है और गरीबों का पेट भरना भी।

आज स्कूलों व कालेजों में अंग्रेजी एक जरूरी विषय है और उससे राष्ट्र का महान् नुकसान हो रहा है। हमारे सत्तर-अस्सी फीसदी बच्चे औसत बुद्धि के होते हैं और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हासिल करने के प्रयत्न में उनका इतना कचूमर निकल जाता है कि भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त नहीं पाते।

मैं हिन्दुस्तान की जनता से और खास तौर से जो इस भाषा नीति को मानते हैं, अपील करता हूं कि वे सारे देश में सभाएं करें और जलूस निकालें और प्रतिज्ञा

करें कि—"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल हम खुद तो आज से ही बन्द करते हैं और सरकारी स्तर पर भी हर शांतिपूर्ण तरीके से बन्द करायेंगे।" नाम पतों पर से अंग्रेजी भाषा व अक्षर मिटाने के लिए सीढ़ी, रंग व कूची समेत अभियान करें। स्कूल, कालेजों में माध्यम विषयक नीति पर और अंग्रेजी को केवल ऐच्छिक विषय बनाने के लिए सबल आन्दोलन होना चाहिए। यहां अंग्रेजी दैनिकों के वर्तमान पाठक अपनी आदतों को, चाहें कितनी ही कम संख्या में क्यों न हों बदलने को तैयार हो वहां अंग्रेजी दैनिकों की होली जलाई जाए। अदालतों में व फैसलों में अंग्रेजी के प्रयोग का विरोध हो और जहां जनमत तैयार किया जा सके, वहां सामूहिक अड़ंगा डाला जाए। तीन या चार महीने का नोटिस देकर अंग्रेजी में खबर भेजने वाले तार दूरमुद्रक मशीनों को तोड़ा जाए। ऐसी दुकानों का बहिष्कार कराएँ जो अपने नामपट से अंग्रेजी हटाने को तैयार नहीं हों।

——०——

*अंग्रेजी शिक्षा के कारण देश में एक ऐसे वर्ग का विकास हो गया है जो भारत में रह कर भी विदेशी है। यह भाषा गांवों और पिछड़ों के शोषण पर खड़ी है। भारत में अंग्रेजी का प्रचार शोषण के लिए हुआ है। इसलिए अंग्रेजी शोषण की ओर से न केवल आँख मूँदती है बल्कि समता को रोकती भी है। भारतीय संविधान की शपथ लेकर भी भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और दूसरे मंत्री अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग करते हैं। यह ठीक नहीं। अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग तुरत बन्द होना चाहिए।

राजनारायण

*जनतन्त्र कुछ के लिए ही न हो। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गैर बराबरी की खाई पटे, इसके लिए आवश्यक है कि अंग्रेजी का प्रभुत्व समाप्त हो। सार्वजनिक प्रयोग से अंग्रेजी को हटाये बिना हम कंगाली के खिलाफ जिहाद बोल ही नहीं सकते।

अध्यात्म त्रिपाठी

——————

गूंगा लोकतन्त्र

श्री विद्यासागर (समाचार भारती जालन्धर)

अंग्रेजी के प्रति मोह बढ़ता जा रहा है। आजादी के तीन दशक बीतने को हैं, परन्तु अभी भी हम भाषायी दृष्टि से परतन्त्र हैं, हमारे चिन्तन मनन की भाषा अपनी नहीं, पराई है और हमें न जाने क्यों ऐसी स्थिति पर गौरव है? अपने पहले वाले शासकों की भाषा को हम अपनाये हुए हैं और छोड़ना भी नहीं चाहते।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता की बात बहुत की जाती हैं। राजनीति में अग्रणी रहने वाले लोग साम्राज्यवादी देशों के सहारे अपने उद्योग चलाने के विरोधी होने पर भी भाषा के मामले में आत्मनिर्भरता की बात करना मानों अपराध सा समझते हैं। आर्थिक जगत् में महान् क्रांति लाने की बात कही जाती है। हम गरीबी दूर करना चाहते हैं, हम सदियों से दलित समाज के निम्न वर्गों को ऊपर लाना चाहते हैं, हम आर्थिक एकाधिकार के कड़े विरोधी हैं, परन्तु हम अपनी भाषायें नहीं लाना चाहते। प्रशासन में अभी भी अंग्रेज़ी का बोलबाला है। सरकारी सुविधायें उन्हें ही प्राप्त हैं जिन की भाषा अंग्रेजी है।

राजनीति हो अथवा आर्थिक चिन्तन सभी क्षेत्रों में अच्छा प्रकाशन अंग्रेजी में ही समझा जाता है। भारतीय समाज की प्रगति अवनति का लेखा जोखा अंग्रेजी में प्रकाशित होता है। ग्रामीण भारत के लिये योजनायें बनती हैं और वे भी अंग्रेजी में, हम कृषि क्षेत्र में महान् प्रगति करना चाहते हैं, परन्तु किसानों से उनकी भाषा में नहीं बल्कि सात हजार मील दूर की भाषा में बात करना चाहते है। हम अपने श्रमिक के जीवन स्तर को उठाने का संकल्प लिये हुए हैं, परन्तु उन्हें सरकार से प्रदत्त सुविधाओं की जानकारी उनकी भाषा में देने में संकोच क्यों करते हैं? हम अपने देश-बन्धुओं तक अपनी वस्तुएँ पहुँचाना चाहते हैं, परन्तु हमारी दुकान का नाम अथवा कारखाने का नाम अथवा हमारे कारखाने में बनी वस्तुओं पर लिखा नाम अपनी भाषा में नही बल्कि दूसरे देश की भाषा में होगा। भारतीय धरातल पर फरांटेदार अंग्रेजी बोलने वालों की गिनती सभ्य समाज में की जाती है और अपनी भाषाओं का प्रयोग करने वालों का मजाक उडाया जाता है।

हमारे चिन्तन मनन की भाषा अंग्रेजी है इसलिये अमरीका और इंग्लैंड में लिखी गई हमारे देश के बारे में पुस्तकें अधिक प्रामाणिक और विश्वास योग्य समझी जाती हैं। आजादी के बाद स्वदेशीपन से हमें भारी घृणा हुई है इसलिये तो हमारे पैन से लेकर सवारी तक पर विदेश में निर्मित का मार्का लगा है। हम अपने मिलने वालों को यह बहुत गौरव से कहते हैं कि हमारी अमुक चीज अमरीका की अथवा इंग्लैंड की है अथवा रूस की है। जिस देश में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई थी, जहाँ अपनी भाषा देश भक्ति का प्रतीक थी, वहाँ यह बताने में तनिक भी लज्जा का आभास नहीं होता कि मेरे तन का कपड़ा विदेश में बना है और मेरा नन्हा मुन्ना फराटेदार अंग्रेजी बोलता है और उसे अपनी भाषा तो आती ही नहीं।

दुःख तो तब होता है जब आर्थिक क्षेत्र में विदेशी विशेष रूप से पूंजीपति देशों से सहयोग का विरोध करने वाले भाषा के मामले में विदेशी भाषा का मोह नहीं त्याग पाते। देश में क्रांति लाने वाले अंग्रेजी का मोह तो त्याग नहीं पा रहे और इस प्रकार क्रांति की बात और अपनी योजनायें अभिजात वर्ग तक ही सीमित रखे हुए हैं। सरकार आर्थिक सम्पन्नता के लिए सभी को सुविधायें देने का दावा करती है और भाषा इस देश की नहीं लाती। देश में न्याय की भाषा अंग्रेजी है और इसलिए चंद लोग अंग्रेजी का ज्ञान अर्जित करने के बाद देश के करोड़ों लोगों पर शासन किये हुए हैं। राज्य विधान सभाओं तथा संसद् में अंग्रेजी का बोलबाला है फिर भी इन संस्थाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं।

भारत दुर्भाग्यशाली देश है जिसे अपनी भाषाओं पर नहीं विदेशी भाषाओं पर गौरव है। हमारे ही घर में कितने ही विदेशी अतिथियों ने हमारी ही भाषा बोल कर हमारे सोये मान को जागृत करने का प्रयास किया, परन्तु इन घटनाओं का भी हमारे ऊपर कोई असर नहीं हुआ लगता। विदेश यात्राओं पर गये हमारे अनेक प्रतिनिधि मंडलों से पूछा गया कि क्या हमारी अपनी कोई भाषा नहीं है, परन्तु इनका हमारे अंग्रेजी प्रेमियों पर तनिक भी असर नहीं हुआ।

क्या हम वास्तव में साम्राज्यवाद के विरोधी हैं? क्या हमें सचमुच उपनिवेशवाद के विरोधी हैं? क्या हम पूंजीपति देशों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण के दिल से विरोधी हैं? क्या आर्थिक असमानता दूर करने में हमारा विश्वास है। क्या प्रजातन्त्र के प्रति हमारी आस्था है? यदि इन सब का उत्तर हाँ है तो हमें अपनी कथनी के प्रति ईमानदारी का परिचय देना होगा। हमें विदेशी भाषा की दासता से छुटकारा पाना होगा। नहीं तो भारत के करोड़ों लोग अपने ही देश में विदेशियों सरीखे रहेंगे और लोकतन्त्र अंग्रेजीदाँ धनी लोगों का ढोंग बना रहेगा।

———

हम भी हर साम्राज्यवाद के खिलाफ हैं।
अंग्रेजी का साम्राज्यवाद हम पर नहीं थोपा जा सकता।

थोड़ा-थोड़ा सब चलता है

(नारायणस्वरूप शर्मा)

मास्को के जीवन के सम्बन्ध में साम्यवादी मित्रों से जो कुछ सुनने को मिलता था, वह अलिफ लैला के किस्सों से कम रोचक नहीं लगता था। मन में जिज्ञासा और उत्सुकता थी, यह जानने की और देखने की कि सारे संसार में साम्यवाद को फैलाने का अंतिम उद्देश्य लेकर चलने वाले इस राष्ट्र ने साम्यवाद के द्वारा कहाँ तक अपनी समस्याओं को सुलझाया है। १९५७ की जुलाई की गर्मी। ऐसे में मास्को में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय युवक सम्मेलन में भाग लेने का निमंत्रण मिला, तो मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

यूरोप में शिक्षा पाने वाले भारतीय विद्यार्थियों और शिक्षकों के प्रतिनिधि के रूप में मुझे और मेरी पत्नी उर्मिला को यह अवसर मिल रहा था। मैं इस बात के लिए विशेष उत्सुक था कि विदेश में भारत का प्रतिनिधि मण्डल अपनी भाषा का व्यवहार करे। जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया होते हुए लन्दन से तीन दिन की यात्रा के बाद जब हम मास्को के स्टेशन पर पहुँचे, तो मास्को युवक मण्डल की ओर से शुद्ध हिन्दी में हमारा स्वागत भाषण पढ़ा गया। इस बीच एक बात स्पष्ट लग रही थी कि यद्यपि प्रतिनिधि मण्डल में मुझ जैसे कितने ही ऐसे व्यक्ति थे, जो साम्यवादी नहीं थे, फिर भी बहुमत साम्यवादियों का ही था और प्रतिनिधि मण्डल को दिशा व गति तथा नेतृत्व देने का कार्य भी बिना किसी से पूछे हमारे एक साम्यवादी मित्र को दे दिया गया था।

मैं और मेरी पत्नी उनके पास गए। "क्योंकि हमारा स्वागत हिन्दी में पढ़ा जा रहा है, अतः आप उत्तर भी हिन्दी में ही दीजिएगा।"

"हिन्दी में क्यों, अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।"

"पर मास्को वाले भी तो हिन्दी में स्वागत कर रहे हैं। दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है या नहीं, कम से कम यहां मास्को में कोई अंग्रेजी नहीं समझता।"

'यह तो प्रतिक्रियावादी बात हुई। हिन्दू सम्प्रदायवादियों में और आप में क्या अन्तर रहा ? हमें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हम रूढ़िवाद के खिलाफ हैं।

मैंने कहा "इसमें रूढ़िवाद की तो कोई बात नहीं, केवल राष्ट्रीयता की बात है और अगर आपने उत्तर हिन्दी में न दिया, तो मैं इसका विरोध करूँगा।"

"आप जैसे पोंगापन्थी को समुद्र पार आने ही नहीं देना चाहिए था।"

यूरोप के भारतीयों का प्रतिनिधि होते हुए भी इस प्रकार का अनुरोध क्यों किया, यह मेरे कई घनिष्ठ मित्रों से कहलवाया गया। स्वागत का उत्तर अंग्रेजी में ही दिया गया। स्टेशन पर हम भूतपूर्व गुलाम भारतीयों के अतिरिक्त तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी को वहां कोई नहीं समझता था, अतः उसका अनुवाद रूसी में किया गया। सात हिन्दी के दुभाषिये हम लोगों के शिष्टमण्डल की सेवा में भेजे गए थे, पर मेरे और उर्मिला के अतिरिक्त सबने रेलवे स्टेशन पर ही हिन्दी दुभाषियों के स्थान पर अंग्रेजी दुभाषियों की मांग की, पर रूस में भी इतनी जल्दी कुछ नहीं हो सकता था। इसलिए रेलवे स्टेशन से होटल ओस्तानकीनो तक, जहाँ हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया गया था, जाते हुए बस में हिन्दी दुभाषिये ही हमारे साथ रहे।

हम अपने होटल में बिस्तरे खोल ही रहे थे कि भारतीय दूतावास से यह सूचना आई कि श्री मेनन और उनकी पत्नी श्रीमती मेनन शिष्टमण्डल से बातचीत करेंगे। हम सब लोग एकत्र हुए और बहुत-सी बातचीत के बाद श्रीयुत मेनन तो चले गए, परन्तु श्रीमती मेनन ने यह प्रार्थना की कि यद्यपि कुछ व्यक्तियों को कठिनाई हो सकती है, फिर भी चूंकि दुभाषिये हम को दे दिए गए हैं, इसलिए यथासम्भव हम लोग हिन्दी का ही उपयोग करें। अंग्रेजी के दुभाषिये अमरीकी शिष्टमण्डल के साथ काम कर रहे हैं और इस दृष्टि से हम अपने आतिथेय का ख्याल रखने के लिए भी हमें हिन्दी दुभाषियों से ही काम लेना चाहिए। मैंने भी खड़े होकर, हिन्दी उपयोग में न लाना कितना शर्मनाक होगा, यह बतलाने की कोशिश की, पर लोग हल्ला मचाने लगे—

"हिन्दी साम्राज्यवाद हम पर नहीं थोपा जा सकता। हम साम्राज्यवाद के खिलाफ हैं।"

उर्मिला भी जोश में आकर खड़ी हो गई—"हम भी साम्राज्यवाद के खिलाफ हैं। अंग्रेजी का साम्राज्यवाद हम पर भी नहीं थोपा जा सकता।"

"शर्म-शर्म की आवाजें आईं, पर हल्ला और झगड़ा बढ़ता गया और यदि श्रीमती मेनन और मैं ठीक बीच-बचाव न करते, तो स्त्री-समानता के हामी तथाकथित वामपन्थी अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर महिला से भी मारपीट करने से न चूकते।

मास्को में रहने वाले भारतीयों में यह बात फैल गई थी। मास्को रेडियो के हिन्दी विभाग में काम करने वाले मेरे एक मित्र भी जायसवाल आए। मास्को सरकार द्वारा संचालित भारतीय अनुवाद विभाग में भी उन दिनों १५-२० साथी हिन्दी अनुवाद का काम करते थे। उन्होंने भी हम से आकर प्रार्थना की और यह बताया कि भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के हिन्दी के बजाय अंग्रेजी उपयोग में लाने का कितना दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

इस बीच सीधे भारत से आकर कुछ और प्रतिनिधि हमारे शिष्टमण्डल से मिल गए थे। उनमें श्री यशपाल जैन जैसे हिन्दी प्रेमी भी थे। हम लोगों ने सबको समझाने की कोशिश की, पर कोई अंग्रेजी छोड़ने के लिए तैयार न हुआ, परन्तु अंग्रेजी के दुभाषिये उपलब्ध नहीं थे और बिना दुभाषियों के लोग तीन दिन में ही तंग आ गए थे। हिन्दी के दुभाषियों को इन्होंने भगा दिया था। हर जगह पीछे रह जाते, परेशानी बढ़ती गई।

लोग हम दोनों के पास बैठने की कोशिश करते, क्योंकि हमारे पास हिन्दी का दुभाषिया था पर वह उदासीनता के कारण हमारे अतिरिक्त किसी दूसरे की सहायता करने की रुचि नहीं रखता था। मास्को ओरियन्टल स्कूल के डा० चेलिशेव मिलने आए।

"भारतीय तो रूस वालों से भी आगे हैं।"

"वह कैसे ?" मैंने कहा।

"अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर आप अपनी भाषा हिन्दी को छोड़ देने के लिए तैयार हैं। हम लोग रूस में कितने पिछड़े हुए हैं। अपनी भाषा से चिपके हुए हैं।"

उनके चेहरे की मुस्कान से जैसे ही व्यंग्य मेरी समझ में आया, मेरा मन घृणा से भर उठा, पर उन्होंने फिर कहा, "अगर आपको अपनी भाषा हिन्दी से इतनी घृणा है, तो आप रूसी भाषा क्यों नहीं अपना लेते। वह भी तो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।

ढंग से कोई उत्तर मुझसे न देते बन पड़ा। हम लज्जा और दुःख से गड़े जा रहे थे, पर अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर गुलाम बनना पसन्द करने वाले उन अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों का हम क्या करते? अपने ही देश में जिस भाषा का तिरस्कार होता हो, उस हिन्दी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने की आवाज उठायेगा कौन ?

दस दिन बाद जब ये अंग्रेजीदा व्यक्ति तंग आने लगे तो, उन्होंने पुनः हिन्दी दुभाषियों की मांग की। हिन्दी दुभाषिये भेज तो दिये गए, पर जिस व्यक्ति के मन में आपके प्रति प्रेम न हो, वह आपकी जिस तरह की सेवा दे सकता है वैसी ही सेवा उन्होंने देनी शुरू की। वादविवाद भी हुए। मैं ग्लानि में इतना भरा हुआ था कि इस ओर कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया। १४वें दिन मुझे वातावरण में कुछ परिवर्तन

सा लगा। जो भारतीय मेरे और उर्मिला के हिन्दी व्यवहार में लाने के कारण हमारे साथ अभद्र व्यवहार कर रहे थे, वे अचानक हमारी नमस्ते लेने लगे और कुछ तो करने भी लगे। हमारे दुभाषिये के मित्रतापूर्ण व्यवहार के कारण मास्को की जनता की ओर से सबसे अच्छा व्यवहार हमें मिल रहा था।

१५वें दिन कुछ व्यक्ति, जो मीटिंग में उर्मिला के साथ अभद्र व्यवहार करने को तैयार हो गए थे, हम दोनों से आकर मिले।

"आप हमें क्षमा कीजिए।"

"किस बात के लिए?"

"आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया गया, पर आप दोनों सबसे मजे में हैं।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। मैंने कहा, "आप तो हिन्दी नहीं समझते, आप हिन्दी बोल कैसे लेते हैं?"

"अरे थोड़ा-थोड़ा सब चलता है।"

१४ दिन पहले तक इन दो व्यक्तियों ने डंके की चोट से यह दावा किया था कि हिन्दी उनके लिए ग्रीक और लेटिन है और अब यह 'थोड़ा-थोड़ा सब चलता है' हो रहा था।

धूमधाम से हमारी विदाई हुई। आँखों में आँसू भरकर हमें उपहार भेंट किए जा रह थे। नेता को अवसर न मिलता था पर आतिथेय के अनुरोध पर हिन्दी में हम सब जगह धन्यवाद-भाषण कर देते थे।

कोरिया के प्रतिनिधि मण्डल की ओर से हमें विदाई दी गई, तो हमारे नेता ने फिर खड़े होकर अंग्रेजी में धन्यवाद देना शुरू किया। हमारे एक मद्रासी भाई ने खड़े होकर टोका—

"अभी भी शर्म नहीं लेता, इतना पिट कर भी अंग्रेजी बोलता है, हिन्दी बोल।"

और हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, १४ दिन पहले जिन्होंने हमारे हिन्दी बोलने के अनुरोध को गाली देकर ठुकरा दिया था, वही १४ दिन की ठोकरों के बाद हिन्दी बोल रहे थे।

गुलामों की जहमियत के लिए कौन सी खुराक चाहिए, यह मेरी समझ में आ गया था। विदेश की मार ने अन्तर्राष्ट्रीय गुलामों को भी राष्ट्रीयता की याद दिला दी थी।

लन्दन में जब हम वापस पहुँचे, तो सब हमें अलग से हाथ मिलाने, नमस्ते करने, धन्यवाद देने, हमारा पता नोट करने और दसवे दानिया यानि फिर मिलेंगे कहने के लिए आए।

हम विदेशियों से फटकार खाकर ही अपनी भाषा का सम्मान करते हैं, यह विडम्बना है।

———

('कौन सुने, कौन सुनाए' से साभार)

"अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन" ध्वंसात्मक मार्ग का औचित्य

—यशपाल शास्त्री

ऋग्वेद में वाक्सूक्त का तीसरा मन्त्र इस प्रकार है :—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥

इस मन्त्र में वाणी के मानवीकरण द्वारा मनुष्य—समाज को राष्ट्र की समृद्धि का रहस्य बताया गया है।

वाग्देवी की यह स्पष्ट घोषणा है कि यदि मैं राष्ट्र की हूँ तो उस राष्ट्र को सभी प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति करा देती हूँ। यज्ञ की भावना वाले व्यक्तियों की प्रथम ज्ञानदात्री मैं ही हूँ। वे बड़ों के सत्कार, समानों से सहयोग तथा छोटों की सहायता के कार्य में मेरे (राष्ट्रभाषा के) प्रयोग को ही प्राथमिकता दिया करते है। शरीर, नगर और राष्ट्र की रक्षा चाहने वाले विद्वान् लोग (विद्वांसो हि देवाः) पढ़ चाहे जितनी भाषाएँ लें, किन्तु विशेष रूप में वे मुझे (राष्ट्रभाषा को) ही धारण करते हैं। इसका कारण यह है कि मैं उस राष्ट्र के बहुल ऐश्वर्य की उसमें स्थिति विधात्री हूं। उसे नष्ट नहीं होने देती, इसके अतिरिक्त उस राष्ट्र को अप्राप्त ऐश्वर्य की प्राप्ति बाहुल्य से कराया करती हूँ।

विश्व में प्राचीनतम साहित्य का यह वाक्य आज भी कितना सार्थक है इसका प्रमाण अपनी-अपनी भाषाओं के ही माध्यम से अपूर्व समृद्धि पाने वाले राष्ट्र :—ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, चीन, इजराईल, जापान, फ्रांस, जर्मन, चैकोस्लोवाकिया आदि के रूप में सबके सामने है।

भारत में भी राष्ट्रभाषा को उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न हो रहा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी साहित्य संगम, हिन्दी रक्षा समिति, हिन्दी प्रचारिणी सभा हिन्दी परिषद्, नागरी प्रचारिणी सभा, भारतीय साहित्य परिषद् आदि असंख्य संस्थाएँ बड़े मनोयोग से अपना काम कर रही हैं। फिर भी हिन्दी का, राष्ट्रभाषा का

आसन डोलता ही दीख रहा है। बात कुछ बन नहीं पा रही। यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न होता हो तो देखना चाहिए कि कौन सा दोष रह गया है? किन्तु इन संस्थाओं के सक्रिय सदस्य अपने प्रयत्न सम्बन्धी उस दोष को देखना ही नहीं चाहते जिसके कारण उन्हें अब तक असफलता ही मिली। यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है —

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भुतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो ये सम्भूत्यां रताः॥

सफलता के दो मार्ग हैं —एक असम्भूति और दूसरा सम्भूति। एक नकारात्मक और दूसरा सकारात्मक। एक ध्वंसात्मक, दूसरा सृजनात्मक। इन दोनों मार्गों में जो व्यक्ति असम्भूति का, ध्वंस का नकारात्मक मार्ग अपनाते हैं वे घटाटोप अंधेरे में प्रवेश करते हैं। जो सम्भूति का, सृजन का सकारात्मक मार्ग अपनाते हैं वे और भी अधिक अंधेरे में प्रवेश करते हैं।

दुर्भाग्य से राष्ट्र-भाषा को उचित स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करने वाली उपर्युक्त सभी संस्थाएँ सृजन को ही आधार बनाए हुए हैं और शायद इसीलिए अधिक से अधिक अंधेरे में भटके जा रही हैं। सफलता, उद्देश्य सिद्धि उन्हें नहीं मिल पा रही हैं। वेद कहता है—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥

अर्थात् जो व्यक्ति सृजन और विनाश इन दोनों मार्गों के महत्त्व और प्रयोग को जानता है वह विनाश के, ध्वंस के मार्ग से मृत्यु को पार कर के सम्भूति के, सृजन के मार्ग से अमृतत्व को प्राप्त किया करता है।

स्पष्ट है, विनाश की अपेक्षा पहले है और सृजन की बाद में। लुधियाना के चौक फव्वारा में खड़े होकर मैंने स्टेट बैंक भवन की नींव को खुदते हुए बहुत दिनों तक देखा है। यह काम बड़ी मेहनत का था जो महीनों चलता रहा। उसके ऊपर विशाल भवन जो बनना था। यदि नींव न खोदी जाती या कम खोदी जाती तो यह विशाल इमारत अपनी मृत्यु को पार न कर सकती थी। पूरी बनने से पूर्व ही धराशायी हो जाती। अच्छे से अच्छा मसाला भी उसे अमरत्व न दे पाता।

'अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन' ध्वंस का वह अपेक्षित मार्ग है जिसे अपनाए बिना उपर्युक्त संस्थाओं का कोई भी प्रयत्न सिरे नहीं चढ़ सकता। इसे नकारात्मक कह कर वे सकारात्मक संस्थाओं वाले तथा उनके समर्थक भली बुरी गालियां दे सकते हैं — आखिर खुदाई करने वाले मज़दूरों को भी गालियाँ और अपमान ही मिलता है न? अपने ऊपर सारे शरीर का भार संभालने वाले पैर — शूद्र ही कहलाते हैं न? पर इनके बिना अपना काम चलाने का मजा लेकर देखिए तो!

राज मिस्तरियों को बड़ा वेतन चाहिए, अच्छी खातिरदारी चाहिए। उन का मुँह फिर भी सीधा नहीं होता। खुदाई के मज़दूर को चाय की प्याली या कोरी शाबाशी भी काफी रहती है। पर उन्हें यह भी कौन देता है? मिलती हैं केवल गालियाँ। उन्हें काम का आदेश भी अपमानजनक शब्दों में ही दिया जाता है। यदि धन-कुबेरों को देखें तो वे भी सकारात्मक संस्थाओं के ही लिए अपनी थैलियों का मुख खोलते हैं। यदि कोई 'अंग्रेजी हटाओ' वाला अपनी थोड़ी सी भी मांग उनके सामने प्रस्तुत करने लगे तो उनके तेवर चढ़ जायेंगे। उसका दिमाग खराब बतायेंगे।

मज़दूर गाली खाकर भी काम किये जाता है। पागल कहलाकर भी अंग्रेजी हटाओ' वाले अपने काम में जुटे हैं। यद्यपि साधनों के अभाव में इनका काम फावड़े के बिना नाखूनों से मिट्टी खोदने सरीखा है। फिर भी हिम्मत बांधे हुए हैं। किन्तु इन की हिम्मत का पुरस्कार यह कि इनका नाम सरकार की भी काली सूची में लिखा जाता है और जनता भी इन्हें खिजाती ही है। सब प्रकार का विष ये पी रहे हैं।

पर यह विष शिव को भी पीना पड़ा था। शिव ध्वंस के देवता जो ठहरे। पर वे आशुतोष हैं। बड़े चढ़ावों की उन्हें चाह नहीं। धतूरे का फूल ही काफी है। शायद ये अंग्रेजी हटाओ वाले भी उसी पंथ के पथिक हैं। थोड़ा पाकर भी प्रसन्न हो जाते हैं। दाता का नाम जग भर में उछालते हैं। श्रेय उसे देते हैं, अपश्रेय स्वयं झेलते हैं।

अपने मूल्यांकन के प्रति इन्हें यद्यपि कोई रुचि नहीं पर इतिहास को कभी न कभी इनका मूल्यांकन करना पड़ेगा अवश्य। समय साक्षी है कि सृजन के देवता ब्रह्मा को कोई नहीं पूजता। शिव सबका आराध्य है! ध्वंस ही शिव है। वही महादेव है, "अंग्रेजी हटाओ" वाले उस शंकर के ही सैनिक है। इनका किया हुआ ध्वंस ही सृजन का आधार बनेगा। "अंग्रेजी हटाओ" की नींव पर ही हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के विकास का महल खड़ा होगा।

---

*सिद्धान्त हीनता और वक्ती फायदा यही आज की राजनीति के मुख्य आधार हैं। आज के सभी दल सत्ता के टुकड़े बटोरने में व्यस्त हैं। 'अंग्रेजी हटाओ' से न तो सत्ता प्राप्त होगी न पद प्राप्त होंगे। तो फिर इस आन्दोलन की झंझट में कौन सा राजनीतिक दल फँसना चाहेगा?

—आचार्य श्रीपाद केलकर

मुल्की ज़ुबान से ही अवाम की तरक्की मुमकिन

(मौलाना मुहम्मद अहमद रहमानी
मुफ्तीए आजम पंजाब)

मौजूदा हालात में हिन्दी ज़ुबान मुल्क और अवाम की तरक्की का बायस है। उन्होंने कहा कि मौजूदा नसल के जहन व फिकर को खालिस हिन्दुस्तानी जहनो फिकर बनाने के लिए ज़रूरी है कि इस नसल के बच्चों को मुल्की और इलाकाई ज़ुबान में तालीम दी जाय और यही ज़ुबानें इनको सिखाई जायें ताकि आने वाली नसल का ज़हनो फिकर, कल्चरों तहजीब खालिस हिन्दुस्तानी हो। गैर मुल्की ज़ुबान खसूसन अंग्रेजी का इस्तेमाल तालोबिल्मों में अंग्रेजी ज़ुबान की बरतरी अंग्रेजी तहजीबों तमद्दन की तरफ रग़बत दिलाने के लिए बहुत बड़ा ज़रिया है। हमारे जवान हिन्दुस्तान में रहते हुए जब गैर मुल्की नज़रो फिकर से वहां के कल्चरों तहज़ीब को अपनाते हैं तो मुल्की हालात और यहाँ की तरक्की और जरूरियात को समझ नहीं पाते। इसलिए ज़रूरी है कि हिन्दी ज़ुबान के साथ इलाकाई ज़ुबानों को ज़रियाए तालीम बनाया जाये और अक्लियतन गैर-मुल्की ज़ुबान अंग्रेजी को हटाया जाये।

————

*हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें।

—महात्मा गांधी

*'अंग्रेजी हटाओ' आन्दोलन देश से गरीबी और गैरबराबरी के हटाने का आन्दोलन है। देश के करोड़ों के लिए उत्पादन और रोजगार के सृजन और नवीकरण का आन्दोलन है। अपने देश की राजनीति का महान आविष्कार है। — कृष्णनाथ

*अंग्रेजी आज श्री सामन्तों की ऐसी भाषा है जिस पर एक खास सामाजिक तबके का एकाधिकार सा स्थापित होता जा रहा है। यह वही वर्ग है जो एक ओर चोर से चोरी करने और मालिक से जागते रहने की बात करता है।

—सुरेन्द्र प्रसाद नारायण सिंह

————

'स्व' तन्त्र के बिना स्वराज्य निरर्थक

(अ० विश्वनाथन्)

मनुष्य जो सुनता है, पढ़ता है, वही वह सोचता है। प्रत्येक भाषा के अपने गुण और विशेषताएँ होती हैं; जिस पर उस भाषा के प्रयोग करने वाले समाज की संस्कृति, परम्परा और जीवन दर्शन की छाप होती है। यदि हम अपनी भाषा छोड़कर किसी विदेशी भाषा का प्रयोग करेंगे तो हमारे मन और बुद्धि पर उसी परम्परा, संस्कृति एवं जीवन दर्शन के संस्कार पड़ेंगे। 'स्व' तन्त्र के बिना स्वराज्य निरर्थक है और जब मन और बुद्धि दासता में जकड़े होंगे तो 'स्व' तन्त्र नहीं आएगा। अतः हमें देशीय भाषाओं का प्रयोग और अखिल भारतीय भाषा हिन्दी का अभ्यास लेखों, भाषणों और आन्दोलनों द्वारा नहीं बल्कि प्रत्यक्ष जीवन में करना चाहिए। १९४७ के पश्चात् हमारे अन्दर स्वदेशी का पाखण्ड और विदेशीयता का आत्मघाती प्रेम जागा है। इसे दूर करना होगा। जो लोग इस विषय में नरमी और समझौता बरतते हैं वे स्वभाषा के मित्र नहीं शत्रु हैं।

———

*स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी का प्रयोग वहाँ भी होने लगा है जहां गुलामी के दिनों में उसका विरोध था। यह दुःख की बात है। जनतन्त्र चलाने के लिए भारत के राजनीतिक दलों को अंग्रेजी का बहिष्कार करना चाहिए। किन्तु अपने को समाजवादी और वामपन्थी कहने वाले दल भी अंग्रेजी को चला रहे हैं। अंग्रेजी को चलाकर जनता की राजनीति की बात करना झूठ को बढ़ाना है। —राजनारायण

*अंग्रेजी को इस देश में कायम रखने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय प्रतिगामी शक्तियों ने कुचक्र रचा है और मुल्क के शोषण और मानसिक गुलामी को कायम रखने का व्यापक प्रयास किया है। देश के अंग्रेजी अखबार प्रकाशक, विदेशी प्रकाशन संस्थाएं और दूसरे पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देश सभी इस षड्यन्त्र के अंग है। —डा० मोती सिंह

———

पश्चिमीकरण और अंग्रेजी

(डा० युगेश्वर)

भारत में अंग्रेजी हटाओ के विरुद्ध इतने सारे विरोध के बावजूद वह क्यों टिकी है ? अंग्रेजी नामपट मिटाए जाते हैं फिर उग आते हैं। चिटों, पुर्जों में अंग्रेजी वैसी ही है। इसके कई कारण हैं। कुछों की राय में इसका कारण नौकरियों, न्यायालयों, विधान सभाओं, अच्छे समाचार पत्रों में अंग्रेजी का टिका रहना है। अंग्रेजी अनपढ़ को काम नहीं मिलता। मिला तो कम स्तर का। एक स्तर में भी हीन स्थिति का। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य सा हो जाता है। यह सही होते हुए भी बात आगे जाती है। अंग्रेजी के रहने का कारण अनिवार्यता से अधिक मोह, भय आक्रान्त मनःस्थिति है। भारत में अंग्रेजी की स्थापना का इतिहास देखना होगा भारत में अंग्रेजी लादी गई थी। इसके दो उद्देश्य थे --

पश्चिम के ज्ञान को फैलाना और भारत की मेधा को समाप्त करना। भारत में जिन लोगों ने अंग्रेजी की जड़ रोपी उन्हें भारत से कोई मोह न था। उनका मूल उद्देश्य भारत का पश्चिमीकरण करना था। और पश्चिमीकरण का उद्देश्य भारत की गरिमा-निजी चेतना को सदा के लिए मारकर उसके शरीर में पश्चिमी भूसा भरना था। जिससे प्रत्येक भारतीय शरीर से भारतीय हो कर भी मन प्राण से पश्चिमी हो। पश्चिम भारत से हट भी जाए तो उसके बौद्धिक राज्य कायम रहें।

पश्चिमी व्यापारी जानते थे कि शरीर की गुलामी से आदमी जल्द ऊब जाता है। फिर इतने बड़े देश को सदा गुलामी में बाँधे रखना सम्भव नहीं। किन्तु मन की गुलामी बहुत दिनों तक चल सकती है। इसके पीछे कुछ कारण हैं—यह कि शरीर गुलामी में कुछ ऐसे कष्ट हैं कि आदमी उनसे जल्द छूटना चाहता है। किन्तु मन की गुलामी वरदान मानी जाती है शरीर की गुलामी कभी आदर्श नहीं मानी जा सकती। किन्तु मन की गुलामी आदर्श हो सकती है। व्यक्ति या जाति का शासन तब तक नहीं स्वीकार किया जा सकता जब तक कि शासित बिल्कुल ही घटिया न हो। कभी-कभी वह भी विद्रोह कर देता है। किन्तु मन की गुलामी को शिक्षा, हुनर, कलाकरिता आदि की आड़ में स्वीकार किया जाता है। शरीर की गुलामी के अन्तर को इस प्रकार समझाया जा सकता है कि कोई अपने को किसी के चरणों का जूता समझे और कोई किसी पर जूता समझ कर लात दे दे। जूता समझने वाले में चेतन

अगर नहीं है तो उसे कष्ट नहीं होगा। किन्तु पड़ते ही उसके शरीर को पीड़ा होगी। यह संभव है कि किसी का शरीर भी ऐसा बन जाये कि उस पर किसी चीज का असर ही न पड़े। ऐसे लोगों की कमी नहीं किन्तु ऐसे व्यक्तियों की चर्चा यहां नहीं करनी है। क्योंकि यह मान कर चलना ठीक होगा कि अभी भारत में जो लोग हैं वे शरीर की गुलामी को अस्वीकार करते हैं। किन्तु लाखों पढ़े-लिखे लोग हैं जो शरीर की गुलामी भी करते हैं। आजादी के बाद ऐसे लोग शरीर की गुलामी को अस्वीकार करने वाले दल में मिल गये। इस प्रकार तीन प्रकार के लोग हुए—एक, जो शरीर की गुलामी को एक क्षण के लिए भी नहीं स्वीकार कर सकते। दो, जो शरीर की गुलामी को भी ईश्वर कृपा मानते हैं। तीन, जो शरीर तथा मानसिक गुलामी को भी अस्वीकार करते हैं। ऐसे व्यक्ति शरीर की गुलामी का कारण मानसिक गुलामी को मानते हैं।

मन असली चीज है। पुराणों ने मन को ही बंधन और मुक्ति का कारण माना है। पश्चिमी सभ्यता के प्रचारकों ने भारत का मन बांध लिया। दो चीजों से—अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी चिन्तन प्रणाली, पश्चिमी विचारों से। पश्चिम श्रेष्ठ है, भारत हीन है यह बोध जहाँ भी है वहीं गुलामी है। पश्चिम ने ज्ञान, विज्ञान, संसद, शिक्षा सब दिया। अगर सब दिया तो फिर विद्रोह क्यों? पश्चिमी प्रभाव में पागल मन कभी नहीं सोचता कि पश्चिम ने लिया क्या? भारतीय शास्त्रों और आवश्यकता के अनुकूल शिक्षा, देशी माध्यम, देशी शास्त्र, चिंतन प्रणाली, आत्मबोध आदि सब ले लिया। पश्चिमी भारत में देने नहीं भारत को लूटने आए थे। लुटेरा ज्ञान नहीं अज्ञान देता है। रोशनी नहीं अंधेरा देता है। गांव में घुसने वाले डाकू टार्च की रोशनी गृहस्वामी की आँख पर डालकर उसकी देखने की क्षमता को खत्म करते हैं। इस रोशनी को अंधा भी रोशनी नहीं कहेगा। यह रोशनी दृष्टि दूषित करने—अन्धा बनाने का ढंग मात्र है। अंग्रेजी और पश्चिमी शिक्षा दोनों ही दृष्टि दूषित करने वाली रोशनी है। यह रोशनी अन्धेरा और अन्धेरे का पर्याय है।

मूल चीज है पश्चिमी चिंतन। अंग्रेजी उसकी शाखा है। अंग्रेजी शाखा बार-बार काटने पर भी हरी हो जाती है। क्योंकि पश्चिमी ज्ञान के प्रति मोह बना है। पश्चिम की पूजा और अंग्रेजी का विरोध साथ-साथ नहीं चल सकता है। अंग्रेजी दो स्तरों पर खतरनाक है—1. यह कि अंग्रेजी के चलते भारत के सभी लोगों को न्याय, जनतन्त्र, अच्छी शिक्षा, राजकाज, सेना-आफिसरी आदि नहीं मिल सकती। २. अंग्रेजी के कारण भारत स्वरूप को भूलकर प्रवासी हो गया है। उसका भारतीय चिंतन-मनन से सम्बन्ध टूट गया है। अंग्रेजी राज का विरोध पश्चिमी-चिंतन का विरोध और अंग्रेजी की खिलाफत तीनों जुड़े हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के सबसे बड़े नेता गांधी ने न केवल अंग्रेजी सरकार का विरोध किया था बल्कि पश्चिमी शिक्षा पद्धति और अंग्रेजी की पढ़ाई का भी विरोध किया था। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता को आसुरी सभ्यता कहा था। यह आसुरी सभ्यता ही विश्व युद्धों, संहारक अस्त्रों की जननी है। गांधी इस

सभ्यता को न केवल भारत के लिए बल्कि योरप के लिये भी अकल्याणकर मानते थे। योरप और भारत की तुलना करते समय एक बात नहीं भूलनी चाहिये कि ईसा के बाद योरप में कोई ऐसा बड़ा आन्दोलन नहीं हुआ जो सम्पूर्ण मनुष्य की मुक्ति का आन्दोलन हो। इसकी अपेक्षा अपनी परतन्त्रता के दिनों में भी भारत ने गांधी का चिंतन दिया। यह चिंतन एक तरफ तो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता है दूसरी ओर दुश्मन के मन को बदलकर उसका कल्याण करना चाहता है। गांधी चिंतन पर सरकार और मठी गांधीवादियों की कीचड़ लगी है। यह कीचड़ गांधी के सत्य को ढक देती है। पश्चिमी शिक्षा में शिक्षित वर्ग इस कीचड़ के पीछे के सत्य को नहीं देख पाता है।

गांधी ने पूरी पश्चिमी सभ्यता को आसुरी कहा था। उन्होंने पूंजीवाद और साम्यवादी का भेद नहीं किया था। गांधी के बाद पश्चिमी सभ्यता को समझने की कोशिश डा० राममनोहर लोहिया ने की। डा० लोहिया की दृष्टि में पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों एक ही सभ्यता के दो पहलू है। यह सभ्यता बड़ी मशीनों, केन्द्रों उत्पादन व्यवस्था और दूसरे देशों की लूट पर खड़ी की गई है। योरप की साम्यवादी सभ्यता भी एशिया के या दूसरे रंगीन मुल्कों के शोषण का विरोध को आधार बनाकर नहीं खड़ी हुई थी। उसका उद्देश्य तो एशिया-अफ्रीका से की गई लूट की समृद्धि में मात्र हिस्सा लेना था। साम्यवादी या मार्क्सवादी सभ्यता की करामात पूर्वी योरप, जर्मनी और भारत के लोगों को अच्छी तरह मालूम है। यह सभ्यता, घृणा, द्वेष और दूसरे देशों के बाजारों पर कब्जा करने की नीति पर आधारित है।

इस प्रकार देखें तो स्वतन्त्र भारत में पश्चिमी प्रभाव दो सोतों से बढ़ा है। प्रथम सोत है आधुनिकीकरण और दूसरा है साम्यवादीकरण। दोनों सोते अंग्रेजी को बनाये रखना चाहते हैं। क्योंकि अंग्रेजी के द्वारा पश्चिमी प्रभाव को आसानी से रखा जा सकता है। अंग्रेजी का भारत में रहना पश्चिम के बौद्धिक शोषण के लिए जरूरी है। अंग्रेजी या पश्चिमी प्रभाव का मूल सोता तो भारत से ब्रिटिश राज रहा है। अब विदेशी अनाज, खाद, मशीन, आर्थिक सहायता, उच्च शिक्षण, विज्ञान, संसदीय प्रणाली, साम्यवाद आदि के द्वारा यह प्रभाव आ रहा है। न केवल स्थापितों पर बल्कि परिवर्तन के अधिकतर आन्दोलन भी पश्चिमी है। हर बीमारी के इलाज का पश्चिमी नुस्खा खोजा जाता है। भारतीय विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी विभागों का रुतबा अगर कुछ घटा है तो उसका स्थान समाजसेवा, समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, कृषिशास्त्र, तकनीकीशास्त्र, अमरीकी साहित्य आदि ने ले लिया है। ये सभी शास्त्र अमरीकी-रूसी चिंतनों को फैलाने का काम करते हैं। विश्वविद्यालय पश्चिमी शिक्षणसंस्थाओं की शाखाएँ है। पश्चिम में गैर अध्यापकी का काम पाकर विश्वविद्यालयों का वरिष्ठ अध्यापक भी भाग जाता है। जो अध्यापक भारत में बहुत दंभ दिखाते हैं, मान-मर्यादा की बातें करते हैं। वे अपने द्विज संस्कारों और पश्चिमी शिक्षा के अहंकार में भारत के साधारण जन-भंगी, चमार, धोबी आदि के अलग रहते हैं। वे अमरीका, कनाडा

आदि देशों में जाकर वहां से भंगी, चमारों और धोबियों में बैठकर, उनकी कृपा पाकर सुखी होते हैं। कारण यह कि पश्चिमी शिक्षा और चिंतन में केवल पश्चिम को श्रेष्ठ और दूसरों को हीन समझने का भाव है। पश्चिमी रंग में रंगा रंगीन व्यक्ति अपनी कौम से नफरत करने लगता है। वह पश्चिमी नहीं तो पश्चिम जैसा बनने की कोशिश करता है। नौकर मालिक के छोड़े गये कपड़ों को पहनना ही गौरव समझता है। क्या हुआ अगर वह मालिक नहीं बना। मालिक तो बन नहीं सकता। मालिकाना तो पश्चिमी व्यक्ति की बपौती है। गुमाश्ते, पटवारी आदि राजा का झब्बा पहनकर सामान्य जन पर रोब दिखाते हैं। भारत का शिक्षित व्यक्ति पश्चिमी झब्बो के द्वारा मालिक के प्रति निष्ठा और भाई के प्रति रोब दिखाता है। मालिक के दरबार में जाने वाला महत्त्वपूर्ण होता है। कौन व्यक्ति कितनी बार रूस, अमरीका गया, महत्त्वपूर्ण है। पूरा शिक्षित समाज अमरीकी-रूस मालिक के दरबार में प्रवेश चाहता है। सभी का प्रवेश संभव नहीं। कुछ दी जा सकते हैं। शेष की आंखों में लालच, अतृप्ति और भूख है।

मालिक अपनी दृष्टि के योग्यों का चुनाव करता है। जो अच्छे हैं दरबार में पहुँच जाते हैं। कुछ सामान्यों का भी उद्धार होता है। सैंया जिसे चाहे। पश्चिमी मालिक भारत सरकार के भी मालिक हैं। भारत सरकार और देश की दूसरी सरकारों में अंग्रेजी और मात्र पश्चिमी ज्ञान है। इसलिए भारत में भी पश्चिम के दरबारियों को काम मिलता है। प्रतिष्ठा मिलती है। भारत में पश्चिमी राज्य समाप्त हो गया। मरे व्यक्तियों की याद गहरी होती है। मृत पश्चिमी राज भारत के मन में और घुस रहा है। शंकर ने शरीरी काम को जला दिया। किंतु अशरीरी काम मनोज हो गया। सबके—शंकर के भी मन में रहने लगा। पश्चिमी साम्राज्यवाद चिंतन-विचार के अशरीरी रूप में भारत के मन में धंस गया। भारत की सरकारों का निश्चय महत्त्वपूर्ण है। करीब अठारह करोड़ रु० अनुदान के लिए रखे गये हैं। किन्तु भारतीय मेधा और भारतीय चिंतन की चर्चा तक नहीं। शिक्षा आयोग पश्चिमी विशेषज्ञों से सजा है। ऊपरी बातों की चर्चा होती है। लोग संतुष्ट हैं, शिक्षा आयोग ने क्षेत्रीय भाषा के माध्यम को स्वीकार किया है। डूबते को तिनके का सहारा। किंतु क्षेत्रीय माध्यम में भी अगर विषय पश्चिम का रहा तो अनुवाद की ज़िंदगी में कौन जीएगा। अंग्रेजी चलेगी। क्योंकि अनुवाद करना है। अंग्रेजी रहेगी क्योंकि अनुवाद समझ में नहीं आता। अनुवाद में वह मजा नहीं है जो मूल ग्रन्थों में है। आखिर अनुवाद और मूल के बीच का फर्क मिट तो जायेगा नहीं। उपनिवेशों का मालिक समुद्र पार होता है। यहां उसके नियुक्त चाकर उसकी आकांक्षाओं को जनता पर लागू करते हैं। साहित्य में यह काम अनुवादों द्वारा होता है।

अनुवाद को बिलकुल अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके द्वारा एक देश, जाति, व्यक्ति और भाषा का ज्ञान दूसरी जगह पहुँचता है। ज्ञान मनुष्य मात्र की सम्पत्ति है। उसे एक स्थान पर बन्द नहीं किया जा सकता। अनुवाद और खाली

अनुवाद बुरा है। मात्रा भेद से गुणभेद होता है। जो जाति अपना सोचती है, जिसकी अपनी प्रजा है अनुवाद उसकी सहायता करता है। किन्तु जिस जाति या व्यक्ति के पास अपना चिंतन-मनन-प्रज्ञा नहीं है अनुवाद उसे भारदाही सेवक बनाता है। भारत सरकार के अनुवादीकरण को देशीकरण समझना भूल होगी। यह भी पश्चिमीकरण का ही एक ढंग है। १८०७ में जब भारत में पश्चिमी शिक्षा दी जाने लगी तो मुनरो और एलफिंस्टन जैसे व्यक्ति देशी भाषाओं के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान देना चाहते थे। आज उनकी बात सुनी जा रही है। अंग्रेजी में पश्चिमी विचारों का प्रसार लार्ड मिन्टो और मेकाले का युग था और देशी भाषाओं में पश्चिमी विचारों का प्रचार मुनरो और एलफिंस्टन युग है। तब मुनरो-एलफिंस्टन युग नहीं चल सका। आज भी नहीं चलेगा। हर विषय अपनी भाषा भी खोजते हैं। पश्चिमी ज्ञान पश्चिमी भाषा को कभी समाप्त नहीं होने देगा।

अनुवाद की चर्चा थोड़ी और। अनुवाद प्रायः उन्हीं पुस्तकों के हो रहे हैं जो पश्चिम में ही क्यों भारत में भी पुरानी हो गई हैं। विश्वविद्यालयों के वृद्ध अध्यापक अपने युग की लोकप्रिय किताबों का अनुवाद कराना चाहते हैं। राजा जिस झूल को पहनकर सम्राट के दरवाजे में प्रवेश पाया उसे वह अपने बच्चों के शरीर पर भी देखना चाहता है। किन्तु इन किताबों का आज के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्यार्थी उससे असंतुष्ट होकर अनुवाद की भाषा को कोसेगा। उसे अनुवाद से चिढ़ होगी। मूल भाषा को पुनःग्रहण करना चाहेगा। इधर अमरीकी रूसी कृपा (?) से अमरीका रूस की भारी दामों वाली किताबों के सस्ते संस्करण हो रहे हैं। सौ रुपये की किताब दस रुपये में आती है। मँहगी किताबों के सस्ते संस्करण अनुवाद ही तो हैं। यह मँहगी का सस्ती में रूपान्तर हुआ। गरीब भारत इन किताबों को तेज़ी से खरीद रहा है। उसे बताया जाता है कि सौ की चीज दस रुपये में आ रही है। नीलामी की चीज है। दाम कम और लाभ अधिक। बोली में हार का संकट नहीं। गरीब से गरीब पाठक भी अपनी क्रय शक्ति बढ़ाता है। अंग्रेजी की सस्ती किताबें खरीदता है। देशी किताबें खरीदना बन्द करता है। देशी आन्दोलन को एक धक्का और।

विरोध पश्चिमी प्रभाव और गुलामी का है पश्चिम का नहीं। यहाँ पश्चिमी सभ्यता का विश्लेषण मानवी सभ्यता की दृष्टि से है। भारत और पश्चिम का आधुनिक सम्बन्ध विजित और विजेता के रूप में शुरू हुआ है। यह एक बार झटका जाना चाहिए। भारत-योरोप को टूटकर जुड़ना होगा। तभी दोनों देशों के सम्बन्ध ठीक हो सकेंगे। राष्ट्रों का मण्डल बनाना और उस में रहना बुरा नहीं है। बुरा है आज का राष्ट्र मण्डल। क्योंकि वह एक खास इतिहास की उपज है। वह इतिहास जिसे खोना, तोड़ना और छोड़ना दोनों के हक में है।

अंग्रेजी की समाप्ति के लिए पश्चिम के वर्चस्व की अस्वीकृति बिल्कुल पहला कदम है। भक्तों ने भगवान के रूप-नाम को पहले ग्रहण किया या बाद में ब्रज और अवध की भाषाओं का भी इस्तेमाल किया।

———

अंग्रेजी का स्थान

मूल लेखक -- श्री ईशकुमार
रूपान्तरकार -- प्रो० रंजन बाला

भारत में जब भी अंग्रेजी के महत्त्व को घटाने का क्षणिक सा भी प्रयत्न किया जाता है तो उसे प्रबल प्रतिवादों का सामना करना पड़ता है। तर्क दिये जाते हैं कि अंग्रेजी भाषा को महत्त्व न देने से हम अज्ञान के अन्धकूप में गिर जायेंगे। हमारी उच्च शिक्षा ध्वस्त या आधार हीन हो जायेगी। पश्चिम से हमारा सम्पर्क टूट जायेगा। इस प्रकार के तर्कों में भावुकता और भ्रम का पुट कुछ अधिक प्रतीत होता है। आइये, हम इस समस्या पर निम्नांकित पक्षों को दृष्टि में रखते हुए निरपेक्ष भाव से विचार करें :—

(१) अध्ययन हेतु एक विषय के रूप में
(२) शिक्षा के माध्यम के रूप में
(३) कार्यालय की भाषा के रूप में
(४) लिंग्वा फ्रैन्का (सम्पर्क भाषा) के रूप में
(५) पश्चिम से जोड़ने वाली श्रृंखला के रूप में

मैं सबसे पहले चौथे पक्ष पर विचार प्रस्तुत करूँगा क्योंकि प्रथम तीनों पक्ष अन्तिम रूप से इसी पर निर्भर हैं। मेरा विचार है कि हम हिन्दी को लिंग्वा फ्रैन्का बनाने का निश्चय कर चुके हैं। यद्यपि कुछ अत्यन्त योग्य एवं माननीय व्यक्तियों के मस्तिष्क में अब भी संदेह रेंग रहे हैं। वे शायद यह अनुभव नहीं कर पा रहे हैं कि कोई भी राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय भाषा के अभाव में वास्तविक अर्थों में राष्ट्र नहीं रह पाता। राष्ट्रीय भाषा एक राष्ट्र के जीवन का, इसके कवियों और शूरवीरों का, उसके चलचित्रों तथा रंगमंच का एक जीवन्त प्रतीक होती है। यह प्रेरणा का स्रोत एवं राष्ट्रीय गौरव का आधार होती है। यह एक साधारण सा तथ्य है कि राष्ट्र का जीवन अथवा मृत्यु राष्ट्रीय भाषा के साथ अविच्छिन्न रूप में जुड़े होते हैं। इतिहास उदाहरणों से भरा पड़ा है। विस्मार्क ने जब पोलिश राष्ट्रीयता को नष्ट कर पोलैण्ड में जर्मन शासन को चिरस्थायी बनाना चाहा तो सर्वप्रथम उसने उसकी राष्ट्रीय भाषा पर आघात किया। उसने बच्चों को राष्ट्रीय भाषा में शिक्षा प्रदान करना और सभाओं को राष्ट्रीय भाषा में सम्बोधित करना गैरकानूनी करार दिया। हमें उसकी कुशाग्र

बुद्धि का लोहा मानना पड़ता है। किन्तु पोलैण्डवासियों ने आत्मसमर्पण नहीं किया। पोलिश भाषा पढ़ना और पढ़ाना उनका धर्म बन गया। एक बार पुनः ऐसा ही आक्रमण हुआ। इस बार यह रूस की ओर से था और इसका भी इसी प्रकार प्रतिरोध किया गया।

बच्चे डेस्क के ऊपर रूसी भाषा की पुस्तक तथा डेस्क के नीचे पोलिश भाषा की किताब रखकर अपनी भाषा पढ़ते थे। जर्मनों द्वारा क्रूर यन्त्रणाऐं दी जाने पर भी चेक लोगों ने राष्ट्रीय भाषा के जीवन मृत्यु के साथ ही अपने जीवन मृत्यु को संलग्न समझा। १९४८ में जाकर उन्हें पुनर्जीवन मिला। यह एक अद्भुत सफलता थी। जर्मनी की तरह जापान ने भी कोरिया पर अपनी भाषा थोपनी चाही, परन्तु जर्मनी की भाँति ही जापान भी असफल रहा। डेनिश और स्कैण्डिनेवियन प्रशासन के मध्य 'नार्वे' अपनी भाषा खो बैठा, परन्तु १९१४ में जबकि समस्त संसार मरने मारने में संलग्न था 'नार्वे' अपनी भाषा को पुनर्जीवित करने में लगा हुआ था। अपनी भाषा पढ़ने लिखने के लिए शहरी लोग ग्रामों की ओर भागे। निरक्षर ग्रामीणों ने भाषा को सुरक्षित रखा और भाषा ने देश को। यहाँ तक कि फिनलैण्ड जैसे छोटे से राष्ट्र ने भी स्वीडिष प्रशासन और दमन की शताब्दियों के पश्चात् अपनी भाषा को पुनर्जीवित कर लिया।

एक और भी शिक्षाप्रद उदाहरण है आयरलैण्ड का। शताब्दियों तक आयरलैण्ड के निवासी अंग्रेजी बोलते रहे हैं। १९२२ में जब उसे स्वतन्त्रता मिली तो जनसंख्या का केवल १२% भाग आयरिश समझता था और केवस ३% भाग आयरिश जानता था। राजनीतिज्ञ और लार्ड लोग किसानों के पास अपनी भाषा सीखने के लिए गए और आज गैलिक ने सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी का स्थान ले लिया है। भारत में स्थिति इतनी बुरी नहीं है। भारत में हमारे पास एक ऐसी भाषा है जिसे केवल १२% नहीं अपितु ७०% से अधिक व्यक्ति समझते हैं।

इस देश में निरक्षरता के विरुद्ध एक लम्बी और दुष्कर लड़ाई लड़ी जानी है। इस लड़ाई में शैक्षणिक संभावनाएँ भाषा के प्रयोग द्वारा अर्थात् रंगमच, चलचित्र और बेतार यन्त्र द्वारा अत्यधिक हैं। एक बार जब जन साधारण हिन्दी समझने लगा तो एक महान् एकीकृत करने वाला और शिक्षा प्रदान करने का साधन निर्मित हो जायेगा। अंग्रेजी किस प्रकार यह कार्य कर सकती है? केवल २% व्यक्ति अंग्रेजी समझ सकते हैं और बोलने वाले तो इससे भी कम हैं। सच तो यह है कि एकीकृत करने वाले साधन के रूप में अंग्रेजी पर जो बल दिया जाता है वह कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण है। निस्संदेह वर्तमान समय में अंग्रेजी विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा ग्रहण किए हुए व्यक्तियों के मध्य सम्पर्क स्थापन की कड़ी है। तथापि वास्तविक रूप में जोड़ने वाली शृंखला न तो यह है और न ही कभी हो सकती है, क्योंकि हमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के व्याख्याताओं अथवा विधानसभा के विधायकों के मध्य सम्बन्ध जोड़ने वाली शृंखला

नहीं चाहिए। हमें तो एक ऐसी कड़ी चाहिए जो एक ओर अमृतसर और लाहौर के दुकानदारों के परस्पर सम्बन्ध बनाने का साधन हो और दूसरी ओर बरार के रूई उत्पादकों और आसाम के चाय उत्पादकों को जोड़ने वाले सूत्र का काम करे। तात्पर्य यह है कि जनसाधारण को परस्पर जोड़ने वाली कड़ी चाहिए और अंग्रेजी कभी भी यह कार्य सम्पन्न नहीं कर सकती। मैं जानता हूँ कि मैं एक बड़े ही सरल तथ्य के स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्यक्ष को भी प्रमाण की आवश्यकता पड़ गई है क्योंकि बहुत से प्रबुद्ध कहे जाने वाले व्यक्ति भी हिन्दी को लिंग्वा फ्रेंका के रूप में अपनाये जाने के विरुद्ध कमर कसे खड़े हैं।

प्रमुख विरोध उठाया जाता है दक्षिण कीं ओर से। उन्हें भय है कि हिन्दी को लिंग्वा फ्रैन्का का रूप देने से उन्हें असुविधा होगी और यह सच भी है, परन्तु कम से कम आरम्भ में तो किसी न किसी वर्ग को हानि उठानी ही पड़ेगी। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जब अंग्रेजी अपनाई गई थी तो मद्रास, बम्बई तथा बंगाल की तुलना में सभी प्रान्तों को असुविधा सहनी पड़ी थी। अब तो दक्षिण भारतीय भी शीघ्रता से हिन्दी सीख रहे हैं। कुछ समय पहले छोटे मोटे कस्बों की तो बात ही क्या मद्रास में भी बाज़ार में हिन्दी के माध्यम से सौदा तय करना कठिन था। लेकिन अब ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। समस्या यह है कि हम एक राष्ट्रीय भाषा चाहते हैं या नहीं ? अगर चाहते हैं तो मुझे आशा है कि हमें कठिनाइयों का हल ढूंढना ही होगा। वस्तुतः अधिकांश कठिनाइयाँ काल्पनिक हैं। दक्षिण भारतीयों के विषय में हम जो जानते हैं वह हमारे हृदयों के आशा से परिपूर्ण कर देता है कि एक बार जब उन्होंने हिन्दी को अपना लिया तो इसमें भी उत्तर भारतीयों को पीछे छोड़ देंगे और स्वयं आगे निकल जायेंगे।

कई बार यह भी तर्क दिया जाता है कि हिन्दी को सम्पर्क रूप में अपनाने से हम पश्चिम से कट जायेंगे, पर यह कौन कहता है कि अंग्रेजी को पूर्णतः तिलाञ्जलि दे दी जाये। मांग तो मात्र इतनी है कि अंग्रेजी को उसका न्यायोचित स्थान दिया जाये। उससे अधिक तनिक भी नहीं। पश्चिम के साथ सम्बन्ध बनाने वाली शृंखला के रूप में अंग्रेजी का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा ही, क्योंकि पश्चिम से सम्बन्ध यदि संभव न भी हो तब भी उससे कट कर रह सकने वाली स्थिति हमारी नहीं। सचाई तो यह है कि वर्तमान समय में कोई भी देश एकाकी जीवन यापन नहीं कर सकता। हमें अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार और राजनीति के लिए अंग्रेजी पर निर्भर रहना होगा। पाश्चात्य विचारधारा और संस्कृति के लिए तो विशेष रूप से अंग्रेजी पर ही निर्भर रहना होगा।

किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि सभी विद्यार्थी अंग्रेजी का अध्ययन करें और उसमें अनिवार्य रूप से उत्तीर्ण भी हों। यहाँ तक कि हमें अन्य सभी विषयों का अध्ययन भी इसी के माध्यम से करना पड़े और सबसे अधिक त्रासक तथ्य यह कि कार्यालयों की भाषा भी यही रहे अर्थात् कार्यालयों और फाइलों में भी यही प्रयुक्त होती रहे।

जब तक नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी समझना ही नहीं वरन् लिखना, पढ़ना और बोलना आना आवश्यक है तब तक हमारी शिक्षा संस्थाओं में कुछ की किया जा सकना संभव नहीं तब तक अंग्रेजी ही सर्वोपरि रहेगी। दुःख की बात तो यह है कि जिस कार्य के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक ठहराया जाता है वह कार्य अनेकशः अत्यन्त साधारण होता है। उदाहरणार्थ डाक टिकट बेचना अथवा किसी साधारण से पत्र का मसौदा तैयार करना जो कि हमारी अपनी भाषा में भी अच्छी प्रकार से किया जा सकता है।

मेरे विचार में किसी भी अन्य देश में स्नातकों को क्लर्कों के रूप में नौकरी नहीं करनी पड़ती और न ही कहीं किसी विदेशी भाषा का प्रयोग शिक्षा माध्यम के रूप में किया जाता है। जब फ्रांस में लैटिन शिक्षा का माध्यम थी तो श्री ड्पू बैले ने दर्शन अध्ययन के स्थान पर बच्चों की तरह मात्र एक भाषा बोलना सीखने में अपने सर्वोत्तम समय को बरबाद करने का विरोध किया। वस्तुतः हमारे यहाँ विद्यार्थियों के जीवन का सर्वोत्तम समय केवल एक भाषा को बोलना सीखने में ही अपव्यय हो रहा है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लगभग इसी बात को काव्य का आवरण पहना कर कुछ इस ढंग से कहा है "हमने चश्मे की कीमत अपनी आँखें देकर चुकाई है।" गाँधी जी ने और भी निश्चयात्मक रूप में घोषणा की कि यदि एक तानाशाह की सी शक्ति मुझे प्राप्त होती तो मैं अपने विद्यार्थियों को एक विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाना बन्द कर देना और अध्यापकों को इस परिवर्तन को तुरन्त कार्यान्वित करने के लिए विवश कर देता। यह एक ऐसी बुराई है जिसका प्रतिकार तत्क्षण किया जा।ा चाहिए।

मुझे पता है कि हमारे पास आवश्यक पुस्तकें काफी संख्या में नहीं हैं, परन्तु जब तक किताबों की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती तब तक उनकी उपलब्धि कैसे हो सकती है? आवश्यकता अनुभव होगी तो उसकी पूर्ति स्वयमेव हो जायेगी। यदि हमने अब तक पाठ्य पुस्तकें भी लिखना नहीं सीखा तो फिर और सीखा ही क्या है? व्यक्तियों को लिखने का अवसर तो दिया जाये, दुकानों में पुस्तकें रखने के लिए स्थान भी न मिलेगा। सभी अच्छे स्तर की पुस्तकों का अनुवाद कर लिया जायेगा। मेरा विचार है कि पुनर्जागरण कालीन इंगलैंड की भाँति भारत भी अनुवाद के काल से गुजर रहा है।

विरोध का आधार अनेकशः यह भी होता है कि चिकित्सा-शास्त्र (मैडीकल) तथा अभियान्त्रिकी (इंजीनियरिंग) की शिक्षा हमारी भाषाओं के माध्यम से नहीं दी जा सकती। मैं स्वीकार करता हूं कि एकाएक ऐसा करना संभव नहीं। लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि हमें सदैव के लिए अंग्रेजी पर ही रहना होगा? क्या संसार के सभी देश अंग्रेजी के माध्यम से ही औद्योगिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं? और फिर आज हमारे देश में इतनी विशाल प्रयोगशालाओं के होते हुए भी क्या किया जा रहा है? हमारे पिछड़ेपन का उत्तरदायी कारण कुछ हद तक माध्यम की

कठिनाई भी है। हमारी अधिकांश शक्ति का इतना प्रयोग ज्ञान प्राप्ति में नहीं होता जितना कि माध्यम को सीखने में इसका अपव्यय होता है। एक बार एक मनचले युवक ने मुझ से पूछा "श्रीमान जी, आखिर एक प्रेम-पत्र कैसे हिन्दी में लिखा जा सकता है?" लगभग सभी मामलों में हमारा दृष्टिकोण यही है।

कई बार यह कहा जाता है कि उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए समय चाहिए। इसे पलक झपकते ही नहीं किया जा सकता लेकिन यह तर्क प्रत्येक प्रगतिशील विचार का विरोध करने के लिए दिया जाता है। कठिनाई तो यह है कि प्रत्येक उस कदम का विरोध किया जाता है जो अंग्रेजी को उसका न्यायोचित स्थान देने के लिए उठाया जाता है। इसका उचित स्थान यही है कि इसे वैकल्पिक विषय बना दिया जाये। जो केवल उन्हीं विद्यार्थियों के लिए हो जो औसत श्रेणी से कुछ ऊपर हो। अगर अंग्रेजी अनिवार्य रखी जाती है तो चाहे इसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक न भी हो तो भी हम इसका विरोध करते हैं।

(ट्रिब्यून २२-८-७६ से साभार)

———

*शिक्षा का एवं जीवन की समर्थ दीक्षा का माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। समग्र विश्व जीवन माँ के दूध के समान इस सत्य पर चल रहा है, परन्तु भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्यवादी जहर का इतना तीव्र असर हुआ है कि हमारे मन की आँखें अंधी हो गई है; अन्तरात्मा के कान बहरे हो गए है और राष्ट्रीय चैतन्य को लकवा मार गया है।

जनार्दनराय नागर

*आजकल की राजनीति का नेतृत्व करने वाले लोग अक्सर कहते हुए पाए जाते है कि पहले गरीबी हटा लें—फिर भाषा का सवाल हल कर लेंगे—पर ऐसे लोग कहीं न कहीं इसी के इच्छुक है कि गरीबी भी बनी रहे और भाषा का सवाल भी बना रहे क्योंकि वे भी जानते होंगे कि अंग्रेजी की प्रभुता समाप्त किए बिना व्यवहार में वह साहस आएगा ही नहीं जो अपनी भाषा में बराबरी की, शोषण विरुद्ध दिमागी आजादी की स्वाभाविक माँग कर सके।

परमानंद श्रीवास्तव

*जरूरत यह देखने की नहीं है कि अंग्रेजी महान् भाषा है और उसका हम कीर्तन कर रहे है या नहीं बल्कि जरूरत यह देखने की है कि जिन्हें हम अंग्रेजी पढ़ा रहे है उनमें से कितने सारे प्रयास के बावजूद अंग्रेजी में सुविज्ञ तो कौन कहे अर्जी लिखने पर को अंग्रेजी जान पाते है।

जितेन्द्रनाथ पाठक

———

प्रतिक्रियाएँ

अनुवादक—प्रो० भूपेन्द्रसिंह

अंग्रेजी का स्थान :—

(१) ईश कुमार का आलोचनात्मक अध्ययन उन सशक्त और प्रभाव पूर्ण लेखो में से हैं जिन्हें मैंने इस विषय पर अपने जीवन में बहुत कम पढ़ा है अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित पत्रिका में अंग्रेजी के महत्त्व को कम करने के सम्बन्ध में प्रकाशित यह निबन्ध अत्यन्त रुचि कर था।

मैं लेखक के साथ एक स्थान पर सहमत नहीं, वह यह कि आधुनिक परिस्थितियों में अंग्रेजी भाषा इंजीनियरिंग और मैडिकल शिक्षा में प्रयोग के लिए अति आवश्यक है। इस बात को भारी संख्या में लोगों ने स्वीकार किया है इसका कारण यह है कि इन विषयों में शब्दों का टैकनीकल प्रयोग अंग्रेजी में आसानी से अभिव्यक्ति ढूँढता रहा है। इस सम्बन्ध में दो महत्त्व पूर्ण सुझाव ढूँडे गए हैं जिनको व्यावहारिक रूप देना सम्भव है, कई लोगों का विचार है कि टैकनीकल शब्दों को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर लिया जाए या उनका अनुवाद किया जाए।

अनुवाद एक बहुत कठिन कार्य है, यह कठिन केवल उन लोगों को प्रतीत होगा जो उन शब्दों का अनुवाद करेंगे। एक इंजीनियरिंग या मैडिकल के विद्यार्थी के लिए यह पर्याप्त नहीं कि वह अपने विषय को केवल उन्हीं टैकनीकल शब्दों की रोशनी में समझे। उसके लिए अधिक महत्व पूर्ण बात है कि वह आधार रूप से उन विचारों और धारणाओं का अध्ययन करे जो इस विषय का केन्द्र हैं। और यहीं पर आकर मातृ-भाषाका माध्यम के रूप में प्रयोग अपनी महत्ता को स्थापित करेगा। क्योंकि विषय अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि भाषा जो केवल माध्यम है। और यह माध्यम संभवत: कोई भी हो सकता है।

समय की पुकार सदा यही है, कि भारतीय भाषा के महत्त्व को पूर्ण रूप से समझा जाए, इस महत्त्व को वैज्ञानिक विषयों और टैकनीकल अध्ययय में ढूढने की कोशिश को ही पहला स्थान देना अपेक्षित है।

सतीश शिराली—चण्डीगढ़

(२) अंग्रेजी सरकार के राज्य में हमारे लिए अंग्रेजी भाषा सीखना आवश्यक था क्योंकि अंग्रेज लोग हमारे शासक थे और उन्हें अपने दफतरों में क्लर्कों की आवश्यकता रहती थी तब अंग्रेजी पाँचवी, श्रेणी से पढ़ाई जाती थी और आज भारत में असंख्य ऐसे पब्लिक और माडल स्कूल है जिनमे अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया है, ऐसे स्कूल विद्यार्थियों से भारी मात्रा मैं धन ग्रहण करते हैं ताकि वह सुचारू रूप से स्कूलों को चला सकें।

यह बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि क्यों अंग्रेजी भाषा जैसी ठोस भाषा छोटे-छोटे बच्चों पर ठोसी जातीं है जबकि मातृ भाषा हिन्दी है केवल इतना ही नहीं विद्यार्थियों से यह भी अपेक्षित है कि वह नकटाई पहनें और अपने अध्यापकों कों गुड मार्निंग कहें इससे राष्ट्रीय भाव पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

केसर दास —चण्डीगढ़

(३) श्री ईश कुमार के लेख 'अंग्रेजी का स्थान' के सम्बन्ध में यह बात सच है कि अंग्रेजी ने पूर्व और पश्चिम में एक ताल मेल बिठा रखा है जापान देश में शिक्षा अपनी निजी भाषा में दी जाती है अंग्रेजी का प्रयोग केवल लाईब्रेरी में विशेष अवसरों पर किया जाता है और इसमे भी बढ़ कर उस स्थान पर जहाँ जापान को दूसरे देशो से अपने सम्बन्धों को विकसित करना होता है। क्या जापान एक प्रगति शील देश नहीं है ? भारत क्यों इस उदाहरण को सामने नहीं रखता ?

क्या हमारा भारत उस समय प्रगति नहीं कर रहा था जब अंग्रेजी ने अभी अस्तित्व प्राप्त नहीं किया था ? आर्य भट्ट और दूसरी अनेक प्रतिभाएँ अंग्रेजी नहीं जानती थीं ? अतीत में हिन्दी में लिखी गई किताबों की कोई कमी न थी अगर आयुर्वैदिक विषयों में हिन्दी और संस्कृत के माध्यम का प्रयोग संभव हैं तो डाक्टरी शिक्षा या इंजीनिरिंग में इन भाषाओं का प्रयोग क्यों सम्भव नहीं हो सकता ?

कभी कभी अंग्रेजी भाषा बुद्धि जीवियों के लिए बाधा बन जाती है। वह बाहरी भाषा में अपने विचार व्यक्त करने के योग्य नहीं हो पाते। यह बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता हैं अगर भारत जापान की उदाहरण को समक्ष रखे। भारत की मातृ-भाषा पर गर्व होगा और और लोग इस भाषा में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के योग्य हो सकेंगे अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उसी सीमा तक होना चाहिए जिसमें भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को कोई हानि न पहुँचे। राकेश मल्होत्रा लुधियाना

ट्रिब्यून २५ अगस्त ७६ से सभार

मुझे तो ऐसा लगता है कि आगे कोई महान और बड़ी रचना तभी संभव हो पायेगी जब देशी भाषाओ की सही रूप में प्रतिष्ठा हो सके तभी सब देशी भाषाओं के मेलजोल से एक ऐसा नया मौलिक विचार या सपना बन पायेगा जिसके द्वारा करोड़ों के दुःख-दर्द व सपनों के साथ लेखक तदाकार कर नई रचना का सर्जन हार बन पाए।

अशोक कुमार गुप्ता

मेरी विनम्र सम्मति है कि अंग्रेजी ज्ञान विज्ञान की खिड़की है तो अपनी भाषा स्वयं अपनी आंखें। औघ आज विचार करें तो सही कि खिड़की को खोल कर अपनी आंख फोड़ लेना कहां तक बुद्धिमानी है ? अनिल कुमार राय

ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोक भाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना सभी दृष्टियों से हमारा परमधर्म है। —महावीर प्रसाद द्विवेदी

*जब तक हम अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा देते रहेंगे तब तक अंग्रेज़ों की तरफ हमारा झुकाव रहेगा। स्वतन्त्र मौलिक चिन्तन तभी विकसित होगी जब मातृभाषा शिक्षा माध्यम बनेगी। सी० जी० गोपाल कृष्णन

*विदेशी भाषा अंग्रेजी ने प्रादेशिक भाषाओं का जो स्थान अपने कब्जे में कर लिया है वह स्थान उन्हें वापस दिलवाने में हम मदद करें। बंगाल में, तामिलनाड में, केरल में और पंजाब में वहाँ की भाषाओं को जहाँ-जहाँ अंग्रेजी दबाती आई है वहाँ-वहाँ अंग्रेजी का आक्रमण तोड़ने में प्रादेशिक भाषाओं की हम मदद करें। तभी आकर प्रादेशिक भाषाओं की कृतज्ञता से और आशीर्वाद से हिन्दी की राष्ट्रीयता मजबूत होगी। काका कालेलकर

*भारत में आज की जो हालत है उसमें औसत विद्यार्थी अंग्रेजी के भाषणों को नहीं समझता। केवल बाजारू किताबों की रटन्त ही से परीक्षा में उसका बेड़ा पार लगता है। इसलिए उसके लिए शिक्षा के स्तर में गिरावट का प्रश्न ही नहीं उठता। देशी भाषाओं में पढ़ाई हो तो वह कुछ समझेगा और शिक्षा के स्तर में निश्चित ही उन्नति होगी। सुब्रह्मण्यम्

*अंग्रेजी ने लोकभाषाओं के अखबारों की जो दशा की है तो वह तो है हीं पर उसने इसके साथ अनुवाद की मज़बूरी लादकर लोकभाषाओं की लगातार हत्या भी की है। लोकभाषाओं के अखबारों के हर उप-सम्पादक ने असंख्य वार अपनी भाषा की हत्या करने का उसको अपराधी पाया है। अशोक सेकसरिया

*कोई भाषा अनिवार्य न होनी चाहिए। यहाँ तक कि देश की जो राजभाषा हो उसको भी सभी भारतीय अनिवार्य रूप से पढ़ें ही यह जरूरी नहीं होना चाहिए।

श्री कु० वे० पुटप्पा

दो सौ वर्षों से शैशव से भी अंग्रेजी का अध्ययन करते हुए भी भारतीय अंग्रेजी भाषा अथवा साहित्य में स्थान पाने योग्य किसी ग्रन्थ का प्रणयन नहीं कर सके। यहाँ तक कि अंग्रेजी लेखकों की तालिका में किसी भी भारतीय का नाम नहीं है। मातृ भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं से आत्माभिव्यक्ति कृत्रिम हो जाती है, स्वाभाविक नहीं रहती। जी० सुन्दर रेड्डी

———

परिशिष्ट

मैकाले के सबसे बड़े मानस पुत्र ने भारत में उस वर्ग को पैदा करके ही छोड़ा जिसकी कल्पना कभी मैकाले ने की थी। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री ने भारत को अपनी जिह्वा से कभी भी विश्वमंच पर नहीं बोलने दिया।

—वात्रिकी

दर्पण

———

हिन्दी के दस सूत्र

सच्चा हिन्दी प्रेमी कौन ?

१. जो अपना पत्र-व्यवहार हिन्दी में करता है ।

२. जो अपने निमंत्रण-पत्र हिन्दी में छपवाता है ।

३. जो तार हिन्दी में देता हो ।

४. जो अपने वेतन के रजिस्टर पर और बैंकों के चैकों पर हिन्दी में हस्ताक्षर करता है ।

५. जो अपने घर, दुकान और दफ्तर के नामपट्ट हिन्दी में लिखवाता है ।

६. जो टेलीफोन की हिन्दी निर्देशिका लेता है ।

७. जो हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएं खरीदकर पढ़ता है ।

८. जो अपने घर में हिन्दी साहित्य की पुस्तकों को खरीदकर निजी पुस्तकालय बनाता है ।

९. जो बाजार में, दफ्तर में, सफर में, विदेश यात्रा में, जहाँ भी भारतीयों से मिलता है, हिन्दी में बातें करता है ।

१०. जो देश की एकता के लिए सच्ची राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर हिन्दी को अपने व्यक्तिगत आचरण से स्नेह-पूर्वक जन-जन में व्याप्त करने के लिए दिन-रात प्रयत्नशील रहता है ।

--(दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन से साभार)

हिन्दी प्रचारकों को डा० लोहिया का परामर्श

इस वक्त हिन्दी के जो प्रचारक हैं, वे सचमुच हिन्दी का बहुत बुरा कर रहे हैं अगर वे इस बात को नहीं समझ पाते कि हिन्दी, तेलुगु, तमिल, बंगला इन सब में आपस में बहन का सम्बन्ध घना बनाना है।

अगर मान लो कि ये छोटी बहनें इतराती हैं जैसा कि कभी-कभी इतरा जाती हैं, तमिल और तेलुगु और गुरुमुखी और कोई-कोई बहुत खूबसूरत है, तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि अक्सर कह दिया जाता है कि हिन्दी बेपढ़ों की जबान है और बंगाली बहुत मीठी जबान है, तमिल तो साहित्य वाली जबान है। मैं हिन्दी वालों को समझाया करता हूँ कि क्यों तुम इस बहस में पड़ते हो? छोटी बहन तो आखिर खूबसूरत होगी ही। बड़ी बहिन इतनी खूबसूरत थोड़े ही होगी। बड़ी बहन थोड़ी भारी हो जाएगी जैसे गंगा कुछ भारी है। जमुना कुछ छरहरी। फिर भी आखिर गंगा, गंगा है जमुना जमुना। अगर छोटी बहन खूबसूरत है तो उस पर खुश होना चाहिए। उस पर बहस नहीं करना चाहिए। जब कोई कहे कि बंगाली बहुत बढ़िया जबान है, हिन्दी तो बहुत वैसी है तो कह दिया करो कि हाँ बिल्कुल सही बात है, खूबसूरत है, छोटी बहन है, तमिल बहुत बढ़िया है, खूबसूरत है। ये सारी चीजें चलेंगी ही। असल बात यह है कि जितनी भी ये छोटी बहनें इतराएँ, इनके इतरने और नाज को सह लेने की ताकत हिन्दी वालों को अपने में पा लेनी चाहिए, क्योंकि इनसे झगड़ा नहीं। हिन्दी का और हिन्दुस्तान की दूसरी भाषाओं का झगड़ा केवल एक से है और वह झगड़ा है अंग्रेजी से। इसलिए हिन्दी वालों को तो मैं ही सलाह देना चाहूंगा कि कभी भी एक सैकण्ड के लिए अंग्रेजी के अलावा किसी भी जबान से झगड़ा नहीं चलाना।

———

सरकार की भाषा-नीति

(हिन्दी के पाणिनि आ० किशोरीदास वाजपेयी)

सरकार ने अपनी भाषा-नीति फिर स्पष्ट की है और कहा है —'हिन्दी में अन्य भाषाओं के (यानि फारसी-अरबी) के शब्दों का इस्तेमाल होना चाहिए।

ऐसे शब्दों के (जा-बेजा) इस्तेमाल से हम लोगों को तो कोई खास दिक्कत या अरुचि न होगी, क्योंकि हमारे उत्तर प्रदेश में तो पिछले दिनों तक (दूसरी) राजभाषा उर्दू ही थी और दिल्ली के चारों ओर पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार में भी फारसी-अरबी के शब्द इस्तेमाल होते ही हैं, परन्तु अहिन्दी भाषी प्रदेश (बंगाल, उड़ीसा, केरल, कर्नाटक, तामिलनाडू, महाराष्ट्र और गुजरात आदि) में 'शब्दों का प्रयोग' ही पसन्द किया जाता है, 'शब्दों का इस्तेमाल' नहीं।

यदि लगाम ढीली कर दी गई, तो अरबी भेड़ों की दौड़ ठौर-कुठौर जा गिरायेगी।

हम लोग तो 'निर्धन' की जगह 'गरीब' ही ज्यादा बोलते हैं, और हमारे तुलसीदास आदि पुरुषों ने भी 'गरीब' को अपनाया है, परन्तु अहिन्दी भाषी प्रदेशों में यह बात नहीं है। 'गरीब' का इस्तेमाल तो वे कर भी लेंगे, परन्तु 'इस्तेमाल' उनके गले से न निकलेगा, न उनके कान पसन्द करेंगे। हिन्दी उनसे दूर हटने लगेगी। फारसी-अरबी के शब्दों की भरमार से हिन्दी उनको अप्रिय हो जाएगी और कठिन भी। तब वे कहेंगे कि इससे तो अंग्रेजी ही ठीक है।

सरकार को चाहिए कि भाषा-नीति के बारे में अहिन्दी प्रदेशों की राय लेकर ही कुछ करे। हिन्दी भाषी तो वैसे (अन्य भाषाओं के) शब्द लिखते-बोलते हैं ही, कोई कठिनाई नहीं, परन्तु बंगाली क्या करेंगे? दूसरे प्रदेशों के लोग क्या करेंगे? रेडियो सुनते समय सब (वैसे शब्दों की) डिक्शनरी अपने-अपने पास रखेंगे? सरकारी कागज में वैसे शब्द आने पर वे किसी से उनका अर्थ पूछते फिरेंगे?

हाँ, सरल संस्कृत शब्दों का प्रयोग हिन्दी में अधिक हो, तब बंगाल आदि को कोई कठिनाई न होगी, सरलता होगी।

—किशोरीदास वाजपेयी,
कनखल (उ. प्र.)।

———

अपनेशब्दों की आवाज़ पहचानिए

निशीथ

अपनी भाषा के शब्दों की गहराई तक पहुँचना सरल है। वे केवल अर्थ की प्रतीति ही नहीं कराते हमें दिशा निर्देश भी करते हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

१. चिकित्सा—(इलाज के अर्थ में प्रसिद्ध) कित्-ज्ञाने, जानने की इच्छा। निदान की अपेक्षा पर बल। बिना जाने उपचार असंभव।

२. सुश्रुषा—(सेवा के अर्थ में प्रसिद्ध) सेवा के साथ इसका प्रयोग होता है। सच्ची सेवा किसी के दुःख-दर्द को तसल्ली के साथ सुनना।
सुख मिलता है व्यथित हृदय को अपनी व्यथा सुनाने में,
स्वयं तड़पने में, सुनने वाले को भी तड़पाने में।

३. तटस्थ—(उदासीन) किनारे पर ही खड़ा रहने वाला। लहरों के लास्य या ताण्डव से सर्वथा अप्रभावित। न पापी को धक्का देने वाला और न किसी डूबते को बचाने वाला। निम्नांकित उद्‌गार का विलोम—
तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमन्त्रण।

४. निष्पक्ष—(तटस्थ) पंखहीन। उड़ने में अक्षम। परत्राण या परोपकार की सामर्थ्य विहीन।

५. शीतक—ठंडे स्वभाव वाला। "काशिका" के अनुसार निकम्मा, आलसी, कुछ न करने वाला।
वे नदियाँ देखी हैं जिनमें कहने को रह गई रवानी
वे जवान देखे हैं जिनकी धूमिल सी हो गई जवानी
बस बिल्कुल ऐसा ही।

६. उष्णक—गर्म स्वभाव वाला। "कशिका" के अनुसार कर्मठ और उद्यमी।

७. अनुशासन—शासन=सरकार, अनु=पीछे
अतः अनुशासन=सरकार का पिछलग्गूपन।

८. विप्लव—(बगावत) प्लव=डूबना या बहना। विप्लव=डूबने या बहाव से बचने के लिए की गई जीतोड़ कोशिश।

९. उपद्रव—(शरारत) द्रव=पिघलना, उप=पास में। किसी बेकसूर को पिटते हुए देखकर प्रायः अधिकांश जनों का हृदय घर जा कर पिघलता है वे वहाँ उसकी हमदर्दी में आंसू बहाकर दिल का बोझ हल्का करते हैं किन्तु घटनास्थल पर ही जिनका हृदय पिघल उठता है और फलतः अन्याय के प्रतिरोध के लिए सचेष्ट हो जाते हैं वे उपद्रवी कहलाते हैं।

१०. मन्त्री—मन्त्र=सलाह, मन्त्री=सलाहकार
मुख्यमन्त्री=खास सलाहकार, प्रधानमन्त्री=सबसे बड़ा सलाहकार।

———

कृपया ध्यान दीजिए--

एक आवश्यक निवेदन

साथियो !

बड़े खेद की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के ३० वर्ष बाद भी सरकारी राज-काज में सामंती भाषा अंग्रेजी के प्रयोग के कारण भारत की सामान्य जनता अपना दुख दर्द अपनी मातृभाषा में न सुना पाने के कारण मानसिक उत्पीड़न का शिकार हो रही है। यदि आप इस उत्पीड़न और शोषण से छुटकारा पाना चाहते हैं तो निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान दीजियेगा —

१. हम अपने सभी घरेलू पत्र व्यवहार, पते, पत्र, तार शोक व बधाई आदि के पत्र हिसाब-किताब आदि में अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करें।

२. लोकराज्य सामंती भाषा में नहीं चल सकता। लोकराज्य लोक बोली में ही चल सकता है।

३. अंग्रेजी द्वारा समाजवादी राजनीति नहीं चल सकती।

४. भारत में अंग्रेजी का प्रचार शोषण के लिए हुआ है।

५. अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग जब तक बन्द न हो तब तक देश सुखी नहीं हो सकता।

६. अंग्रेजी भाषा भारतीयों के विचारों की तेजी और सोचने के खुलेपन को रोकती है।

७. जनतन्त्र चलाने के लिए अंग्रेजी हटाना जरूरी है।

८. अंग्रेजी समता और भ्रातृत्व की भावना को रोकती है।

९. विधायिकाओं, सरकारी कार्यालयों, अदालतों, दैनिक समाचार-पत्रों और नामपटों में जब तक अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा तब तक हम अपनी भाषा को ऊंचा नहीं उठा सकते।

१०. अंग्रेजी की अनिवार्य पढ़ाई मानसिक गुलामी की प्रतीक है उसे तुरन्त बन्द होना चाहिए।

—:निवेदक:—

रमेश चन्द्र जैन
मन्त्री

चन्द्रमणि रघुवंशी
संयुक्त मन्त्री

नैपाल सिंह आर्य
अध्यक्ष

अंग्रेजी उन्मूलन समिति, बिजनौर

विरोध मत कीजिए

विजय पाल सिंह

सरकार की नीति के प्रति आपका मन्द विरोध जनता को अत्याचार सहने का आदी बना देगा। यदि आप सचमुच ही अन्याय और भ्रष्टाचार का उन्मूलन चाहते हैं, आर्थिक तंगी से दलित वर्ग की मुक्ति चाहते हैं, भारतीय वेशभूषा, भाषा और संस्कृति का समुन्नयन चाहते हैं तो बुराइयों को बढ़ावा दीजिए। अपने मित्र टैक्स मन्त्रियों को प्रेरणा दीजिए कि वे इतना टैक्स लगावें कि गर्भस्थ शिशु भी उसकी बेचैनी से शीघ्र बाहर आकर प्रतिशोध लेवे अथवा उस बोझ के तले दब कर दम तोड़ दे। शिक्षा विभाग के अध्यक्षों से कहें कि अंग्रेजी की अनिवार्यता तीसरी से नहीं अपितु पहली से होनी चाहिए या पहली ही से क्यों उसे जन्म से ही अंग्रेजी बुलवाने के लिए टीकों का प्रयोग होना चाहिए। देश और जाति के उत्थान के लिए यह बड़ा आवश्यक है कि व्यक्ति के रोम रोम से अंग्रेजी की सुगन्धि आ रही हो।

मांस, मदिरा और व्यभिचार को इतना फैलाइये कि इन गद्दीधारियों की बहन बेटियाँ दिन रात नशे में मस्त हो सब कुछ खाती हुई एक-एक साथ बीस-बीस की छाती तले पिसती रहें और उनके ये अभिभावक इस सब कुछ को अग्रगामिता की ऐनक से अपनी सुपुत्री के सौन्दर्यादि गुणों का अमोघ आकर्षण मान कव्वालियाँ रचा करें।

बधिया बैल कितना भी मुटिया जाय किन्तु जूए से बगावत नहीं कर सकता अतः अनुशासन की शाश्वत स्थिरता के लिए नपुंसकीकरण का विधान चौदह वर्ष की अवस्था में हो जाना अधिक तर्क संगत है।

यदि आप हमारी नेक सलाह पर चले तो अवश्य ही सफलता आपके पाँव चूमेगी। आप सदा के लिए अमर हो जायेंगे। देवकी के पहले पुत्र को मुक्त करने वाले कंस से उसके सातों पुत्रों की हत्या कराने वाले नारद के समान आप आदरणीय होंगे। गउओं की रक्षा का उद्देश्य सम्मुख रख असंख्य भैसों का वध कराने वाली महिषासुर मर्दिनी के समान आपकी सदा पूजा होगी।

स्मरण रखिए कि थोड़ा पाप उसके निरोधक उपायों द्वारा शान्त किया जा सकता है किन्तु बढ़े हुए पाप के उन्मूलन का एक मात्र उपाय उसे चरमसीमा की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचाना ही है।

———

देश की सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी हो

बम्बई, ११ जनवरी (समा०) भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों और विद्वानों ने आज यहां अखिल भारतीय देवनागरी लिपि सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित कर भारत की भावनात्मक एकता को मजबूत बनाये रखने के लिए भारत की विभिन्न भाषाओं को अपनी लिपि के साथ देवनागरी लिपि को सम्पर्क लिपि के रूप में अंगीकार करने का अनुरोध किया।

बम्बई के हिन्दी मंच द्वारा आयोजित अखिल भारतीय देवनागरी लिपि सम्मेलन में हिन्दी, मराठी, गुजराती, तामिल, बंगला आदि के साहित्यकारों और विद्वानों ने भाग लिया।

सम्मेलन में प्रायः सभी वक्ताओं ने देश की भावनात्मक एकता के लिए एक लिपि की आवश्यकता निरूपित करते हुए भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य को देवनागरी लिपि में लिखने के लिए बड़े पैमाने पर प्रचार अभियान चलाने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

सम्मेलन की अध्यक्षता दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के स्थानीय संपादक श्री महावीर अधिकारी ने की तथा उद्घाटन विधायक श्री एच. एन. त्रिवेदी ने किया। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष महाराष्ट्र के समाज कल्याण राज्यमन्त्री श्री सुशीलकुमार शिंदे हैं।

श्री सुशीलकुमार शिंदे ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि देवनागरी लिपि राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। आर्थिक, साँस्कृतिक और सामाजिक रूप से एक संघ समाज की स्थापना के लिए देवनागरी को सारी भारतीय भाषाओं की एकमेव लिपि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उन्होंने साहित्यकारों से अनुरोध किया कि साहित्य किसी वर्ग विशेष की धरोहर नहीं होती अपितु वह पूरे समाज की धरोहर है इसलिए वे ऐसे साहित्य का निर्माण करें जिससे जीवन की उन्नति हो और वह सर्वसाधारण के समझने के लायक बने।

श्री शिंदे ने कहा कि वर्तमान समय की परिवर्तित परिस्थितियों और मूल्यों के अनुसार साहित्यकारों को सभी धर्मों के धर्मग्रन्थों को आधुनिक संदर्भ से जोड़ने का काम करना चाहिए। उन्होंने कहा कि समाज के संक्रमण काल में उन्हें साहित्य को गुटों से मुक्त कर साहित्य को देवनागरी लिपि से सर्वसाधारण जनता तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए विधायक श्री त्रिवेदी ने कहा कि एक दूसरे की भाषा को प्रत्येक भारतीय को समझना चाहिए और इसके लिए देवनागरी लिपि को अंगीकार करना चाहिए ताकि सांस्कृतिक एकता के साथ ही सारे देश के लोग एक दूसरे के साहित्य को समझ सकें।

देवनागरी सम्मेलन के अध्यक्ष श्री महावीर अधिकारी ने कहा कि देवनागरी को सभी भारतीय भाषाओं की लिपि के रूप में अंगीकार से ही हम अनुवाद के चक्कर से मुक्त हो जायेंगे क्योंकि एक-दो भाषाओं को छोड़कर बाकी सभी भाषाओं को देवनागरी में लिखने से ४५ से ६० प्रतिशत तक लोग उसको समझ लेंगे।

उन्होंने कहा कि भाषाओं में ज्यादा अन्तर नहीं केवल लिपि का अन्तर है और उसे दूर करने के लिए हिन्दी मित्र मंच को दूसरी भाषाओं के साहित्य को मात्र देवनागरी में लिखने और देवनागरी के उपयोग हेतु व्यापक आधार पर प्रचार कार्य चलाना चाहिए।

श्री अधिका ी ने कहा कि यदि हमने समूचे देश के लिए देवनागरी लिपि को सभी भाषाओं के लिए स्वीकार कर लिया तो यह लिपि प्रशांत महासागर तक पहुँच जाएगी और जापान तक कई देशों में उसे स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि इंडोनेशिया और मलयेशिया की भाषा को यदि देवनागरी में लिख दिया जाए तो वे गुजराती की अपेक्षा ज्यादा हिन्दी प्रधान लगेंगी।

श्री अधिकारी ने प्रयोग के तौर पर दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्य को देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयोग शुरू करने का सुझाव दिया। अधिकारी के इस सुझाव का अन्य वक्ताओं ने भी समर्थन किया।

गुजराती के महान् साहित्यकार श्री गुलाब दास बोकर ने कहा कि इतनी महान् सांस्कृतिक धरोहर वाले देश में एक ही लिपि होनी चाहिए और यह केवल देवनागरी ही हो सकती है। उन्होंने कहा कि एक लिपि होने पर हर भाषा हमें हमारी अपनी लगेगी।

इस अखिल भारतीय देवनागरी सम्मेलन के लिये उपराष्ट्रपति श्री जत्ती, मध्य प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री श्यामाचरण शुक्ल, राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री हरिदेव जोशी उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी, हरियाणा के मुख्यमन्त्री श्री बनारसी दास गुप्त, केन्द्रीय संचारमन्त्री डा. शंकरदयाल शर्मा, केन्द्रीय रक्षा उत्पादन राज्यमन्त्री श्री बिट्ठलराव गाडगिल ने अपने-अपने शुभकामना सन्देश में सम्मेलन की सफलता की कामना की है।

हिन्दी मित्र मंच के अध्यक्ष श्री धर पाठक ने कहा कि मंच सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य और लोगों को एक दूसरे के नजदीक लाने के लिये प्रयत्नशील है।

—नवभारत टाइम्स १२.१.७७ से साभार

जब नेता जी ने हिन्दी अनुवाद किया

जब नेता जी सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष थे. उस समय कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की एक बैठक दिल्ली में हो रही थी। श्री विश्वनाथदास, जो उन दिनों उड़ीसा के मुख्यमन्त्री थे। अन्य मुख्य मन्त्रियों के साव इस बैठक में आमन्त्रित थे। जब विश्वानाथ बाबू की इस बैठक में बोलने की बारी आई तो उन्होने अंग्रेजी में बोलना प्रारम्भ किया। गांधो जी सभा में उपस्थित थे। उन्होंने विनम्रता के साथ कहा—"कम से कम कार्यकारिणी समिति की बेठक में प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दी में बोलना चाहिए।"

जब यह बताया गया कि विश्वनाथ बाबू हिन्दी नहीं जानते, तो गांधी जी ने कहा—"वह अपनी मातृभाषा उड़िया में बोलें, जिसका हिन्दी में कानूनगो द्वारा अमुवाद कर दिया जाएगा।" सुभाष बाबू उड़िथा बखूबी जानते थे। उन्होंने कहा—"मैं हिन्दी में अनुवाद कर दूँगा।" इस पर विश्वनाथ बाबू ने उड़िया में भाषण दिया जिसका हिन्दी अनुबाद सुभाब बाबू ने किया। —नित्यानन्द काननगो

———

अनाम युवजनों का अभिनन्दन

हम उन अनाम युवजनों और विद्यार्थियों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं जिन्होंने बनारस में प्रैस ट्रस्ट आफ इण्डिया के अंग्रेजी टेलीप्रिंटर को ध्वस्त कर दिया। अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन ने बार-बार इस बात का आग्रह किया है कि अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग तत्काल बन्द हो, अंग्रेजी के दैनिक समाचार-पत्र और टेलीप्रिंटर के बजाए हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के समाचार-पत्र और टेलीप्रिंटर काम करें। प्रैस ट्रस्ट आफ इण्डिया ने अंग्रेजी की दासता को छोड़ा नहीं। विवश होकर नौजवानों ने टेलीप्रिंटर तोड़ा। उन्होंने महान् राष्ट्रीय हित का काम किया है। जब तक अंग्रेजी सरकारी काम-काज, शिक्षा के माध्यम और अनिवार्य पढ़ाई, व्यवसाय, दैनिक समाचार-पत्र और आकाशवाणी से नहीं हटाई जाएगी तब तक देशी भाषाओं की और देश के मामूली लोगों की तरक्की नहीं हो सकती। इस दृष्टि से जिन युवजनों ने सारनाथ स्थित आकाशवाणी भवन पर कब्जा कर अंग्रेजी समाचार के समय देशी भाषा में भाषण किया वे बधाई के पात्र हैं। खेद है कि कुछ तकनीकी शरारत के कारण उनका भाषण प्रसारण न हो सका। हमें आशा है कि देश के अन्य भागों के युवजन बनारस के युवजनों के इस काम के प्रेरणा ग्रहण करेंगे और आकाशवाणी से अंग्रेजी के समाचार प्रसारण को ठप करेंगे।

—कृष्णनाथ, प्रमोद कुमार गुप्त

(अंग्रेजी हटाओ पत्रिका से साभार)

———

अर्थ से सहयोग देने वालों की सूचि

क्रम	नाम	पता	राशि रुपये
१.	श्री चतुर्भुज प्रसाद मित्तल	मित्तल स्टील इण्डस्ट्री जालन्धर	१०१
२.	श्री रमेश चन्द्र धीमान	धीमान इण्डस्ट्री नकोदर	१०१
३.	श्री हंसराज करवा	खरादिया बाजार लुधियाना	१०१
४.	कु० सुधा ओसवाल	ओसवाल भवन, निकट पी. डब्ल्यू. डी. रेस्ट हाऊस लुधियाना	१०१
५.	श्री सोहन लाल खन्ना	राज पब्लिशर्ज अड्डा टांडा, जालन्धर	१०१
६.	श्री सुन्दर दास धमीजा	शिव बन्धु उद्योग, ओसवाल मार्कीट लुधियाना	५१
७.	यू० के० सेल्ज़	लुधियाना	५१
८.	श्री कर्म चन्द अग्रवाल	निकट बस अड्डा, नकोदर	५१
९.	स्मृति प्रकाशन ट्रस्ट	चौक करीम पुरा, लुधियाना	५१
१०.	आर्य समाज बैक फील्डगंज	लुधियाना	५१
११.	एस० पी० वर्मा प्रिंसिपल	एस० पी० नेशनल कालेज शीतला मन्दिर, जालन्धर	५१
१२.	श्री वेदभूषण अग्रवाल	डाकघर रोड, नकोदर	५०
१३.	श्री हरि राम चोपड़ा	नूरमहल रोड, नकोदर	२५
१४.	श्री बरकत राम	मालड़ी गेट, नकोदर	२५
१५.	श्री पुष्करमणि पण्डित	३४६, आदर्श नगर, जालन्धर	२५
१६.	कु० सुमन सरोज	मल्होत्रा आयल स्टोर, धूरी फाटक, लुधियाना	२५
१७.	श्री बाल मुकुन्द मुञ्जाल	मुञ्जाल इण्डस्ट्री, उद्योग क्षेत्र बी., लुधियाना	२५
१८.	श्री ज्ञानी गुरुदयाल सिंह आर्य	प्लाट नं० १०२, उद्योग क्षेत्र ए. लुधियाना	२५
१९.	डा० राम लाल खुल्लर	खुल्लर हस्पताल, नकोदर	२५
२०.	श्री हरबंस लाल प्रभाकर	भल्ला मुहल्ला, नकोदर	२५

क्रम	नाम	पता	राशि रुपये
२१.	श्री मदन मोहन	जय दुर्गा क्लाथ इम्पोरियम, आर्य समाज रोड, नकोदर	२५
२२.	श्री योगेन्द्र कुमार गोयल	मैनेजर, बैंक आफ इण्डिया, नकोदर	२५
२३.	अपना प्रकाशन	तबेला खजानचियां, चौड़ा बाजार, लुधियाना	२५
२४.	जगदीश बत्तरा	२५, गीता कालोनी, सोनीपत	२५
२५.	श्री सोमनाथ बजाज़	लुधियाना	२५
२६.	श्री जुगेन्द्र पाल सिंह	हिन्दुस्तान कर्मशियल बैंक, जी० टी० रोड, लुधियाना	२५
२७.	श्री जुगेन्द्र पाल गुप्ता	गुप्ता दरी स्टोर, अनाज मण्डी, नकोदर	२५
२८.	श्री जवाहर दरी भण्डार	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
२९.	श्री साधुराम उजागर मल	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
३०.	श्री नन्द लाल बिहारी लाल	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
३१.	श्री शीतलदास एण्ड सन्ज़	अनाज मण्डी नकोदर	२५
३२.	श्री विश्वामित्र मिश्र	स्टेशन चौक, नकोदर	२५
३३.	श्री कैलाश नाथ गुप्ता	मुहल्ला रत्तियाँ नकोदर	२५
३४.	श्री दीवान चन्द सोबती	सोबती आयरन वर्क्स, रेलवे रोड नकोदर	२५
३५.	श्री वेदपाल धीमान	रेलवे रोड, नकोदर	२५
३६.	डा० रणजीत सिंह	रेलवे रोड, नकोदर	२५
३७.	श्री सोमदत्त मेहता	मेहता बर्फ फैक्टरी, नकोदर	२५
३८.	श्री विलायती राम कपानिया	आर्य समाज रोड, नकोदर	२५
३९.	श्री हरकेश छाबड़ा	आर्य समाज रोड, नकोदर	२५
४०.	शास्त्री मेमोरियल कालेज	पक्का बाग, जालन्धर	२५
४१.	पंजाब आर्ट्स कालेज	पक्का बाग, जालन्धर	२५
४२.	श्री किशोरी लाल एडवोकेट	नकोदर	२५
४३.	श्री बलदेव राज प्रेम चन्द	अनाजमण्डी शाहकोट	२५
४४.	प्रवीण दरी स्टोर	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
४५.	श्री द्वारका दास जैन	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
४६.	श्री यशपाल वर्मा	अनाज मण्डी, नकोदर	२५
४७.	श्री श्रीराम गुप्ता	मै० गणपत राय फतह चन्द, नकोदर	२५
४८.	श्री बलदेव कृष्ण गुप्ता	डाकघर रोड, नकोदर	२५
४९.	डा० विद्यावती	पुरानी रेलवे रोड, जालन्धर	२५
५०.	प्रो० बलदेव कृष्ण	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५

क्रम	नाम	पता	राशि रुपये
५१.	श्री रामजी दास भल्ला	डाकघर रोड, नकोदर	२५
५२.	कु० नवल जैन	कुमार दरी, नकोदर	२५
५३.	रेड़ी यूनीयन	नकोदर	२५
५४.	अध्यापक वर्ग	आर्य हा० से० स्कूल नकोदर	२५
५५.	श्री राजेन्द्र वर्मा	डायरेक्टर, इंस्टीच्यूट आफ कम्पीटिटिव एग्ज़मिनेशन्ज़, निकट-शीतला मन्दिर, जालन्धर	२५
५६.	श्री दलजीत सिंह (प्रैप) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
५७.	श्री तिलक राज (प्रैप) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
५८.	श्री भारत भूषण (प्री. इंजी.) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
५९.	श्री प्रदीप कुमार (बी. ए. II) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
६०.	श्री आभीन मसीह (बी. ए. III) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
६१.	श्री हुस्न लाल (बी. ए. III) और साथी	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	२५
६२.	श्री हंसराज आर्य, पेंटर	हस्पताल रोड नकोदर	२५
६३.	प्रशासनिक विभाग,	डी० ए० वी० कालेज नकोदर	२५
६४.	प्रो० मदन लाल एयरी	डी० ए० वी० कालेज नकोदर	२५
६५.	श्री बाबू राम अमर	गौंस मुहल्ला, नकोदर	२५
६६.	श्री रोहणाराम	बाल्मीकि मुहल्ला, नकोदर	२५
६७.	श्री कृष्ण कुमार टंडन	टंडन मुहल्ला, नकोदर	२५
६८.	प्रो० यश पाल वर्मा (संस्कारों पर प्राप्त दक्षिणा)	डी. ए. वी. कालेज, नकोदर	३०३

———

अन्य सहयोगी
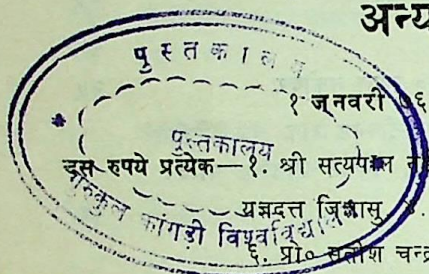
१ जनवरी ७६ से १० मार्च ७७ तक

दस रुपये प्रत्येक—१. श्री सत्यपाल नई दिल्ली, २. प्रो० त्रिलोक नाथ अरोड़ा, ३. प्रो० यज्ञदत्त जिज्ञासु, ४. प्रो० हरिश्चन्द्र भल्ला, ५. प्रो० रवीन्द्र नागर, ६. प्रो० सतीश चन्द्र, ७. प्रों० भूपेन्द्र सिंह

सात रुपये— श्री योगराज नैयर

पाँच रुपये प्रत्येक—१. श्री सत्येन्द्र जैन, २. पं० अनन्त राम मुंशी राम, ३. प्रो० हरबंस लाल, ४. प्रो० प्रमोद कुमार गोयल, ५. श्री यशपाल गुप्ता, ६. श्री गोविन्द दास सेठ, ७. श्री विपिन कुमार, ८. प्रो० अशोक भाटिया

दो रुपये— १. श्री तृप्ता कुमारी

एक रुपया प्रत्येक—१. श्री मंगत राय, 2. श्री राम गोपाल

हरिराम चोपड़ा	बलदेव कृष्ण	रवीन्द्र नागर	प्रेम सागर
प्रधान	महामन्त्री	कोषाध्यक्ष	निरीक्षक

मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के
साधारण लोग अपने अंग्रेजी के
अज्ञान पर लजायें न, अपितु घमण्ड
करें। इस सामन्ती भाषा को
उन्हीं के लिए छोड़ दें, जिनके
माँ-बाप शरीर से नहीं तो मन
से अंग्रेज रहे हों।

डा० राम मनोहर लोहिया